ओ३म्

वेदप्रकाश

(मासिक पत्र के प्रथम भाग के १२

जो

पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक "सामवेदभाष्य" द्वारा

प्रतिमास प्रकाशित होता है। वार्षिक १)

स्वामियन्त्रालय-मेरठ

संवत् १९५६

संख्या विषयसूची पृष्ठ से

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { १ मास

उत्थानिका ।

विदित है कि आज कल वैकिकधर्म के विप्लव और तद्विरुद्ध मतान्तरों के प्रचार से मनुष्य जाति अत्यन्त ही हीनावस्था को प्राप्त होगई और होती जाती है । वास्तव में धार्मिक जीवन ही मनुष्य का सुफल जीवन है । और मनुष्य जाति की इस हीनावस्था का सुधार वैदिकधर्म के पुनरुद्धार और प्रचार ही से सम्भव है, पुनरुद्धार और प्रचार के तीन द्वार हैं ॥ १—वेदादि शास्त्रों के अध्ययनाध्यापनार्थ पाठशाला नियत करना ॥ २—वेद के गूढ मर्मों का विचार करके यथाबुद्धि यथासमय उन के व्याख्यान सामयिक पत्रों (पीरियाडिकल) द्वारा तथा छोटे और बड़े पुस्तकों द्वारा प्रकाशित करना ॥ ३—उपदेशक नियत करके उपदेश कराना ॥ पाठक महाशय जानते हैं कि "नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः" अर्थात् आकाश में पक्षी अपने सामर्थ्यानुसार उड़ते हैं । तदनुसार मैंने भी यह निश्चय किया है कि—अपनी विद्या बुद्धि के अनुसार यथावकाश विद्यार्थियों को पढ़ाना, समय २ पर वैदिकधर्मोपदेश तथा "वेदप्रकाश" मासिक पत्र द्वारा वैदिकसिद्धान्तों का फैलाना और अन्यान्य भी इसी विषय में पुस्तकें प्रकाशित करना, इस के अतिरिक्त वैदिकसिद्धान्तों के विरुद्ध लेख वा शङ्काओं का समाधान भी कर्तव्य है । तदनुसार आज एक "यज्ञ" विषयक लेख प्रकाशित करता हूंः—

"यज्ञ"

आप जानते हैं कि धर्म अनुष्टान के लिये है, न केवल जानने के लिये ।

धर्मानुष्ठान ही वैदिक कर्मकाण्ड है, वेद के कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इस काण्डत्रय में प्रथम कर्मकाण्ड है। मनुष्य की प्रथमावस्था का कर्त्तव्य धर्मानुष्ठान (कर्मकाण्ड) है यही नहीं किन्तु उपासना और ज्ञानकाण्ड के अधिकारियों को भी कर्मकाण्ड अगले दोनों काण्डों में सहायक है। जैसा कि:—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

यजुः अध्याय ४० मन्त्र २

अन्वयः—[नरः] इह कर्माणि कुर्वन्नेव शतं समा जिजीविषेत्। एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते, इतोन्यथा नास्ति [लेपाभाव इति शेषः]॥

[मनुष्य] संसार में कर्म करता हुवा ही सौ १०० वर्ष पर्यन्त जीवनेच्छा करे, इस प्रकार तुझ मनुष्य में कर्मलेप (बन्धन) नहीं होता, इस के अन्यथा [लेपाभाव] नहीं है ॥ १ ॥

आशय यह है कि यदि मनुष्य चाहे कि मैं बन्धन से छूटजाऊं, मुझ में कर्मलेप न हो, तौ उस को उचित है कि वैदिक कर्मकाण्डानुष्ठान करता हुवा ही जीवन व्यतीत करे और कोई मार्ग नहीं है। अर्थात् केवल ज्ञानकाण्ड शुष्क है वह पूर्ण कार्यसाधक नहीं। आप प्रश्न करेंगे कि—" नहि पङ्केन पङ्काम्भः" वा मैल को मैल ही जैसे शुद्ध नहीं कर सक्ता इसी प्रकार कर्मानुष्ठान द्वारा कर्मबन्धन (जन्ममृत्युजराव्याध्यादि) कैसे छूट सक्ते हैं? तौ उत्तर यह है कि जिस प्रकार मलिन वस्त्र का मल दूर करके उस को स्वच्छ करना चाहें तौ यह नहीं हो सक्ता कि उस को नैष्कर्म्य की भांति ज्यों का त्यों रखा रहने दें और वह स्वच्छ होजावे किन्तु उस पर मलशोधक (साबुन आदि विधिविहित) वस्तु लगाने से ही वह स्वच्छ होगा। इसी प्रकार दार्ष्टान्त में मनुष्य जो अनेक क्लेशकर्मविपाकाशयों से लिथड़ रहा है वह केवल नैष्कर्म्य से स्वच्छावस्था को प्राप्त नहीं होसक्ता किन्तु सन्ध्योपासनाग्निहोमादि विधिविहित कर्मानुष्ठान से ही सुधर कर स्वच्छावस्था को प्राप्त होगा ॥

एक बात यह भी विचारणीय है कि मनुष्य को सुषुप्ति अवस्था के समान सांसारिक वासनाओं से पृथक् होना मात्र ही पर्य्याप्त नहीं किन्तु उस के उपरान्त उसे ब्रह्मानन्द का प्राप्त करना वा जीवन्मुक्ति वा मुक्तावस्था को प्राप्त होना भी परमअभीष्ट है क्योंकि जिस प्रकार मलिन वस्त्र के स्वच्छ होजाने

मात्र से तौ बहुत शीघ्र उस वस्त्र को पुनः मैला होकर रजक (धोबी) का आश्रय लेना और उस के पटड़े पर पड़ापड़ पिटना छितना पड़ता है परन्तु यदि वह किसी पक्के रङ्ग और पॉलिस से चिकना होजाय तौ उसे अपनी वर्त्तमान सृष्टि में पुनः धोबी और उसके पटड़े की पड़ापड़ मार से छुटकारा मिल सक्ता है । इसी प्रकार यदि मनुष्य किसी प्रकार स्वच्छावस्था अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि पर्य्यन्त पहुंचकर भी अपने आप को ज्यों का त्यों छोड़ देगा तौ उस को पुनः शीघ्र ही माता के गर्भाशय रूप रजक के कुण्ड में पकना पड़ेगा परन्तु यदि वह वैदिक कर्मकाण्डानुष्ठान द्वारा शुद्धान्तःकरण होकर भी परमात्मा की भक्ति (तत्प्रवणता) उपासना करता २ परमात्मा का वरण=सर्वतोभाव से प्राप्ति करले तौ निस्सन्देह वह वर्त्तमान सृष्टि पर्य्यन्त पुनर्जन्म से छूट जावे ॥

जब कि वैदिक कर्मकाण्ड साक्षात् तौ नहीं किन्तु परम्परा से पूर्वोक्त प्रकार स्वच्छता सम्पादन कराके मुक्ति का भी बहिरङ्ग साधन है तौ मनुष्यमात्र का परमोपयोगी है । इस मन्त्र के पदों से यह भी ध्वनि निकलती है कि "यदि शतं समाः जिजीविषेत् तर्हि कर्माणि कुर्वन्नेव, नेतोन्यथा" यदि कोई पूर्ण शतवर्षायुः जीवन चाहे तौ वैदिक कर्मों को करता हुवा ही इतना जीवन पा सक्ता है इस के विरुद्ध अपकर्मों से जीवन नष्ट होता है आयुः घटती है। इस लिये आयुर्वृद्धि आदि सांसारिक सर्व सुखभोगों का प्राप्त कराने वाला जो कर्मकाण्ड का अग्रणी "यज्ञ" है उस की व्याख्या का आरम्भ किया जाता है॥

"यज्ञ" शब्द "यज=देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" इस धातु से नङ् प्रत्यय लगाकर सिद्ध होता है । तथा च सूत्रम्–

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ् ॥ ३ । ३ । ९० ॥

महाभाष्यम्–यजादिभ्यो नस्य ङित्त्वे सम्प्रसारणप्रतिषेधः । यजादिभ्यो नस्य ङित्त्वे सम्प्रसारणप्रतिषेधो वक्तव्यः । प्रश्न इति । एवं तर्हि अङिदित्करिष्यते । अङिति गुणप्रतिषेधः । यद्यङित् गुणस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । विश्न इति । सूत्रं च भिद्यते । यथान्यासमेवास्तु । ननु चोक्तं यजादिभ्यो नस्य ङित्त्वे सम्प्रसारणप्रतिषेध इति । नैष दोषः । निपातनात्सिद्धम् । किं निपातनम्, "प्रश्ने चासन्नकाल" इति ॥

अर्थ-यज याच यत विच्छ प्रच्छ और रक्ष इन धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक और भाव में नङ् प्रत्यय हो। महाभाष्य-यजादि से परे नङ् प्रत्यय ङित् है । ङित् मानकर-प्रश्नः यहां सम्प्रसारण प्राप्त है उस के निषेधार्थ वार्त्तिक करना चाहिये। नहीं, नङ् के स्थान में "न,, ऐसा अङित् करा जायगा, ऐसा करने विप्रः यहां गुणप्रतिषेधार्थ वार्त्तिक करना चाहिये। [अर्थात् दोनों दशा में वार्त्तिक करना ही पड़ेगा] सूत्र भी बिगड़ता है इस से ज्यों का त्यों यथान्यास ही रहो । जो शङ्का कर चुके हैं कि सम्प्रसारणप्रतिषेधार्थ क्या करोगे ? । यह शङ्का नहीं बन सक्ती क्योंकि निपात से सम्प्रसारण का निषेध सिद्ध है । निपात क्या है ? उत्तर-" प्रश्ने चासन्नकाले ,, यह सूत्र प्रश्न शब्द में सम्प्रसारणाभाव का ज्ञापक है ॥

इस प्रकार यदि भाव में प्रत्यय माने तौ देवपूजन, सङ्गति करना और दान अर्थ होगा । और यदि अधिकरणादि कर्त्तृभिन्न कारकों में प्रत्यय माने तौ देवपूजादि के स्थान हवनकुण्डादि अर्थ यज्ञ शब्द के वाच्य होंगे । सङ्गतिकरण अर्थ को लेने से यज्ञ शब्द का बड़ा ही विस्तृत अर्थ हो जाता है । समस्त पदार्थविज्ञान और तदनुकूल पदार्थों की सङ्गति करके समस्त सांसारिक सुख की धर्मानुकूल सामग्री उत्पन्न करना, यज्ञ शब्द का अर्थ होगा । परन्तु इस प्रकार के यज्ञ का तौ आजकल स्वयमेव बड़ा भारी प्रचार होरहा है और बहुत दूर तक इस में सफलता प्राप्त हो रही है किन्तु यज्ञ शब्द के देवपूजापरक अर्थ में आज कल बहुत ही अनर्थ होरहा है इस लिये हम इस अंश पर ही व्याख्या करेंगे । देवपूजा की दुरवस्था का कारण, वेदार्थ का न जानना है । वेदार्थ के न जानने का कारण उस का अनभ्यास है । अनभ्यास से मृत्यु आदि दुःख भोगने पड़ते हैं । जैसा किः-

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥

वेद के अनभ्यास, आचारत्याग, आलस्य और अन्नदोष से ज्ञानिविप्रों को मृत्यु ग्रसना चाहता है। अर्थात् यदि पूर्वोक्त दोषों को बचावें तौ दीर्घायुः होसक्ते हैं । वेदाभ्यास से देवपूजादि का ठीक तात्पर्य्य समझ सक्ते हैं और तदनुकूल अनुष्ठान कर सक्ते हैं । अब हम को विचारना चाहिये कि वेद में देव वा देवता क्या पदार्थ है ?

वैदिकदेवता ।

यद्यपि देवता शब्द के क्रीडादि धात्वर्थवश से बहुत अर्थ हैं तथापि यज्ञप्रकरण में इस के विशेष अर्थ का विचार करना है ॥

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। निरु० अध्याय ७ खण्ड १५ ॥

दान, दीपन, द्योतन और द्युस्थान [प्रकाशस्थान] होने से "देवता" होता है (होतीहै)। यद्यपि पूर्णदान, पूर्णप्रकाश, पूर्णद्योतन (जताना) और पूर्ण प्रकाश का स्थान तो अचिन्तनीय ज्योतिष्मान् सच्चिदानन्द परमात्मा ही है और इस कारण ये सब अर्थ असीमभाव से उसी में मुख्य कर के घटते हैं तथापि सांसारिक सुख भोग के अभिलाषी मध्यम अधिकारियों के लिये उन के अभीष्ट इन्द्रियोपभोग्य स्वादुरस सुगन्धादि से होने वाले सुखों की प्राप्ति के अर्थ सूर्य्यादि भौतिक पदार्थ भी (जो ब्रह्मबुद्धि से उपास्य नहीं हैं) ससीम प्रकाशादि दिव्यगुणों के धारण करने वाले होने से गौणभाव से "देवता" हैं जिन का वर्णन वेद में इस प्रकार हैः—

अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्य्योदेवता चन्द्रमादेवता वसवो देवता रुद्रादेवता आदित्यादेवता मरुतोदेवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवता वरुणोदेवता ॥ यजुः १४ । २० ॥

वसवोष्टौ, रुद्राएकादश, आदित्याद्वादश, मरुतऋत्विजः—मरुतइत्यृत्विङ्नामसु निघण्टौ पठितम् ३। १८, विश्वेदेवाः सर्वे ब्रह्माण्डस्था दिव्याः पदार्था मनुष्याश्च, इन्द्रोविद्युत्, वरुणोजलं वरगुणाढ्योर्योन्यो वा। अन्यत् स्पष्टम्। एते देवता भवन्ति इति शेषः। यथोक्तं शतपथे कां० १४ प्रपा० १६ कं० ३—१०॥

सहोवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिꣳशत्त्वेव देवाइति। कतमे ते त्रयस्त्रिꣳशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिꣳशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिꣳशाविति ॥ ३ ॥ कतमे वसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तिरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳसर्वं वसु हितमेतेहीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ ४ ॥ कतमे रुद्राइति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५॥ कतमआदित्या इति, द्वादशमासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एतेहीदꣳसर्वमाददाना यन्ति तद्यदिदꣳसर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ६ ॥ कतम

इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति । स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति, कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति, कतमो यज्ञइति पशवइति ॥ ७ ॥ कतमे त्रयोदेवा इतीम एव त्रयोलोका एषु हीमे सर्वे देवाइति ॥८॥ कतमौ द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति । कतमोऽध्यर्ध इति योयं पवत इति ॥९॥ तदाहुःयदयमेकएव पवतेऽथ कथमध्यर्धइति यदस्मिन्निदं सर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति॥ कतमएकोदेव इति । स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥१०॥

ऊपर लिखे यजुर्मन्त्र में इस प्रकार देवतों के नाम बताये हैं कि—अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा, ८ वसु—अग्नि पृथ्वी वायु अन्तरिक्ष आदित्य द्यौः चन्द्र और नक्षत्र, ११ रुद्र—प्राण अपान उदान समान व्यान नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनञ्जय, १२ आदित्य-वर्ष के १२ मास, मरुत्—ऋत्विज् लोग, विश्वेदेवाः—संसार भर के दिव्य गुणयुक्त पदार्थ और मनुष्य । बृहस्पति—परमात्मा, इन्द्र—बिजली और वरुण—जल वा अन्य पदार्थ जो वरणीय गुणों से युक्त हो । ये सब पदार्थ देवता हैं । पूर्वोक्त ८ पदार्थ वसु इसलिये हैं कि (एतेषु हीदꣳसर्वं वसु हितम्) इन में ही यह सब सुवर्णादि धन रखा है [एते हीदꣳसर्वं वासयन्ते] येही इस सब [जगत्] को बसाते हैं [इस से यह भी सूचित है कि सूर्य्यादि लोकों में भी वसतियां हैं] पूर्वोक्त ११ पदार्थ रुद्र इसलिये हैं कि—[यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्रुद्रो०] जब मनुष्यदेह से ये प्राणादि ११ रुद्र निकलते हैं तब इष्ट मित्र सम्बन्धियों को रोदन कराते हैं बस रोदन कराने से रुद्र नाम पड़ा । पूर्वोक्त संवत्सर के १२ मास आदित्य इसलिये हैं कि (एते हीदꣳसर्वमाददाना यन्ति०) ये चैत्रादि द्वादश मास ही सब जगत् को लिये हुवे जाते हैं इस से आदित्य नाम पड़ा । यह तो शतपथ ब्राह्मण के वचन का अर्थ है । विशेष यह है कि क्या सप्ताह के ७ वार, वा अहोरात्र के दो भाग दिन और रात्रि, वा शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष ये सब भी तो जगत् को लिये हुवे जाते हैं ये भी आदित्य होसक्ते हैं ? नहीं, इस में सूक्ष्म विचार है । कल्पना करो कि आज रविवार है और ७ दिन पश्चात् यही रविवार फिर आवेगा परन्तु यह रविवार ठीक आगामी रविवार के तुल्य नहीं हो सक्ता क्योंकि इस रविवार में १४ तिथि है आगामी में ६ तिथि होगी जैसी और जितनी चन्द्र वा सूर्य्यादि की ठण्ड और उष्णतादि आज है आगामी ६ तिथि रविवार को न होगी क्योंकि चन्द्रकला न्यून हो जायगी, उत्तरायण के कारण सूर्य की उष्णता बढ़ जायगी इत्यादि अनेक कारणों से आज का रविवार आगामी रविवारों की अपेक्षा बहुत ही भेद रखता है । इसी प्रकार आज के दिन और रात्रि के सदृश आगामी दिन

रात्रि भी. सूर्य्यादि की उष्णता आदि के भेद से कभी नहीं हो सक्ते हैं । तथा यही भेद वर्त्तमान शुक्ल कृष्ण पक्ष के सदृश आगामी शुक्ल कृष्ण पक्ष की तुल्यता में भी बाधक है । इस लिये चैत्रादि १२ मास ही पुनः २ लौट कर अधि-कांश में तुल्यावस्था से आते हैं । जैसे—सास्मिन्पौर्णमासीति । अष्टाध्यायी ४।२।२० इस सूत्र के अनुसार चित्रानक्षत्रयुक्त पौर्णमासी जिस मास की वह चैत्र, विशाखानक्षत्रयुक्त पौर्णमासी जिस मास की वह वैशाख, इसी प्रकार ज्येष्ठा न०—ज्यैष्ठ, आषाढा नक्ष०—आषाढ, श्रवण न०—श्रावण, भाद्रपदा न०—भाद्रपद, अश्विनी०—आश्विन, कृत्तिका०—कार्त्तिक, मृगशिर०—मार्गशिर, पुष्य न०—पौष, मघा०—माघ और फल्गुनी०—फाल्गुन ॥

बस जिस नक्षत्र से युक्त जिस मास की पौर्णमासी इस वर्ष है प्रायः उसी नक्षत्र के लगभग सहस्रों वर्ष से उस २ मास की पौर्णमासी होती रही हैं । और सौर मास की रीति से संक्रान्तिमास १२—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुम्भ और मीन ये १२ संक्रान्ति भी इस वर्ष के समान सब वर्षों में हुई और होंगी इस कारण १ वर्ष के १२ सौर वा चान्द्र मास ही १२ आदित्य हो सक्ते हैं अन्य कालविभाग नहीं ॥

मरुत् यह निघण्टु ३ । १८ में ऋत्विजों का नाम है, (ऋत्विज् का व्याख्यान वेदमन्त्र द्वारा आगे करें गे) विश्वेदेवाः—सब ब्रह्माण्डस्थ दिव्यपदार्थ और मनुष्य, बृहस्पति—देवतों का भी राजा परमात्मा, इन्द्र बिजुली और वरुण—जल वा अन्य वरणीय पदार्थ । ये सब देवता हैं अर्थात् प्रकाशादि दिव्य गुणयुक्त पदार्थ हैं । यह यजुर्मन्त्रार्थ हुवा ॥

अब ऊपर लिखे शतपथब्राह्मण का अर्थ सुनिये । शाकल्य ऋषि से याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि ३३ देवता कौन से हैं । ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य ये ३१ हुवे । इन्द्र और प्रजापति ये मिलकर ३३ हुवे । इन्द्र किसे कहते हैं? स्तनयित्नु अर्थात् बिजुली को । प्रजापति कौन सा है ? यज्ञ प्रजापति है । प्रजापति क्या है ? पशु ही प्रजापति हैं क्योंकि प्रजा का पालन इन्हीं से होता है ॥ तीन देवता कौन २ हैं?—३ लोक ही ३ देवता हैं क्योंकि इन्हीं ३ लोकों में ये सब देवता अन्तर्भूत हैं ।

धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति ।

निरुक्त ९ । २८ ॥

स्थान नाम जन्म ये ३ धाम वा लोक हैं ॥ दो देवता क्या २ हैं ? अन्न

और प्राण (जो खाया जाय वह अन्न और जो खाने वाला वह प्राण) ॥ अध्यर्ध कौन है ? पवमान ही अध्यर्ध है क्योंकि वह अकेला ही पावन करता है, इस का नाम अध्यर्ध कैसे पड़ा ? क्योंकि इस अध्यर्ध अर्थात् पवन में ही यह सब जगत् ऋद्ध वृद्ध होता है इस कारण अध्यर्ध नाम पड़ा ।९-एक देवता कौन है ? वह ब्रह्म है । ऐसा आचार्य्य लोग कहते हैं ॥ इति ॥

प्र०—क्या इन सब देवतों की उपासना करनी चाहिये ? उ०—नहीं क्योंकि:—

आत्मेत्येवोपासीत । स योन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियᳬं रोत्स्यतीति । ईश्वरोह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत । स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति । योन्यां देवतामुपास्ते न स वेद यथा पशुरेवᳬं स देवानाम् । शतपथ कां० १४ अ० ४ ॥

अ०—आत्मा ही की उपासना करे । जो कोई आत्मा से अन्य को प्रिय कहे उसे उत्तर देना चाहिये कि तू प्रिय को रोवेगा । ईश्वर ही (शेष आगे)

पितृलोक और श्राद्ध ।

इस शीर्षक का लेख प्रथम कानपुर के सत्यसिन्धु पत्र में मुद्रित हुवा था अब ६ । १ । ०७ के मित्रविलास ने उद्धृत किया है । यह लेख मृतकश्राद्ध का पोषक समझ कर दोनों पत्रों ने लिखा है परन्तु इस से मृतकश्राद्ध की गन्धमात्र भी पुष्टि नहीं होती । हम उस को उद्धृत कर के समीक्षा करते हैं जिस से पाठकों को भ्रान्ति न रहे । मित्रवि० ६ । १ । ०७

ज्योतिषशास्त्र के गणित स्कन्ध के अनुसार यह वार्त्ता सिद्ध है कि चन्द्रलोक अर्थात् चन्द्रमण्डल अन्य ग्रह उपग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी के अधिक समीप है और केवल पृथ्वी के समीप ही नहीं है किन्तु पृथ्वी का अंश विशेष भी कहा जासक्ता है, महासागर के मध्य में बसे हुए किसी महाद्वीप के समीप का छोटा द्वीप जिस प्रकार तिस महाद्वीप के स्वभाव को अधिकतर धारण करता है, तिसी प्रकार अनन्त आकाश के मध्य में स्थित पृथ्वी के सम्बन्ध से चन्द्रमण्डल भी पृथ्वी के स्वभाव को धारण करता है, जिस प्रकार पृथ्वी में मृत्तिका का भाग अधिक होने के कारण पृथ्वी "मृण्मयी" कहलाती है तिसी प्रकार चन्द्रमण्डल में जल का भाग अधिक होने से इस को "जलमय" कहते हैं परम माननीय ज्योतिष सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में कहा भी है ।

उपचितिमुपयातिशौक्ल्यमिदोस्त्यजतइमंव्रजतश्चमेचकत्वम्
जलमयजलजस्य गोलकत्वात्प्रभवतितीक्ष्णविषाणतास्य० ॥

और जलमय होने पर भी चन्द्रमण्डल में प्राणिविशेषों का वसोवास है, विशेषतः चन्द्रमण्डल के ऊपर के भाग में पितृलोक की स्थिति है, जैसा कि उस ही सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है ।

"विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति"

अर्थात् चन्द्रमण्डल के ऊपर के भाग में पितर वसते हैं । चन्द्रमण्डल का नीचे का आधा भाग मनुष्यों को दीखता है और ऊपर का आधा भाग कभी भी देखने में नहीं आता है, वह चन्द्रमण्डल का अदृश्य ऊपर का भाग ही पितृलोक है, जिस प्रकार पृथ्वी पर सूर्य्य का दीखना दिन का और न दीखना रात्रि का कारण है, सिद्धान्त शिरोमणि में कहा भी है ।

कुपृष्ठगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितृणां शशिपृष्ठवासिनाम् ।

अर्थात्–जिस प्रकार पृथ्वी पर वसने वाले मनुष्यों के दिन रात्रि होते हैं, तिसी प्रकार चन्द्रमण्डल के ऊपर के भाग में वसने वाले पितरों के दिन रात्रि होते हैं परन्तु जिस प्रकार पृथ्वी पर चौवीस घंटे का दिन रात होता है, ऐसा पितृलोक में नहीं होता किन्तु कृष्ण पक्ष की अष्टमी के शेष अर्द्धांश से शुक्लपक्ष की अष्टमी के प्रथमार्द्ध पर्य्यन्त पितरों का दिन होता है, और शुक्लपक्ष की अष्टमी के शेष अर्द्धांश से कृष्णपक्ष की अष्टमी के प्रथमार्द्ध पर्य्यन्त पितरों की रात्रि होती है इस कारण अमावास्या पितरों का मध्यान्ह और पूर्णिमा अर्द्धरात्रि होती है तथा कृष्णपक्ष की अष्टमी प्रातःकाल और शुक्लपक्ष की अष्टमी सध्ध्या काल होता है इस कारण ही जो मनुष्यों का चांद्र मास होता है वही पितरों का एक दिनरात होता है, चन्द्रमण्डल में पितरों के सिवाय और प्राणी रहते हैं या नहीं? इस विषय का विचार हम यहां नहीं करेंगे क्योंकि इस प्रबन्ध में विशेषतः हमें पितरों का ही परिचय देना है । हमारे शास्त्रों में दो प्रकार की पारलौकिक गति लिखी है । एक अनावृत्ति और दूसरी पुनरावृत्ति, जो प्राणी ज्ञान और भक्ति के द्वारा पुण्य पाप रूप कर्म्मबन्धन से छूट जाते हैं उन का आत्मा मरण के अनन्तर सूर्य्य की किरणों के द्वारा सूर्य्यमण्डल में जाता है, सूर्य्यमण्डल को प्राप्त होने के अनन्तर अविनाशी विष्णुलोक में जाकर वह आत्मा सविता देवता के गर्भस्वरूप ब्रह्मतेज में लीन हो जाता है और उस आत्मा को पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) नहीं होता है । ज्ञानी पुरुष ब्रह्मनिर्वाण और भक्त पुरुष सच्चिदानन्दमय अप्राकृत मुक्ति को प्राप्त होकर कृतार्थ होते हैं, परन्तु जो पुरुष ज्ञान और भक्ति कर के रहित

हैं वह सदसत् कर्मों के द्वारा पुण्य पापों का सञ्चय करते हैं, और उन पुण्य पाप कर्मों के अनुसार फल भोगने के निमित्त उन का आत्मा मरण के अनन्तर चन्द्रमा की किरणों के द्वारा चन्द्रमण्डल में चला जाता है, वह चन्द्रलोक में गये हुए सम्पूर्ण आत्मा ही पितृलोक में पितर कहाते हैं, चन्द्रमण्डल में गये हुए आत्मा की पुनरावृत्ति होती है अर्थात् शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के निमित्त उन का पुनर्जन्म होता है, सोई गीता के ४ अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने श्रीमुख से कहा है कि:—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लःषण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदोजनाः ॥२४॥
धूमोरात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥२५॥

मृत्यु के अनन्तर जीव का पुनर्जन्म होता है। इस विषय में हिन्दू समस्त बाल, वृद्ध वनिता सब ही विश्वास करते हैं, परन्तु किस प्रकार जीवका पुनर्जन्म होता है, और किस प्रकार जीव माता के गर्भ में प्रवेश करता है, इस वार्ता को हमारे बहुत से भ्राता नहीं जानते, विदेशीय विजातीय पुरुष हमारे सनातन शास्त्रों की इस जन्मान्तरवाद की कथा को सुन कर कोई हास्यरस में गोते लगाते हैं और कोई आश्चर्य्य के समुद्र में निमग्न होजाते हैं, खैर जो कुछ हो जन्मान्तर सन्दिग्ध है वा असंदिग्ध, इस विषय पर जो कुछ कहना है सो फिर किसी अङ्क में लिखेंगे हिन्दू शास्त्र के अनुसार जीव का पुनर्जन्म किस रीति पर होता है, कहते हैं। वाल के अग्र भाग के सौ भाग करने पर जितना सूक्ष्म होता है जीवात्मा उस से भी सूक्ष्म पदार्थ है, अर्थात् जिस प्रकार पदार्थों में परमाणु सूक्ष्म है तिसी प्रकार चेतन जीवात्मा भी सूक्ष्म है वह आत्मा पहले कहे हुए नियमानुसार शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के लिये चन्द्रलोक में जाता है और नियमित समय के अनन्तर कुहर में मिलता है और पृथ्वी पर धान्यादि भोजन के पदार्थों में गिर कर कुछ काल तहां ही स्थित रहता है, तदनन्तर मनुष्यादिकों के भोजन के योग से वीर्यरूप होकर स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है और कर्मों के अनुसार मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनि में शरीर धारण करता है, इस प्रकार प्रसङ्ग में पुनर्जन्म होने की रीति शास्त्रानुसार कही अब प्रचलित विषय में आकर लेख को समाप्त करते हैं, शास्त्र में पितरों के निमित्त जो पार्वण श्राद्ध करने की विधि है उस को इस समय अनेक हिन्दू सन्तान भूल गए हैं, अमावास्या के दिन पार्वण श्राद्ध में जो पिण्ड दिए जाते हैं वह पितरों का भोज्य अन्न है, मनुष्यों के भोजन करने

का मुख्य समय मध्याह्न है उसी प्रकार पितरों का भोज्य अन्न (पिण्ड) पितरों के मध्याह्नकाल अमावास्या तिथि में देवे, अमावास्या के दिन श्राद्ध करने का यही युक्ति कारण है, पहिले ऋषियों में प्रातर्भोजन (प्रातराश) की रीति भी प्रचलित थी, इस कारण यदि वह पितरों को प्रातर्भोज कराते थे अर्थात् कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन भी श्राद्ध करते थे, परन्तु भोजन का मुख्य काल मध्याह्न ही है, शास्त्र के विचारानुसार अमावास्या के दिन श्राद्ध करने का जो हमें अपनी बुद्धि के अनुसार प्रतीत हुआ वह यहां लिख दिया विद्वान् पाठक महाशय ! इस में यदि कोई भ्रम प्रमाद देखें तो और कोई प्रबल ग्राह्य युक्ति लिख कर संशोधन कर देवें, इस से मैं अपना परम लाभ समझूंगा, क्योंकि हमारी आंतरिकइच्छा शास्त्रों के गूढ़ तात्पर्य्य प्रकाशित होने की है ॥ सत्यसिन्धु ।

समीक्षा—चन्द्रलोक की पृथिवीलोक की समीपता सिद्ध करने से पितरों का पृथिवी पर आना जाना मान लिया जावे तो उसी प्रकार पृथिवी के निवासियों का चन्द्रमण्डल में निमन्त्रणादि पाने पर भोजनार्थ जासकना भी मानना चाहिये परन्तु चन्द्रमण्डल में कोई मनुष्य पशु पक्षी आदि नहीं जासक्ता तो चन्द्रमण्डल में रहने वाली पितरनामक सृष्टि के प्राणी भी यहां नहीं आसक्ते तो पितरों का आवाहनादि व्यर्थ ही रहा। पाठक महाशयो ! इस लेख से मृतकश्राद्ध की पुष्टि तो न हुई किन्तु हम तो ज्योतिषशास्त्रानुसार चन्द्रमण्डल को पृथिवी के समीप मानते ही हैं परन्तु श्रीमद्भागवतपञ्चम स्कन्ध २१ व २२ अध्याय में जो अद्भुत खगोलवृत्तान्त वर्णित है आज उस का खण्डन पौराणिक पत्रों से भी सिद्ध होगया । देखो श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अध्याय २२ दण्डक ८—

एवं चन्द्रमाअर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजन उपरि लभ्यमानोऽर्कस्येत्यादि—॥८॥

अर्थात् ऐसे ही चन्द्रमा सूर्य किरणों से ऊपर की ओर १ लक्ष योजन ऊंचा है इत्यादि ॥ हमारे सहयोगी पत्र, निरक्षरमण्डल के लिये श्राद्धभोजन की पुष्टि के अर्थ उद्योग करते थे परन्तु उन्हें स्मरण न रहा कि—" विद्यावतां भागवते परीक्षा,, की समीक्षा हुई जाती है और ब्रजमण्डल तथा गोलोक के ट्रस्टी गोस्वामी जी की कितनी हानि हुई जाती है । सत्य है कि पक्षपात में मनुष्य प्रायः अपनी ही हानि कर बैठते हैं ॥

और यह कि " पृथ्वीमण्डल के समान चन्द्रमण्डल में भी चराचर प्राणियों का निवास है,, कुछ नई वा मृतक श्राद्ध की पोषक बात नहीं । चन्द्रादि लोकों में सृष्टि का होना श्रीस्वामिदयानन्दसरस्वतीजी वेदभाष्यभूमिका पृष्ठ ६६ में सिद्ध करचुके हैं और वेदप्रकाशपत्र पृष्ठ ७१८ में ८ वसुओं का वर्णन करते हुए भी यह सिद्ध किया गया है । जैसे पृथिवी की जीवजातियों में सब

से उत्कृष्ट मनुष्यजाति है उसी प्रकार चन्द्रमण्डल की वसति में पितरजाति-विशेष के वसने से क्या यहां के मृतक श्राद्ध की पुष्टि होसक्ती है कदापि नहीं। यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई कहे कि-

"इंगलेंड नें अंग्रेज़ वसते हैं अतएव भारतवर्ष के लोग अंग्रेज़ों का मन्त्र पढ़कर आवाहन कर श्राद्ध करें तो उन की तृप्ति और आना जाना सिद्ध हो गया चाहे उन के आने को मार्ग न हो,, ।

जिस प्रकार दृष्टान्त असङ्गत है वैसे ही दार्ष्टान्त भी । चाहे चन्द्रलोक-वासियों की दिन रात्रि कितनी ही हम से बड़ी वा छोटी हों परन्तु इस से यह फल निकालना कि हमारे पूर्वज वहां से यहां आमावास्यादि का श्राद्ध भोजन करने आते हैं नितान्त भ्रम है ॥

कोई जीव सदसत्कर्म के फलभोगने के लिये चन्द्र वा किसी अन्य लोक में जन्म लेते हैं और दूसरे बन्धन से छूटकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं। यह भी कुछ मृतक श्राद्ध की पुष्टि की बात नहीं । जैसे अपने २ कर्मफलभोगार्थ अन्य द्वीप द्वीपान्तरों योन्यन्तरों और लोकान्तरों में जीवात्मा जन्म ग्रहण करके स्वकृत कर्मफल भोगता है इसी प्रकार चन्द्रलोक में भी कोई जीवात्मा कर्म-फलभोगार्थ जावें तो इस से यह कैसे सिद्ध होगया कि पूर्वज पितर हमारे श्राद्धों का भोजन करने आते हैं ॥

पाठक महाशय यह भी ध्यान दें कि जीवात्मा वीर्य्यरूप होकर योनि-द्वारा जन्म लेता है । यह लिखना कितने अज्ञान की बात है वास्तव में जी-वात्मा वीर्य में प्रविष्ट होकर तो जन्म लेता है परन्तु वीर्यरूप होकर नहीं क्योंकि आत्मा चेतन है वह वीर्यरूप जड़ कैसे हो सकता है। जीवात्मा जल ओषधि वीर्यादि में होकर गर्भ में जाता है इस विषय को यह मन्त्र स्पष्ट निरूपण करता है:-

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीष्वनुरुध्यसे । गर्भे संजायसे पुनः । यजुः अ० १२ मं० । ३६ ॥

हे अग्ने ! ज्ञानाधिकरण जीवात्मन् ! तव अप्सु सधिः सहस्थितिरस्ति सः त्वम् ओषधीषु अनुरुध्यसे पुनः गर्भे सञ्जायसे ॥

हे जीव ! तू जल में स्थित होता है तू ओषधियों में रुकता और फिर गर्भ में उत्पन्न होता है ॥ इस से आगे यह मन्त्र है:-

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य

ओ३म्

वेदप्रकाश ॥

वेदप्रकाशो वेदस्य गौरवं सुप्रकाशयेत् ।
तद्वारकतमोराशिं समन्ताच्च विनाशयेत् ॥

—*०*—

वेदोक्त धर्म प्रतिपादन और तद्विरुद्धमत-
निराकरणविषयक

मास (२)	मासिक पत्र	(१) वर्ष

जो

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक और प्रकाशक द्वारा तदीय स्वामियन्त्रालय मेरठमें मुद्रित और प्रकाशित होता है

संवत् १९५३ ॥ ७७० ॥ २८ । २ । १८९७ ई०

नियम ।

१–वार्षिक अग्रिममूल्य १) पश्चात् १।।) लिया जायगा परन्तु ३ मास के भीतर भेजा हुवा मूल्य अग्रिम समझा जायगा। मेरठमें अग्रिम ।।।) पश्चात् १)

२–नमूनेमात्रका अङ्क जिन सज्जनोंके पास भेजा जायगा यदि वे ग्राहक होनेको पत्र न लिखेंगे तो दूसरी कापी न भेजी जायगी इस कारण नाम, ग्राम, डाकघर, ज़िलाके पते सहित पत्र अवश्य लिखें।

३–सर्वसाधारणके समाचार [ख़बर] इसमें नही छपेंगे।

४–विशेष उपकारक पुस्तकोंकी समालोचना भी टैटिलपेज पर छप सकेगी।

५–विज्ञापनकी बंटाई एक बारमें २) लीजायगी और विज्ञापन पर "वेदप्रकाशका क्रोडपत्र" यह लिखा होना चाहिये।

२ "ऋगादिभाष्य भूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः".

ऐसा और इतना संक्षेपसे अब तक कोई नहीं छपा ! शब्दप्रमाण द्वारा "मन्त्रब्राह्मण दोनों वेद हैं वा क्या,,? इत्यादिका निर्णय ७१ प्रमाणोंसे किया है। इसमें अथर्ववेद, तैत्तिरीय, शतपथब्रा०, साङ्ख्य, कात्यायन, बौधायन परिशिष्ट, मीमांसा, मनुस्मृति, ऐतरेयब्रा०, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, कौशिकसूत्र, अमरकोश, लघुशब्देन्दुशेखर, निरुक्त, सायणभाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, वेदान्तसूत्र, न्यायदर्शन, तैत्तिरीयआरण्यक, पिङ्गलसूत्र, चरणव्यूह, न्यायविस्तर, इन २७ ग्रन्थोंसे बहुत से प्रमाण संग्रह करके (मैंने) तुलसीराम स्वामीने बनाया -)॥। तथा प्रथमोंऽशः (इसमें अदितिकी कथा दर्शनीय है) -)॥

सूचना

वेद प्रकाश के दूसरे नियमानुसार जिन सज्जनों को प्रथम अङ्क भेजा गया और द्वितीय अङ्क उनका स्वीकार न आने से नहीं भेजा गया उनको पुनः स्मरणार्थ सूचना है कि वे हमारी इस धृष्टता को क्षमा करें क्योंकि उन्होंने ही द्वितीय नियम पर दृष्टि नहीं दी है। अतएव जो महाशय ग्राहक होकर अनुग्रह करें वे अग्रिम मूल्य १) अथवा स्वीकार का पत्र नाम धाम डाकघर जिला आदि पते सहित अवश्य लिख भेजें। अन्यथा हमें दोष न दें। और कोई महाशय दयानन्द ति० भा० के खण्डनादिका मूल्यभी इसके साथ भेजें तौ वे मनीआर्डर के कूपन पर यह अवश्य लिख दिया करें कि इतना मूल्य वेदप्रकाश मध्ये और इतना अमुक पुस्तकादि मध्ये है॥

प्रत्येक ग्राहक को ध्यानपूर्वक अपने नाम के पूर्व का नम्बर जो "वेदप्रकाश" के लिफ़ाफ़े पर लिखा वा छपा रहता है स्मरण रखना वा कहीं लिख लेना चाहिये और जब कभी वे सम्पादक से पत्रव्यवहार करें तब अपने नाम से पूर्व उस नम्बर को लिख दिया करें जिससे एक नामके कई ग्राहकादि का भ्रम न हो। और पत्रव्यवहार जहां तक सम्भव हो कुछ कष्ट उठाकर भी नागरी अक्षरों में सुस्पष्ट करना अच्छा है॥

मूल्यप्राप्तिस्वीकार ॥ २७।१।९७ से १५।२।९७ तक ॥

१२ बा० देवीसिंहजी जालन्धर	१)	६० बा० रणजीतसिंह कानपुर	१)
५२ चौ० पद्मसिंहजी इटावा	१)	६१ बा० घनश्यामदास ,,	१)
५७ पं० भैरवदत्तजी इटावा	१)	६४ बा० आनन्दलाल मथुरा.	१)
५८ बा० बदनसिंह कानपुर	१)	६५ पं० राजपतिशर्म्मा कानपुर	१)
५९ बा० ब्रजविहारीसेठ गोरखपुर	१)	७ पं० दामोदरदास आगरा.	१)

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { २ मास

(गत अङ्क पृष्ठ १५ से आगे पितृलोक और श्राद्ध)

भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥ ३७ ॥

अन्वयः स्पष्टः—हे अग्ने जीवात्मन्! तू ओषधियों का गर्भ होता है तू वनस्पतियों का गर्भ होता तू सब प्राणियों का गर्भ होता तू जलों का गर्भ होता है॥

जब कि कृष्ण पक्ष की ८ अष्टमी से शुक्ल पक्ष की ८ अष्टमी के प्रथमार्ध पर्य्यन्त पितरों का दिन होता है तो प्रथम तो उन का दिन कभी क्यों न हो, हमारे दिये अन्न पिण्डादि पहुंचने का हेतु नहीं हो सक्ता। जिस प्रकार इसी पृथिवी के ध्रुव भागों पर ६ मास का दिन और ६ मास की रात्रि होती है तो क्या हमारा उत्तरायण का दिया हुवा कोई पदार्थ ध्रुवशील के निवासियों को पहुंच सक्ता है? कभी नहीं। परन्तु यदि हम कुछ देर को मान भी लें कि पहुंचता ही है तो पार्वणश्राद्ध कृष्ण पक्ष ही में क्यों होता है और आमावास्या के अतिरिक्त मृतक की मरणतिथि में क्यों करते हैं और क्षयाह श्राद्ध की तिथि यदि पितरों की रात्रि के १५ दिन में आवे तो क्या उन का श्राद्ध निष्फल जाता होगा? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर दुस्तर है॥

चन्द्रमण्डल में पितरों के अतिरिक्त अन्य प्राणी रहते हैं वा नहीं? इस प्रश्न को उपस्थित करके भी लेखक महाशय ने आगे के लिये छोड़ दिया परन्तु उन के भी इस लेख से कि "विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति = चन्द्रमा के ऊर्ध्वभाग में पितर रहते हैं" सिद्ध होता है कि अधोभाग में अन्य प्राणिवर्ग हों यह सम्भव है। परन्तु अन्य प्राणियों का होना न होना क्यापितृजाति का होना न होना भी मृतकश्राद्ध की पुष्टि का हेतु नहीं है॥

पुनरावृत्ति और अनावृत्ति का एक बड़ा विषय है इस लिये वेदप्रकाश के अग्रिम अङ्कों में इस की मीमांसा की जायगी तथापि मुक्त आत्मा सूर्य की किरणों द्वारा विष्णुलोकादि किसी स्थान विशेष में जाता है इत्यादि लेख तौ सर्वथा प्रमाणशून्य भ्रमात्मक है और ऐसी मुक्ति भी नहीं हो सक्ती किन्तु यह लोक जैसा बन्धन है तैसा अन्य लोक भी बन्धन हुवा ॥

यदि चन्द्रलोक को गये सम्पूर्ण आत्मा ही पितृपद को प्राप्त होते हैं और उन की पुनरावृत्ति भी होती है तौ जैसे अन्य बहुत योनि हैं ऐसे ही एक चन्द्रलोक सम्बन्धी पितृयोनि है जिस प्रकार अन्य योनिस्थ जीवों को विना साक्षात् सम्बन्ध के भोगादि प्राप्त नहीं हो सक्ते इसी प्रकार पितृलोकस्थों को भी नहीं ॥

लेखक महाशय ने और बातों के तौ प्रमाण भी दिये कि चन्द्रमा पृथिवी के समीप है । चन्द्र के ऊर्ध्वभाग में पितर रहते हैं । वहां गये हुए आत्मा यहां भी आकर जन्म लेते हैं इत्यादि । परन्तु इस विषय का एक भी प्रमाण नहीं दिया कि वहां के पितर यहां इस प्रकार इस समय आते हैं और आने सम्भव हैं । प्रमाण कहां से देते यथार्थ में यह सिद्धान्त अपशास्त्रीय है कि हमारा दान किया भोजनादि लोकान्तरवासी वा योन्यन्तरवासियों को मिल सके ।

हम वेद के सिद्धान्तानुसार यह बतला चुके हैं कि मरने पश्चात् आत्मा कैसे कहां जाकर पुनर्जन्म ग्रहण करता है ।

यह श्राद्ध और पितृलोक की समीक्षा समाप्त हुई । इस लेख में जो अपुनरावृत्ति अर्थात् मरण होकर पुनर्जन्म न होने का वर्णन किया है उस का तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार अन्य जीव देह त्यागते ही शीघ्र देहान्तर धारण करते हैं वैसे मुक्त जीव नहीं । परन्तु इस कल्प के पश्चात् वे भी पुनर्जन्म धारण करें गे । इस विषय पर विस्तार पूर्वक वेद का सिद्धान्त हम फिर कभी वर्णन करें गे प्रसङ्गवश इतना यहां लिख दिया है । इति ॥

ओ३म्

बिजनौर में शास्त्रार्थ का उद्योग और उसका परिणाम ।

विदित हो कि बिजनौर [रुहेलखण्ड पश्चिमोत्तरदेश] नगर में थोड़ेकाल से एक साधु जिनका नाम शिवाश्रम है आये और यह प्रसिद्ध किया कि "हम आर्य्यसमाजों को पराजित करते आते हैं यहां भी कोई आर्य्य हमारे सामने आवे तौ हम उसे वे सम्पूर्ण विधि वेद में दिखलादें जिन को कि आर्य्य सामाजिक लोगों वा स्वामीदयानन्द सरस्वती ने नहीं माना" इसके अतिरिक्त एक महा अशुद्ध संस्कृत पत्र आर्य्यसमाज बिजनौरके मन्त्रीके पास भेजा जिसकी अक्षरशः प्रतिलिपि [नक़ल] नीचे लिखी जाती है :—

श्रीशिवाश्रम'(१)श्वामीभि':सभापत्रन्द'त'म्भगवान्दासाय समाज म'न्त्र'णे वियनौर'ग्राम' निवासिने ग्रे मूर्तिपूजाविषयेपाता लेश्वरस्थानेव्याख्या ...... भविष्यतिभवद्भिःस्वकीयपण्डितैःसाकमत्रागत्य वेदविषयेधर्मशास्त्रविषयेचयत्रकुत्रविषयेशास्त्रा'र्थ'कर्त्तव्योमध्यस्थङ्कृत्वा पौषमासेशुक्लपक्षे एकादश्यान्तिंथौ गुरुवासरे-परा'ह्ने' तृतीप्रहरे भव'ता'मपसरणन्नकर्त्तव्यम् ॥

इसपर बिजनौर आर्य्यसमाज ने निम्न लिखित पत्र उत्तर में भेजा—

ओ३म् बिजनौर तारीख़ ६जनवरी स० १८९७

श्रीमान् स्वामी शिवाश्रम जी महाराज नमस्ते— गत रात्रि में एक अशुद्ध संस्कृत लेख आप की ओर से जिस पर न किसी के हस्ताक्षर हैं न उसके लिखे जाने की तिथि और न स्थान का पता है मेरे नाम मन्त्री आर्यसमाज होने के कारण इस अभिप्राय से भेजा गया है कि पौष शुक्ला एकादशी गुरु वार को आर्यसमाज आप से पाषाणादिमूर्त्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ कर ले, परन्तु इस पत्र के हस्ताक्षर रहित और ऐसी अशुद्धि पूर्ण होने से कि जिससे इसके लेखकका संस्कृतज्ञ होना तो क्या वर्णबोध रखना भी विदित नहीं होता [क्योंकि इस में संस्कृत की अशुद्धियों के अतिरिक्त वर्ण भी अशुद्ध हैं जैसे स्वामी को (श्वामी) और बिजनौर को वियनौर लिखा है] शङ्का होती है कि कदाचित् यह चिट्ठी बनावटी हो यदि यह चिट्ठी आप ही की

(१) जहां २ ' ' चिन्ह हैं उन २ पदों को तौ कोई सामान्य विद्यार्थी भी शुद्ध लिख सक्ता था ।

है और आप उपरोक्त विषय या अन्य किसी विषय पर समाज से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं तो कृपा कर निम्नलिखित विषयों पर शास्त्रार्थ के नियम लिख भेजिये ॥

(१) शास्त्रार्थ का विषय पाषाणादि मूर्त्तिपूजा ही होगा या अन्य भी ।

(२) आप किन २ पुस्तकों को प्रामाणिक मानते हैं ।

(३) कितने २ महाशय प्रतिपक्ष से शास्त्रार्थ करेंगे ।

(४) वादि प्रतिवादि को कितना २ समय प्रश्नोत्तर के वास्ते दिया जायगा ।

(५) शास्त्रार्थ का समय और स्थान कौन सा होगा और प्रतिदिन कै घण्टे शास्त्रार्थ हुवा करेगा ।

(६) प्रति पक्ष के कै व्यक्ति शास्त्रार्थ के स्थान में उपस्थित हो सकेंगे ।

(७) सभा का प्रबन्धकर्त्ता प्रधान कौन होगा और उसके क्या २ अधिकार होंगे ।

(८) इसका उत्तर शीघ्र ही आना चाहिये कि शास्त्रार्थ के नियम नियत हो जाने पश्चात् तुरन्त आर्य्य पण्डितों को बुला लिया जावे ।

आप का उत्तराभिलाषी भगवान् दास आर्य

मन्त्री आर्यसमाज बिजनौर

ऊपर लिखे पत्रको साधु शिवाश्रमजी ने इस कारण लौटा दिया कि यह भाषा में है संस्कृत में लिखकर लावो, संस्कृत बोलो, कोई मेरे सामने आवे इत्यादि बहुत कुछ उच्चाभिलाष की बातें करते रहे इसी काल में तार द्वारा पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश और अध्यक्ष स्वामियन्त्रालय मेरठ भी बुलाने पर आगये और शिवाश्रमजी के उस अशुद्धपत्र का उत्तर निम्न लिखित संस्कृत में दिया गया । यथा—

ओ३म्

बिजनौरस्थार्य्यसमाजतः १२ । १ । ९७

भोभोः शिवाश्रम स्वामिन् !

तत्रभवान्सादरमाहूयते शास्त्रार्थाय परमाश्चर्य्यमेतद्यदजानन्नपि शब्दापशब्दविचारं कथमुत्सहते भवान् शास्त्रार्थायेति तथापि माभूद्विमानना भवादृशीविपश्चितामितिकृत्वा सन्नद्धा वयम् मध्यस्थादिविषयाविवेचनं स्थिरीकृत्य परश्वोऽवश्यं भवितव्यं शास्त्रार्थेन अतोहेतोर्नियमव्यवस्थापनं श्वएवकर्त्तव्यं भवतामस्माकं

च मतस्थैरग्यैः पुरुषैः। पातालेश्वरस्थाने च मूर्तिपूजाविषयको वादोऽसुकरो राजनियमभङ्गभयात्। अतःस्थानान्तरे स्याच्छास्त्रार्थः

तत्रभवतामुत्तराकाङ्क्षी
भगवान्दासो मन्त्री

इस पत्रका अनुवाद यह है कि—शिवाश्रमजी स्वामी! आपको शास्त्रार्थ के लिये आदरपूर्वक आह्वान किया जाता है परन्तु आश्चर्य तौ यह है कि शब्दापशब्द के विचार को न जानते हुए आप शास्त्रार्थ के लिये कैसे साहस [जुरअत] करते हैं। तथापि आप जैसे विद्वानों का अपमान न हो इस हेतु हम शास्त्रार्थ के लिये सन्नद्ध हैं। मध्यस्थादि विषयों का विवेचन स्थिर कर के परसों अवश्य शास्त्रार्थ होना चाहिये। इस कारण नियमों का ठीकठाक कलही हमारी और आपकी ओर के मुख्य पुरुष करलेवें। पातालेश्वर[मन्दिर] में मूर्तिपूजा विषयक वाद असुकर है। राजनियमभङ्गभय से। इस कारण किसी अन्य स्थान में शास्त्रार्थ हो॥

आपका उत्तराकाङ्क्षी
भगवान्दास मन्त्री

इस पत्र को लेकर जब आर्य्य पुरुष शिवाश्रम जी के पास गये तौ पत्र देखकर बोले कि "जिसने लिखा है उस पण्डित के हस्ताक्षर कराके लाओ" अस्तु पं० तुलसीराम स्वामी के भी हस्ताक्षर करा दिये तब लिया और कहा कि प्रातःकाल उत्तर जायगा।

विचारणीय है कि अपने पत्र पर को किसी के भी हस्ताक्षर नहीं और समाज के पत्र पर मन्त्री के हस्ताक्षर होते हुए भी पण्डित के हस्ताक्षर पृथक् मांगे गये परन्तु हमारी इस से क्या हानि थी कुछ नहीं वैसाही कर दिया परन्तु शिवाश्रमजी के छक्के छूट गये वहां संस्कृत कौन समझता! अपने शिष्यों से कहने लगे कि इस संस्कृत पत्र में यह लिखा है कि "तुम संन्यासी हो कर शास्त्रार्थ कैसे करते हो" वाहर धन्यरे पाण्डित्य!! और यही आशय पक्का समझकर १३।१।९७ को सायंकाल को निम्नलिखित उत्तर लिखकर भेजा। यथा—

ओं विजनौरग्रामनिवासि सनातनधर्म्मस्थजनेभ्यः पत्रम्प्रेषितम्॥ श्री शिवाश्रमस्वामिभिः(१)॥ भोभो अनार्य्यसम्मत तुलसीरामशर्म्मन् मम किमाश्चर्य्यन्दुष्टदमनङ्कुतः श्रीशङ्कराचार्य्यप्र-

(१) इस बार तौ सिम्भल गये प्रथम पत्र के सदृश स्वामीभिः नहीं लिखा।

भूतिर्दुष्टदमनङ्कृत'म्व'यं सर्वञ्जा'नि'मो'र'धर्म्मानार्य्यपक्षगतपथ वर्त्ति ब्राह्मणकुलो'त'पन्न द्रव्यलोभाभिभूत हृदयासच्छास्त्रार्थाभिलाषि'नो' भवतोत्याश्चर्य्यमेतत् कि'म्व'दपथखण्डन प्रवर्त्तनङ्कृतः शब्दापशब्दज्ञानाभावादग्रेऽत्रस्थैरस्माकम्भवताञ्च मतस्थैः कुत्रस्थैर्वातैस्सहैकीभूयोभयपक्षपातरहितमध्यस्थङ्कृत्वा पराजये नियमञ्च कृत्वा समर्थश्चेत्तर्हि शास्त्रा'र्थे'उद्यतोभवयत्रस्थानेशास्त्रार्थेहाचेत्तत्रैवास्माकन्तीर्था'थे'नभावितव्यम्॥ अग्निभूतगृहचन्द्राब्दे मकरार्कतृतीयदिवसेज्ञेलिपीकृता ॥

सोहनलालदत्तोभवच्छास्त्रार्थोत्तरकांक्षाभिलाषी ॥ शं

अर्थ—बिजनौर ग्राम निवासि सनातन धर्मिजनों से । शिवाश्रम स्वामी जी ने पत्र भेजा । हे अनार्यसम्मत तुलसीराम शर्म्मन् ! मेरा क्या आश्चर्य दुष्टदमन है शङ्कराचार्य्यादि ने दुष्टदमन किया है । हम सब जानते हैं अधर्म अनार्य्यपक्षगतमार्गवर्त्ति ब्राह्मणकुलोत्पन्न द्रव्यलोभ से दबाये हृदयवाले शास्त्रार्थ के अभिलाषी आपका आश्चर्य है कि वेदमार्ग के खण्डन में प्रवृत्ति है क्योंकि शब्दापशब्द ज्ञान के अभाव से । आगे हमारे तुम्हारे मत के यहां के व कहां के लोग एकत्र हो, उभयपक्षपातरहित मध्यस्थ तथा पराजय नियम कर, यदि समर्थ है तो शास्त्रार्थ में उद्यत हो । जिस स्थान में शास्त्रार्थ की इच्छा हो यदि वहीं हमारे तीर्थ स्थान में न हो । सं० १९५३ मकरार्क दूसरा दिन बुधवार में लिखी सोहनलालदत्तोभवच्छास्त्रार्थोत्तर कांक्षाभिलाषी ॥ शं

इस पत्र के उत्तर में एक तो उर्दू विज्ञापन छपा कर नगर में बांट दिया गया कि १—शास्त्रार्थकर्त्ताओं के नाम २—किन पुस्तकों से प्रमाण दिये जायंगे ३—शास्त्रार्थ का स्थान ४—शास्त्रार्थ के समय का विभाग ५—सभापति का निर्वाचन । ये पांच विषय सनातनधर्मियों को आज ही निश्चित कर लेने चाहियें जिस से कल शास्त्रार्थ को देर न हो इत्यादि ॥

इस के अतिरिक्त ऊपर लिखे संस्कृत पत्रका उत्तर संस्कृतमें ही भेजा गया जिस की नकल यह है—

ओ३म् बिजनौरस्यार्य्यसमाजतः १३ । १ । ९७

श्रीमन् ! शिवाश्रम स्वामिन् !

पत्रमागतं वृत्तमवगतमलं कुवाच्यवर्णनेन भगवन् ! आवयोः कोदुष्टः कश्चादुष्टइति निर्णयमन्तरैव कस्यचिद्दुष्टत्व-

निरूपणमङ्कनं च भवदीयसौजन्यसभ्यत्वादिज्ञापकम् । प्रेष्यतेऽतः पुरुषद्वयं नियमनिर्णयाय भवत्पक्षगेनापि पुरुषद्वयेनैकीभूय प्रबन्धकस्य, भाषणलेखनसमयविभागस्य, स्थानस्य च निर्णयः कार्यो हस्ताक्षरैरङ्कनं च यतःश्वएव निर्विकल्पो वादः प्रतिमार्चाविषये प्रवर्त्ततेति शम् ॥ तुलसीरामः

अर्थ—श्रीमन् ! शिवाश्रम जी स्वामी !

पत्र आया वृत्त जाना कुवाच्यवर्षा का विराम कीजिये, हम और आप इन दोनों में कौन दोषी है और कौन निर्दोष है इस बात का निर्णय बिना हुए ही किसी एक को दुष्ट कहना और लिखना आप की सुजनता और सभ्यता का ज्ञापक है । इस कारण नियम निर्णयार्थ दो पुरुष भेजे जाते हैं इन के साथ आप की ओर के भी दो पुरुष मिल कर प्रबन्धकर्त्ता, बोलने और लिखने के समय का विभाग और स्थान का निर्णय कर लें और हस्ताक्षर करदें । जिस से कल ही निर्विकल्प शास्त्रार्थ प्रवृत्त होवे इति शम् ॥

तुलसीराम स्वामी

ऊपर लिखे संस्कृत पत्र को लेकर बा० जीराजसिंह वकील व बा० नन्दलाल जी प्रधान समाज, शिवाश्रम जी के पास गये और बहुत देर तक नियमों पर वादानुवाद रहा परन्तु निश्चय कुछ न हुवा क्योंकि शिवाश्रम जी ने मध्यस्थ का झगड़ा ऐसा छेड़ दिया जिस का निबटेरा न कहीं हुवा न होने की आशा, कभी कहते थे कि स्वा० विवेकानन्द अद्वैतवादी कभी बनारस कालिज के प्रिन्सिपेल साहब अंगरेज़ मध्यस्थ हों । अस्तु यही विवाद रहा अन्त को हमारे दोनों पुरुष यह कह कर चले आये कि यद्यपि मध्यस्थ का फ़ैसला दुर्घट है तथापि पं० तुलसीराम जी से पूछेंगे कि आप प्रिन्सिपल साहब को जानते हैं वा नहीं, क्योंकि शिवाश्रम जी भी उक्त साहब को जानते नहीं तब अज्ञात पुरुष कैसे मध्यस्थ हो इत्यादि ।

अगले दिन ८॥ बजे प्रातःकाल सोती शिवशङ्कर लाल साहब का उर्दू पत्र समाज में आया कि शिवाश्रमजी शास्त्रार्थ के लिये मेरे स्थान पर उपस्थित हैं और इस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा तक रहेंगे आप लोग भी आजाइये इत्यादि।

यद्यपि नियमादि स्थिर नहीं हुवे थे परन्तु हम जानते थे कि केवल हमारा न जाना ही उनको शास्त्रार्थ से बचने का बहाना होजायगा इस हेतु अनुमान ८॥ बजे सोतीजी के स्थान पर आर्य्य लोग वेदादि ग्रन्थों सहित जा पहुंचे । शिवाश्रमजी ने प्रथम ही तो यह आग्रह किया कि ३ बजे उपरान्त हमको फ़ुरसत नहीं (जबकि शिक्षित पुरुष दफ़तरों से आजाते और लाभ

उठा सके) हमने यह भी स्वीकार किया। फिर मध्यस्थ का विवाद उठा तो बोले कि पं० शिवकुमार शास्त्री, स्वामिविशुद्धानन्दजी, इत्यादि पण्डितों में से किसी को मध्यस्थ नियत किया जाय, उत्तर दिया गया कि इनमें से प्रत्येक पुरुष कभी न कभी आर्य्यसमाज का प्रतिद्वन्द्वी हो शास्त्रार्थ पर आया है अतः ये लोग मध्यस्थ नहीं होसक्ते। फिर बनारस कालेज के प्रिन्सिपेल का नाम लिया इसके साथ ही शिवाश्रमजी ने बड़े आग्रह से यह भी कहा कि हम शास्त्रार्थ में वादप्रतिवाद नहीं करेंगे किन्तु पृथक २ बैठके एक दूसरे को पूर्वपक्ष वा उत्तर पक्ष का लेख बिना दिये लिये और पूर्वोत्तर पक्षों का खण्डन मण्डन यहां कुछ न करके मूर्तिपूजा मण्डन के सब प्रमाण पृथक एक परचे में हम लिखेंगे इसी प्रकार खण्डन के प्रमाण आर्य्य पण्डित लिखें और दोनों से लेकर एक पुरुष लिफ़ाफ़े में बन्द करके साहब के पास भेजे जिसका लेख साहब ठीक बतावें वही सत्य।

आर्य्यों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ की रीति नहीं है किन्तु प्रथम आप मूर्तिपूजामण्डन के वैदिक प्रमाण लिखकर सभा में सुनाय हमें दें हम उन का खण्डन लिख सभा को सुनाय आपको दें इसी प्रकार जितने बार वाद प्रति वाद का नियम ठहर जाय उतने बार वादप्रतिवाद होकर समस्त लेख वादि प्रतिवादियों और सभापति के हस्ताक्षर युक्त यदि कोई मध्यस्थ स्थिर होजाय तो उसके पास भेजा जावे और मध्यस्थ न मिले तो याथातथ्य छाप दिया जाय पढनेवाले समझदार पुरुष परिणाम निकाल लेंगे इत्यादि॥

इसको शिवाश्रमजी ने स्वीकार नहीं किया। मध्यस्थ के विवाद में इतनी बातें हुईं। पं० तुलसीराम स्वामी—पं० श्यामजी कृष्ण वर्म्मा बैरिस्टर एटला एम-ए- ट्यूटर महाराणा उदयपुर मेम्बर रायल एसियाटिक सुसायटी, लेट-संस्कृत प्रोफ़ेसर इंगलेंड कालेज को मध्यस्थ मान लीजिये। शिवाश्रमजी—वह तो जहाज़ पर चढे हैं अतः हिन्दू धर्म से हीन होगये वह मध्यस्थ होने योग्य नहीं। पं० तुल० स्वामी—क्या जो २ हिन्दू जगन्नाथ यात्रा और रामेश्वर दर्शनार्थ जहाज़पर चढ़ते हैं वे भी हिन्दूधर्म से हीन हो जाते हैं? शिवाश्रम जी—नहीं जो जहाज़ पर चढ़े और भारतवर्ष की सीमा के बाहर जावे वह पतित होता है। पं० तुलसी०—क्या स्वा० विवेकानन्द जी जो अमेरिका तक हो आये वे भी धर्महीन होगये? उन को तो आप मध्यस्थ करने को तैयार हैं और साक्षात् अंगरेज़ ही को आप मध्यस्थ चुनते हैं तो उन के देश में जाने मात्र से कोई कैसे पतित हो सक्ता है? शिवाश्रम जी—अंगरेज़ अपनी जाति में तो पतित नहीं, हिन्दू ऐसा करने से अपनी जाति से पतित हो जाता है। पं० तुल०—पं० श्या० जी अपनी जाति से बाह्य नहीं हैं और अंग्रेज़ अपनी जाति में रहो परन्तु क्या उस से हिन्दू लोग परहेज़ न करें गे? इत्यादि॥

इस के उपरान्त पं० देवदत्त जी आ पहुंचे जो शिवाश्रम जी की अशुद्ध संस्कृत चिट्ठी देख कर सनातनियों ने उन की सहायतार्थ बुलाये थे, वास्तव में पं० देवदत्त जी शिवाश्रम जी से बहुत सुबोध हैं और स्वभाव के भी अच्छे और असत्य पर आग्रह भी कम करते हैं। उन के आने पर आइये शास्त्री जी! आइये!! शास्त्री जी!!! होने लगी और उन्हों ने आकर आर्यों से प्रश्नोत्तर आरम्भ किये कि जो प्रथम १ घंटा भाषा में फिर ४५ मिनट तक संस्कृत में और फिर २ घण्टे तक भाषा में हुए। जिन में से मुख्य २ बातें यहां प्रकाशित की जाती हैं॥

पं० दे०—आप किन २ शास्त्रों का प्रमाण मानें गे। पं० तुल०—चारों वेदों की संहिताओं का स्वतः प्रमाण और साम, गोपथ, शतपथ, ऐतरेय ब्राह्मणों, न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त इन छः शास्त्रों के सूत्रों, ईशादि १०. उपनिषदों, निरुक्त, निघण्टु, अष्टाध्यायी और महाभाष्य का परतः प्रमाण मानें गे अर्थात् इन में का वह वाक्य न मानेंगे जो मन्त्रसंहिता से विरुद्ध होगा और मन्त्र का वह अर्थ भी अशुद्ध मानें गे जो वेद के किसी अन्य मन्त्रार्थ के विरुद्ध होगा। पं० दे०—जहां वेदमन्त्रों में ही आपस में विरोध होगा वहां क्या करोगे? पं० तुल०—वेदमन्त्रों में विरोध नहीं है जो विरोध प्रतीत होता हो वह समझने वालों की भूल होगी, वेद ईश्वरीयज्ञान हैं उन में परस्पर विरोध कैसा? पं० दे०—"श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्" का क्या अर्थ है? पं० तुल०—श्रुतिद्वैध का तात्पर्य विकल्प है, विरोध नहीं। पं० दे०—विना विरोध के दो पदार्थ नहीं हो सक्ते। पं० तुल०—यह ठीक है परन्तु एक ही बात में एक दूसरे का बाधक हो तब विरोध होता है। क्या आप विरोध और भेद में कुछ अन्तर नहीं समझते? एक गोधूम कण दूसरे से भिन्न है परन्तु उस का विरोधी नहीं, यह आवश्यक नहीं कि पिता का देह पुत्र के देह से भिन्न है इस कारण पिता पुत्रों में विरोध भी हो इत्यादि। पं० दे०—छः शास्त्रों में भी तो परस्पर विरोध है?। पं० तुल०—वहां भी भिन्न २ अंशों में मतभेद है एक ही अंश में मतभेद नहीं। पं० दे०—देखो साङ्ख्य में सत्त्व रजस्तमः ३ गुण हैं इस के विरुद्ध वैशेषिक में ८ गुण हैं। पं तुलसी०—महाराज! वैशेषिक में उन सत्त्वादि ३ गुणों के विरुद्ध लेख नहीं है किन्तु द्रव्याश्रयी २४ गुणों का कथन है और यूं तो पाणिनि ने अ, ए, ओ ये तीन अक्षर व्याकरण में गुण माने हैं और शास्त्रों से क्या इस का विरोध है? अपने २ ग्रन्थ में आचार्य अपने २ सङ्केत नियत करते हैं परन्तु एक दूसरे का प्रतिवाद वा खण्डन तो नहीं करते और आप वैशेषिक में ८ गुण बताते हैं यह देखिये २४ गुण हैं ८ नहीं।

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः । वै० अ० १आ० १ सूत्र ६॥

पं० दे०—पुस्तक दिखावो कहां हैं? पं० तुलसी०—यह देखिये पुस्तक पढ लीजिये। पं० देव०--यह सूत्र कृत्रिम है। पं० तुल०—यह पुस्तक भी काशी का छपा है और आप अपना पुस्तक निकाल कर देखलें आपके पास न हो तौ काशी के चाहे जिस पण्डित से पुस्तक मंगाकर देखाजाय यदि यह सूत्र उसमें हो तब तौ मानियेगा? पं० देव०—अच्छा मानलिया २४ ही सही । पं० तुल०—कृपा करके ऐसी निर्मूल दून की न फेंका कीजिये । पं० देव०—अच्छा हमने मान लिया। परन्तु इसके विरुद्ध न्याय में ७ पदार्थ माने हैं? पं० तु०--सात तौ नहीं किन्तु न्यायदर्शन में—

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः । न्या० अ० १ आ० १ सूत्र १॥ ये १६ पदार्थ हैं और वैशेषिक में ६ ये हैं—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् । वै अ० १ आ० १ सू० ॥४॥

परन्तु ये १६ और ६ अपने २ सम्मत हैं जिनका कि क्रमशः आचार्य्य अपने ग्रन्थ में वर्णन करना चाहते हैं उन्हें लिखते हैं दूसरे का खण्डन नहीं करते । पं० देव०—षट् पदार्थ नहीं ७ पदार्थ हैं वैशेषिक दिखलाओ। पं० तुल०-यह देखिये पुस्तक है । पं० देव०—अच्छा अभाव पदार्थ का किसमें अन्तर्भाव करोगे? पं० तुल०—आप ७ मानते हैं तौ भाव ८ वां है उसका किस में अन्तर्भाव करोगे और ७ पदार्थ आप भी किसी दर्शन के सूत्रों में दिखाइये । पं० देव०—दर्शन शास्त्रों में नहीं परन्तु दिनकर ग्रन्थ में हैं। पं० तु०—यूं तौ तर्कसंग्रह में भी हैं परन्तु हमारे आपके मध्य षट्दर्शन सूत्र ही प्रामाणिक ठहरे थे जिनमें आप की प्रतिज्ञा का पता नहीं । पं० देव०—अच्छा हम वेद के एक ही मन्त्र में परस्पर विरोध दिखलाते हैं--तदेजति तन्नैजति इत्यादि श्रुति में प्रथम एजति कहकर फिर नैजति कहा। पं० तु०—इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म स्वाभाविकी क्रिया से युक्त है और रागद्वेषादिकृत क्रियाओं से रहित है । जैसे सूर्य्य अपने स्वाभाविक उत्ताप से कहीं अङ्कुरों को उगाता और

किन्हीं को सुखाता है इससे सक्रिय है और रागपूर्वक क्रिया न करने से नि-ष्क्रिय भी है ॥ तथा प्रलयदशापन्न जगत् में ब्रह्म में सक्रियत्व प्रतीति नहीं होती और सृष्टि दशापन्न विकृत में सक्रियत्व प्रतीति होती है इन दोनों बातों से ब्रह्म की एकरसता में विरोध नहीं आता । जैसे अग्नि दाहगुणयुक्त है उसमें जब कोई वस्तु भस्म होरहा हो तब भी और जब भस्म होचुकाहो तब भी । परन्तु जब कोई वस्तु भस्म होरहा है तब हम अग्नि की क्रिया को अनुभव करते हैं और जब नहीं होरहा तब अनुभव नहीं करते तो जैसे हम को दो काल में दो प्रकार के अनुभव होते हैं परन्तु अग्नि उसी अपनी स्वा-भाविक दशा में वर्त्तमान है इसी प्रकार ब्रह्म एकही दशा में वर्त्तमान रहता है तथापि जगत्सहचरित ब्रह्म में एजन और अनेजन दो दशा प्रतीत होती हैं उन्हीं को यह श्रुति बतलाती है। वेदमें विरोध नहीं। पं० देव०—तो क्या वेद में कहीं मूर्तिपूजा का खण्डन है? पं० तु०—हां, नत्वा वां अन्योदिव्यो० न तस्य प्रतिमा अस्ति इत्यादि यजुर्वेद में स्पष्ट निषेध है। इतने ही में शिवा-श्रमजी बोल उठे कि तुम किसी टीकाकार का अर्थ तो मानोगे नहीं इस में अर्थ का विवाद तौ छोड़ दो अर्थ चाहे कुछ हो हम वेदमें प्रतिमा दिखा दें तौ अर्थ का झगड़ा तौ न करोगे? पं० तु०—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञइत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा । निरुक्त।

अर्थात् जो वेद को पढ़े परन्तु अर्थ न जाने वह स्थाणु और भारहार के सदृश है तब विना अर्थ के क्या प्रतिमाशब्दमात्रसे मूर्तिपूजा सिद्ध होजाय-गी? शिवाश्रमजी—देखोजी! अब ये लोग वेद को नहीं मानते। पं० तु०—धन्यमहाराज! पबलिक को धोका न दीजिये हमने यह कहा है कि वेद के अक्षर पढने मात्र से विना अर्थ जाने कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता आप लो-गों को उलटा समझाते हैं कि ये लोग वेद के अक्षर नहीं मानते। और आप यह भी बतलाइये कि आप बीच में क्यों बोलते हैं शास्त्रार्थ वा बातचीत तौ पं० देवदत्त जी से है। ऐसा न कहना कि हम से अभी शास्त्रार्थ नहीं हुवा किन्तु यह बात प्रथम ही साफ़ हो जाय कि आप दोनों में मुख्य कौन है जिस एक की बात मानी जाय। इसी प्रकार सायङ्काल हो गया और सोती शिवशङ्करलाल जी ने खड़े होकर सुना दिया कि महाशयो! मध्यस्थ न मि-लने से शास्त्रार्थ नहीं हो सक्ता आप अपने २ घर जाइये ॥

पाठक महाशय! यद्यपि शास्त्रार्थ न हुवा परन्तु सर्वसाधारण ने यह जान लिया कि शिवाश्रम जी तौ संस्कृत ही नहीं जानते और शास्त्रार्थ से

बचते हैं। रहे पं० देवदत्त जी सो दो तीन बातें छः शास्त्रों में नहीं दिखा सके अधिकांश लोगों ने यह जी में मान लिया कि शास्त्रार्थ होता तौ आर्यसमाज की जय होती इस का प्रमाण यह है कि पं० तुलसीराम स्वामी के व्याख्यानानन्तर १७ सभासद् आर्य्यसमाज में नए प्रविष्ट हुए॥

सत्यमेव जयेत नानृतम्० ॥
ओ३म् शान्तिः ३ ॥

(गताङ्क पृष्ठ १० से आगे यज्ञ)

वैसा प्रिय है अतः आत्मा ही को प्रियमान (प्रेमभक्ति से) उपासना करे। वह, जो प्रिय परमात्मा ही की उपासना करता है उसका प्यारा मरता नहीं (क्योंकि आत्मा अमर है)। तथा जो अन्य देवता की उपासना करता है (उस का प्रिय मर जाता है क्योंकि अन्य सूर्यादि देवता अमर नहीं) वह अज्ञानी है वह नहीं जानता कि वह देवतों में पशुतुल्य है॥

इस से सिद्ध हुवा कि परमात्मा के अतिरिक्त अन्य देवता उपास्य नहीं तथा अन्य देवता मरने वाले हैं अतः उन की उपासना करने वाला भी जन्म मरण के चक्र से नहीं निकल सक्ता। ऐसा ही इस यजुर्वेद के मन्त्र का भी तात्पर्य है। यथा—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ यजुः ३१।१८॥

जिज्ञासु को उपदेष्टा उपदेश करे कि—

अहमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्ताद्वर्त्तमानं पुरुषं वेद। तमेव विदित्वा मृत्युमत्येति। अन्यः पन्था अयनाय न विद्यते॥

नोट—पाठक लोग क्षमा करें इस बार बिजनौर शास्त्रार्थ पूरा एक ही अङ्क में मुद्रित होना अभीष्ट था अतः यज्ञविषयक लेख बहुत ही न्यून आसका आगामी अङ्क में वेद मन्त्रों से यह स्पष्ट करके कि उपास्यदेव एक परमात्मा ही है' देवयजन की विधि, किस प्रकार अद्भुत सामर्थ्य से देवदूत देवतों के भागों को दूर २ पहुंचाता है, होता ब्रह्मा अध्वर्यु उद्गाता के मन्त्रोक्त क्या २ काम हैं इत्यादि विषय मुद्रित होगा॥

ये पुस्तक स्वामियन्त्रालय मेरठ से मिलेंगे ।

गीताभाष्य भाषा व संस्कृत २) लघुकौमुदी भाषाटीका सहित २) सुश्रुत मूल ९॥) न्यायदर्शनवात्स्यायन भाष्य सहित ९) वाजसनेय्यादि ७ उपनिषद् भाषा और संस्कृत दोनों टीका ३) भिन्न २ का मूल्य इस प्रकार है--ईश≡) केन ।) कठ ॥।) प्रश्न ॥=) मुण्डक ॥।) मांडूक्य ≡) तैत्तिरीय ॥।) भर्तृहरिशतक तीनों भाषाटीकासहित ।=)॥ केवल नीतिशतक भा० टी० =) गणरत्नमहोदधि संस्कृत वृत्तिसहित कोष १॥) अष्टाध्यायीमूल ≡) आयुर्वेदशब्दार्णव कोष भाषा वैद्यों को उपयोगी ॥=) दशोपनिषद् बड़े मूल मोटाअक्षर काशी के छपे १।) छोटे १० उपनिषद् मूल गुटका ।-) प्रबन्धार्कोदय । मिडिलक्लास के छात्रों को लेख लिखाने वाला ।-) सीताचरित्र नावल (प्रथमभाग हिन्दीभाषा) ॥।) पं० गुरुदत्त एम० ए० का ईशोपनिषद्भाष्य ।) कात्यायनसूत्र पूर्वार्ध ॥।) वेश्यानाटक ।)॥ आर्य्यसमाजके नियम मोटे अक्षर पुष्टकाग़ज़ पर ।) सैंकड़ा, २॥) हज़ार । भर्तृहरिशृङ्गार शतक भाषाटीका =)॥ पं० भी० श० नीतिशतक ≡) वैराग्यशतक ।) विदुरनीति मूल =) यमयमीसूक्त संस्कृत भाषा दोनों टीकासहित =) प्रश्नोत्तरशतक =) जीवनयात्रा ≡) दमयन्तीस्वयंवरनाटक ≡) पाषण्डमलकुठार =) विवाहव्यवस्था =) ऐतिहासिकनिरीक्षण =) मांसभोजनविचार प्रथम भागका खण्डन -)॥ द्वितीय भागका खण्डन =)॥ धर्मप्रचार)॥ वायुमण्डल)। हारमोनियमगाइड ।=) वैदिकट्रैक्ट अंग्रेज़ी १ नं०)। २ नं०)। ३ नं०)॥ सत्यदर्पण =) ज्योतिषदर्शन=) व्याख्यानसागर ॥) योगानुसार सन्ध्याविधि ≡) बालोपकारी शिक्षा =) दानकरणविधि =) पदार्थविद्या ॥) सभाप्रसून ।) स्वामीजीकाचित्र (रङ्गीन) -)॥ पं० गुरुदत्तका चित्र (रङ्गीन) -)॥ सादेचित्र दोनों प्रत्येक -) खेतीकी विद्याके मुख्य सिद्धान्त ॥=) रामायणका आद्यखण्ड)। पुत्रेष्टिपद्धति =)

विना गुरुके संस्कृत व्याकरणमें प्रवेश और संस्कृत बोलने लिखनेका सामान्य बोध कराने वाली—संस्कृतभाषा प्रथम पुस्तक)॥। द्वितीय -)। तृतीय पु० =)॥। चतुर्थ छपरहा है । चाणक्यनीतिसार भाषा टीकास० -)। प्रश्नोत्तररत्नमाला भाषाटीका सहित इसीमें आर्य्यविवाहमङ्गलाष्टक -) आर्य्यचर्पटपञ्जरी)। भ्रजनेन्दु -) महन्त ब्रह्मकुशलके उत्तरमें-ऋगादि भाष्यभू० उपराग प्रथम -)॥ द्वितीय -)॥। शास्त्रार्थकिराणा =) अक्षरप्रदीप (बालकोंको) १) में १०० एकप्रति)। यह पुस्तक नये ढंगसे बहुत उपकारी शिक्षा वाक्योंसे युक्त शुद्ध सरल भाषामें बालकोंके अभ्यासार्थ छपा है ॥

पता—पं० तुलसीरामस्वामी—सम्पादक वेदप्रकाश मेरठ.

नवीन पुस्तक

॥ नालिकाविष्कार ॥

अर्थात् तोप बन्दूक बारूद (शतघ्नी भुशुण्डी अग्निचूर्ण) का आविष्कार (ईजाद) प्राचीन आर्य्यावर्तमें ही ऋषि मुनियोंने किया था और "इसको जर्मनी के सांकवरथोलडस् शवाटरन ने सन् १३२० में सब से प्रथम आविष्कृत किया" यह विचार तब तक ही है जब तक इस पुस्तक द्वारा सर्वसाधारण ने शुक्रनीति, नीतिप्रकाशिका और महाभारत तथा डाक्टर गस्टैनओपर्ट, वेकन साहब के "विसीसीट्यूडस् आफ् थिंगज़, " मेजर जेनेरल वार्डल आदि के प्रमाणों से विभूषित इस पुस्तक को नहीं देखा है। मूल्य)॥।

॥ अक्षर प्रदीप ॥

१) में १०० एक प्रति)। यह पुस्तक नये ढंग से बहुत उपकारी शिक्षावाक्यों से युक्त शुद्ध सरल भाषा में बालकों के अभ्यासार्थ छपा है ॥

दयानन्दतिमिरभास्कर की समीक्षा ॥

प० ज्वालाप्रसाद मुरादाबाद निवासी ने " दयानन्दतिमिरभास्कर " नामक ४०० पृष्ठ का पुस्तक मुम्बई में छपाया है इसमें सत्यार्थप्रकाश का मन माना खण्डनाभास किया है। यद्यपि यह पुस्तक वेदादिके वाक्यों का प्रमाण-शून्य मनघड़न्त अर्थ करके पूरा किया गया है तथापि जोलोग संस्कृत नहीं जानते उनके चित्तमें आर्य्यधर्म की ओरसे अश्रद्धा उत्पन्न करनेका हेतु हो जाता है। इस कारण हमने इसके खण्डन का प्रारम्भ किया है। इसका विज्ञापन प्रथम मन्त्री राजस्थान प्रतिनिधिसभा और पश्चात् मैंने दिया था तदनुसार ३१ कापियों का अग्रिम मूल्य भी आगया है और ५४ कापी के ग्राहक हुवे हैं परन्तु पुस्तक अनुमान ३५० वा ४०० पृष्ठ का होगा इसलिये धनव्यय अधिक है ग्राहक महाशय इसका १) अग्रिम भेजकर सहायता दें तो यह ग्रन्थ शीघ्रही उनके पास पहुंचेगा ॥ तुलसीराम स्वामी स्वामिप्रेस–मेरठ

(१) सुधाञ्जन सुरमा–आजकल बारीक अक्षर पढ़ने वालोंको तथा नेत्रके सब रोगोंमें अतिलाभदायक है ॥) तोला श्वेत ॥–) तोला

(२) ज्वरघ्न भस्म। नित्य, तेइया, जाड़ेसे ज्वरमें, खांसीमें अतिलाभदायक १) तोला

(३) अतीसारारि चूर्ण–दस्त रोकनेको॥) डिब्बी।

(४) खांसी की गोली—८ घड़ी में आराम लिखा है १०८ गोली १)

(५) अर्क प्रसूतारि— प्रसूत में लाभदायक १) बोतल ३पावकी

(६) ददुघ्न दादकी दवा ३ दिनमें आराम।) डिब्बी

छुट्टनलालस्वामी–परीक्षितगढ़ जि० मेरठ ॥

लाला मथुरादास साहब मन्त्री आर्य्यसमाज मवानाने १००). सहायताका वादा किया तदनुसार ५०) समाजने भेज भी दिये, समाजको अनेक धन्यवाद हैं।

ओ३म्

वेदप्रकाश ॥

वेदप्रकाशो वेदस्य गौरवं सुप्रकाशयेत् ।
तद्वारकतमोराशिं समन्ताच्च विनाशयेत् ॥

——※○※——

वेदोक्त धर्म प्रतिपादन और तद्विरुद्धमत-
निराकरणविषयक

मास (३)	मासिकपत्र	(१) वर्ष

जो

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक और प्रकाशक द्वारा तदीय स्वामियन्त्रालय मेरठमें मुद्रित और प्रकाशित होता है

संवत् १९५३ ॥ ७०० ॥ ३१ । ३ । १८९७ ई०

१—वार्षिक अग्रिममूल्य १) पश्चात् १॥) लिया जायगा परन्तु ३ मासके भीतर मूल्य अग्रिम समझा जायगा। मेरठमें अग्रिम ॥।) पश्चात् १)

२—नमूनेमात्रका अङ्क जिन सज्जनोंके पास भेजा जायगा यदि वे ग्राहक होनेको पत्र न लिखेंगे तो दूसरी कापी न भेजी जायगी इस कारण नाम, ग्राम, डाकघर, ज़िलाके पते सहित पत्र अवश्य लिखें।

३—सर्वसाधारणके समाचार [ख़बर] इसमें नहीं छपेंगे।

४—विशेष उपकारक पुस्तकोंकी समालोचना भी टैटिलपेज पर छपेगी।

५—विज्ञापनकी बंटाई एक बारमें २) लीजायगी और विज्ञापन पर "वेदप्रकाशका क्रोडपत्र" यह लिखा होना चाहिये।

सूचना ॥

जिन सज्जनोंका " वेदप्रकाश " सम्बन्धी मूल्य एप्रिल सन् ९७ के भीतर आजायगा उनका नियम १ के अनुसार अग्रिम समझा जायगा। १ मईसे पीछे १॥) उचित होगा । परन्तु १ मईसे आगे होने वाले ग्राहकोंका भेजा मूल्य ३१ जुलाई तक अग्रिम ही समझा जायगा। आशा है कि ग्राहकगण अग्रिम मूल्य भेजकर अपने लाभ और कार्य्यालयकी सहायताके भागी होंगे ॥

पाठशाला में केशवदेव और बलजित् दो विद्यार्थी देहली और सहारनपुरसे आये हैं ये दोनों, राय मुन्नालाल साहब रईस (पत्थर वाले) के यहां भोजन पाते हैं राय साहबको धन्यवाद है। अन्य किसी योग्य विद्यार्थीको कोई सज्जन भेजें तो उसके भोजनका प्रबन्ध करदें। पुस्तक, स्थान, काग़ज़ अध्यापनकी सहायता श्रीमन्मान्यवर पं० तुलसीरामस्वामी करते हैं ॥

भवदीय—रामनारायण शुक्ल

मूल्य प्राप्ति स्वीकार ॥

१५।२।९७ से २५।३।९७ तक

९७ पं० दत्तशर्मा तालणी १)
१०४ पं० शिवरावमंगेश मंजेश्वर १)
२२ पं० मुकुन्दरामशर्मा बिजनौर १)
१७९ मु० करोड़ीमल महम्मदपुर १)
११० ला० मंशाराम गंगोह १)
१६ पं० बदरीदत्त कवाल १)
१०९ ला० न्यादरमल „ १)
१११ ला० वृन्दावन „ १)
९२ पं० नामदेव तुकाराम यवला १)
७४ ला० झुनकूलाल तेराजाकट १)
११७ ला० कालीचरण अतरौली १)
१२० मु०रामदयालसिंह मुरादाबाद १)
११९ मु० किशनलाल दत्तावली १)
१२१ पं० महादेवरामचन्द्र झाडगांव १)
१३ सेठ रामचन्द्र देहली १)
११२ ला० बिहारीलाल सहारनपुर १)
१३७ मोहनलाल आ०डि०क्लब अमृतसर १)
८८ ला० नत्थूराम मालेरकोटला १)
१२४ ला० गंडाराम दसूया १)
१०६ ला० फौंदाराम हसनपुर १)
१४४ मु० बनवारीलाल नाहन १)
१२८ ला० सवायाराम झंग १)
१४५ पं० गौरीशङ्कर ठठिया १)
१३८ बा० बलदेवप्रसाद फ़ैज़ाबाद १)
१४३ पं० कस्तूरीनारायण कानपुर १)
१२६ ला० जदूराम बसियां १)
१४८ पं० अम्बालाल डूंगरपुर १)
१४३ पं० रामदुलारे मुम्बई १)
७८ पं० न्यादरसिंह अफ़ज़लगढ़ १)
७९ पं० झुन्नालाल मुन्नालाल „ १)
१४९ पं० शिवगोपाल मंधना ।)
९९ ला० रामविलास परीक्षितगढ़ ॥।)
१७६ बा० गोपालसहाय मेरठ ॥।)
१८२ पं० जयमङ्गलशर्मा ज़ि० गोंडा १)

समालोचना—"नारीभूषण" नामक १२० पृष्ठ डेमी ८ पेजे पुष्ट काग़ज़ पर छपा है। यह पुस्तक ला० वृन्दावन सभासद् आर्य्यस० मुरादाबादने बड़े परिश्रमसे पुस्तकान्तरोंसे सङ्ग्रह करके युवतियोंके लिये अच्छा और आर्य्यधर्म्मशिक्षाका उपयोगी बनाया है मूल्य ।=) है ॥

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

—:o:—

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { ३ मास

(गताङ्क पृ० ३० से आगे यज्ञ)

अर्थ—मैं इस महान्, ज्योतिः स्वरूप, अविद्या या अन्धकारसे सर्वथा पृथक्, सर्वव्यापक पुरुषको जानता हूं। उस ही को जानकर मृत्युको उल्लङ्घन करके मुक्ति पासकता है अन्य कोई मार्ग मुक्तिको जानेका नहीं है ॥

इसके अतिरिक्त अन्य शतशः प्रमाण इसी विषयके वेदोंमें हैं जिनको विस्तारभयसे हम यहां नहीं लिख सके। प्रकृत प्रकरण यह था कि इन्द्रादि देवतोंकी पूजा जो यज्ञ कहाती है उसकी विधि, फल और युक्तिसिद्ध तथा शास्त्रीय तात्पर्य्य क्या है?। हम ऊपर देवतोंके नाम बता चुके हैं। यद्यपि इस भयानक अज्ञानमय समय में हम वेदके तात्पर्य्यको पूर्णाभ्यासी न होने से ऐसा नहीं जानते जिससे प्रत्येक देवताके गुण कर्म स्वभावोंको जान सकें तथापि किन्हीं सूर्य्यादि देवोंको हम नाम और स्वरूप दोनों प्रकार जानते हैं और कुछ पूषार्य्यमादि ऐसे देव हैं जिनको हम वेद द्वारा नाममात्रसे जानते हैं उनको स्वरूप से पहचानते नहीं कि वह कहां और कैसे हैं। यह दोष हममें इस कारण आगया कि बहुत कालसे वेदोंको अर्थ सहित पढ़ने की परिपाटी छूट गई। अब यदि टीका और भाष्यादिके सहारेसे कुछ समझें तो बहुधा एक शब्दका दूसरा पर्य्याय तो मिल जाता है परन्तु "इन्द्रका तरजुमा बीजा,, वाली दशा होती है। घट कलशको कहते हैं और कलश कुम्भको कहते हैं इस प्रकार चाहे जितने पर्य्याय (मुरादिफ़) बोल जाइये परन्तु जब तक घट पदार्थका साक्षात् ज्ञान न हो तब तक ये पर्य्याय वाचक शब्द, शब्द ही शब्द हैं और कुछभी नहीं जाना जासकता। इसलिये जिस प्रकार आज कल सांसारिक

पदार्थविज्ञानपर भारी उद्योग हो रहा है इसी प्रकार सैंकड़ोंवर्ष पर्य्यन्त वैदिक पदार्थविज्ञानके लिये श्रम किया जाकर उनर पदार्थोंका साक्षात्कार करना चाहिये और समस्त संसारके मनुष्यमात्र परिश्रम नहीं करें तो न्यूनसे न्यून भारतवर्षीय और ये भी नहीं तो वर्णाश्रमस्थ होनेके अभिमानी और ये भी न करें तो ब्राह्मणब्रुव ही अपनी आयुका बड़ा भाग इस कार्य्यमें लगावें । आशा है कि लगातार परिश्रम करनेसे परमात्मा अवश्य कृपा करेंगे उद्योग सफल होगा और श्रमकर्त्ताओंकी कीर्त्तिपताका अवश्य वसिष्ठ गोतम जैमिनि व्यासादिकोंके नीचे २ फहरायगी परन्तु जब तक हम वैदिक पदार्थ विज्ञानमें उस उच्च पदके ज्ञानी न हों तब तक भी, इस समय तक जिन देवतोंको हम जानते हैं उनका और उनके सहवर्तियोंका यजन अवश्य करें जिससे सांसारिक इन्द्रियोंपभोग्य सुख, वायु आदि भौतिक देवतों से प्राप्त होसके ॥

अब विचारणीय यह है कि सूर्य्य चन्द्रादि बहुत से दूरवर्ती लोकों और उनके तारतम्यसे उत्पन्न हुवे चैत्रादि मासों, प्राणादि वायुओं तथा आकाश में दूरवर्ती विद्युदादि पदार्थोंका यजन हम किस प्रकार करें । वह कौनसा दूत है? जिससे हम इन दूर और समीपवर्ती देवतोंको पूजाकी सामग्री पहुंचा सकें, उनको प्रसन्न कर सकें, स्पर्शादिका सुख पासकें, उत्तम जल वायु ओषधि फल पुष्पादिकों को पाकर आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकें ॥ वह दूत जो समीपवर्त्ती और दूरवर्त्ती समस्त देवतोंको उनके भाग पहुंचासक्ता है नीचे लिखे वेदमन्त्रोंसे समझिये कि क्या है? यथाः—

अग्निꣳस्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ यजुः अ० २२ मं० १५ ॥ स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६॥ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ आसादयादिह ॥१७॥

समिधानो[अग्निः] नो हव्या हव्यानि देवेषु दधत् (दध्यात् लेट् प्रागः चोर्लोपो लेटि वा ७ । ३ । ७०) [तस्मात्] अग्निं स्तोमेन बोधय ॥ १५ ॥

अमर्त्यो हव्यवाडुशिग्दूतश्चनोहितोऽग्निर्धिया समृण्वति ॥ १६ ॥

अहमग्निं हव्यवाहं दूतं पुरोदधे उपब्रुवे (च) (सोऽग्निः) इह देवान् आसादयात् ॥ १७ ॥

(समिधानः) समिधाओंसे प्रदीप्त अग्नि (नो हव्या देवेषु दधत्) हमारे हव्य पदार्थोंको देवतोंके पास पहुंचावे इस लिये (अग्निं स्तोमेन बोधय) अग्निको इन्धनसमूह या यज्ञसे प्रदीप्त करो॥१५॥ (अमर्त्यः) अमर (हव्यवाट्) हव्य ले जाने वाला (उशिक्) कान्तिवाला। उशिक्—कान्तिकर्मा निघं० २।६ (दूतः) देवतोंके बुलाने और भाग पहुंचाने वाला (चनोहितः) भोज्य अन्नके लिय हितकारक। चनः=चायतेरन्ने ह्रस्वश्च। उणा०। ४। २०१। (अग्निः) अग्नि (धिया) अग्न्युपयोग वाले कर्मसे। धीरिति कर्म नाम निघं० २।१। (समृण्वति) सङ्गत होता है। ऋण्वति—गतिकर्मा। निघं० १।१४।॥१६॥ मै (हव्यवाहम्) हव्य लेजाने वाले (अग्निं दूतम्) अग्निदूतको (पुरोदधे) पुरोहित अर्थात् अग्रणी करता हूं "अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति। नि० ७।१४,, (उपब्रुवे) अन्योंको भी उपदेश करता हूं (इह देवान् आसादयात्) इस यज्ञमें वह अग्नि देवतोंको पहुंचावे॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। सामवेद प्रपाठक १ अर्ध १ मन्त्र ३॥

[वयम्] अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्, होतारं, विश्ववेदसं, दूतमग्निं वृणीमहे। हम (अस्य यज्ञस्य) इस यज्ञके (सुक्रतुम्) सुफल करने वाले, (होतारम्) भस्म करने वाले, (विश्ववेदसम्) चक्षुर्विषयक ज्ञानके लिये सबके सहायक [अग्निसे प्रकाश होता प्रकाशसे आंखोंको सहायता मिलकर घट पटादि पदार्थोंका ज्ञान होता है] (दूतमग्निम्) देवदूत अग्निको (वृणीमहे) यथार्थ वरण करते हैं अर्थात् अग्न्याधान करते हैं॥१॥

अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवां आसादयादिह। ऋ० मं०८ अध्या०६ सूक्त ४४॥

अन्वय इसका ऊपर लिखे यजुर्वेदमन्त्रके तुल्य ही है॥

यजमान को विचारना चाहिये कि अग्नि दूतको आगे रक्खूं अग्न्याधान करूं, मै सामने बुलाऊं क्योंकि वह हव्यवाह्—हव्य पदार्थोंका देवतोंको पहुंचानेवाला है। और वह इस यज्ञ में देवोंको प्राप्त करावे॥ तात्पर्य्य यह है कि अग्नि देवता अन्य सब देवतोंका दूत है वह हव्य पदार्थ लेजाता है वह देवतोंको बुलाए कर उनके भाग उन्हे पहुंचाता है। यजमानको यज्ञके आरम्भमें अग्नि दूतका आवाहन अर्थात् अग्निकुण्डमें अग्न्याधान मन्त्रद्वारा अग्निका स्थापन करना चाहिये तत्पश्चात्—

अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। इन्द्राय स्वाहा। प्रजातये स्वाहा।

इत्यादि मन्त्रोंसे उस २ देवताके नामोच्चारणपूर्वक आहुति देनी चाहिये इनको "आघारी" और "आज्यभागौ" इन शब्दोंसे याज्ञिक लोग सङ्केत करते हैं। अग्नि प्रज्वलित होकर देवतोंके भाग उन्हें पहुंचाता है और प्राणादि ११ रुद्रों, चैत्रादि १२ आदित्यों, अग्न्यादि ८ वसुओंको तथा अन्य देवता भी जो अग्निके ऊपर वायुमें रहते हैं बुला २ कर भाग दे २ कर विसर्जन करता है। यह बात वे लोग सुगमतासे समझ सक्ते हैं जिन्होंने विज्ञानशास्त्र पढ़ा है और जानते हैं कि अग्निके ऊपरका वायु, लघु हो जाता है अर्थात् अग्नि द्वारा भाग लेकर वायु और उसमें स्थित अन्य प्राणादि देवता फूलते हैं और जिस कारण लघु वा हलके पदार्थ नीचेसे ऊपरको जावें यह स्वाभाविक नियम है इसी कारण अग्निके ऊपरका वायु भी अपने सहवर्त्ती देवगणों सहित आकाशमें ऊपर चला जाता है जब उसके हटनेसे कुछ स्थान रिक्त (खाली) होता है तो उसे चारों ओरके वायु और उसके सहवर्त्ती अन्य देवता भर देते हैं जब वे भी अपना २ भाग पाचुकते हैं तो फूलकर लघुभावापन्न होनेसे ऊपर चले जाते हैं इसी प्रकार अपने सामर्थ्यानुसार और यजमानके द्रव्यानुसार अग्निदूत सब देवोंका भाग बांटता है॥

आप सन्देह न करें कि देवता जड़ हैं तो वे अपने२ भागको किस प्रकार पहिचाने और लेंगे, दूत अग्नि भी जड़ है वह कैसे—अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। इन्द्राय स्वाहा। इत्यादि प्रकार देवनामोच्चारणपूर्वक दी हुई आहुतियों को उस२ देवताको पहुंचायेगा? और साकल्य हव्य पदार्थ भी सब इकट्ठा ही होमा जाता है वह कैसे भिन्न२ देवताके स्वभावानुकूल उसे प्राप्त होसकेगा। और स्वभावविरुद्ध हव्य प्राप्त होनेसे देवताकी प्रसन्नताके स्थानमें अप्रसन्नता हो तो यजनका फल न होगा!॥

यद्यपि अग्न्यादि भौतिक ३३ देव सभी जड़ हैं और इसीलिये वे प्रार्थनोपासना योग्य नहीं यह पहिले कह चुके हैं तथापि देवतागण ईश्वरदत्त दिव्य शक्ति द्वारा एक ही हवन कुण्ड में एक ही अग्नि दूत होते हुए भी अपने२ भागका ग्रहण और दूसरे देवतों के भागका त्याग कर देते हैं। आप इस दृष्टान्त से अच्छे प्रकार समझ जायंगे जो आगे वर्णन किया जाता है। देखिये ईश्वरदत्त दैवी शक्ति का कैसा प्रभाव है कि एक ही क्षेत्र वा गमले में ५। ५

स्वभावके ४।५ बीज बोये जायं और एकही पात्रसे एकही प्रकारका जल एक ही प्रकारका वायु एकही प्रकारके खाद्य (पांस) से उगने पर भी मरिचेका बीज तो उसी एक प्रकारकी भूमि, जल, वायु, खाद्यमें से केवल तिक्त (कटु) अंशको लेता है दूसरा बीज जो उसके अतिसन्निकर्षमें है नीम्बूका होनेसे खट्टा केवल खट्टेही अंश जल वायु पृथिवी और खाद्यमें से लेता है इसीप्रकार मीठा बीज मिष्ट ही का ग्रहण करता और कषाय कटु आदि जितने प्रकारके बीज होंगे अपनेर ग्राह्यांशका ग्रहण और त्याज्यांशका त्याग ही करते हैं तो देवगणोंमें भी इसीप्रकार अपनेरस्वभानुकूल हव्यांशका ग्रहण होना सुगम है॥

आप यह प्रश्न करेंगे कि जब देवता जड़ हैं तो ज्ञानाधिकरण न होनेसे आहुति ग्रहण करके प्रसन्न और न देनेसे अप्रसन्न कैसे होसक्ते हैं और जब वे प्रसन्न वा अप्रसन्न नहीं हो सक्ते तो वे सुख दुःख भी नहीं हो सक्ते । उत्तर यह है कि प्रसन्नता वा अप्रसन्नताका चेतनमें ही नियम नहीं किन्तु अच्छेकों प्रसन्न और बुरेको अप्रसन्न कहते हैं और अच्छापन वा बुरापन जड़ पदार्थों में होता ही है। जैसे बूझते हैं कि " आपका चित्त प्रसन्न है." अर्थात् अच्छा है ?। नभः प्रसीदति शरदि-शरद् ऋतुमें आकाश अच्छा लगता है । प्रसन्नजल-स्तडागः—तालाव अच्छे जलवाला है । प्रसन्नोगुरुः-अध्यापक अच्छे अर्थात अनुकूल हैं। [उर्दू में मिज़ाज ख़ुश है, ख़ुशबू आती है, यह फूल खुशनुमा है। इत्यादि प्रयोगोंमें खुश शब्द जड़पदार्थोंका विशेषण है) तात्पर्य्य यह है कि प्राणापानादि ११ रुद्र, चैत्रादि १२ आदित्य, अग्नि, जल, वायु, सूर्य्य, बिजली आदि सब पदार्थोंको अनुकूलताका नामही उनर की प्रसन्नता है और प्रतिकूलताका नाम अप्रसन्नता है और जब जड़ पदार्थोंमें अनुकूलता प्रतिकूलता स्पष्ट है तो अनुकूलतामें सुख तथा प्रतिकूलतामें दुःख अवश्य ही सम्भव है इस कारण यदि हम सुखकी प्राप्ति और दुःखोंसे बचना चाहें तो वेदविहित ईश्वर की आज्ञानुकूल यज्ञ करें। यदि कोई कहे कि प्रायः यज्ञ किये जाते हैं परन्तु तदनुकूल सुखकी प्राप्ति नहीं होती। इसका कारण यह है कि यज्ञ के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग पूर्ण नहीं होते जैसा न्यायका सिद्धान्त है कि—

कर्तृकर्मसाधनवैगुण्यात् ॥

जबर कभी किसी सम्भव कार्य्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती तब र कर्त्ता, कर्म और साधन इन तीनोंमें से एक दो वा तीनोंमें कुछ न कुछ दोष होता

है । तदनुसार यज्ञमें भी कई प्रकारकी विगुणता होती हैं । जिनमें से प्रथम कर्त्तृवैगुण्य ही बड़ा भारी है अर्थात् जैसे यज्ञकर्त्ता और जितने और जहां २ चाहियें वैसा नहीं हो पाता । जिस २ प्रकारके यज्ञमें ऋत्विज्–होता, ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्यु होने चाहियें वैसे ठीक प्रायः नहीं हैं विशेष कर ब्रह्माका मिलना ही दुस्तर है और प्रचरित रीतिमें जो ५० कुशका ब्रह्मा रच लिया जाता है वह तो सर्वथा ही निष्फल है । बहुत लोगोंने हमसे कहा है कि क्या सब कर्त्तव्यधर्म विषयक विधि निषेध तुम चार वेदोंके मन्त्रोंसे दिखला सक्ते हो? यदि दिखला सक्ते हो तो बतलाओ वेदके किस मन्त्रमें ब्रह्मा, होता, उद्गाता और अध्वर्युका विधान है ? ॥ उत्तर–प्रथम तो हम यह नहीं कहते कि हम मन्त्रोंमें साक्षात् ही सब विधि दिखला सक्ते हैं किन्तु हमारा सिद्धान्त तो जैमिनीय मीमांसाके:–

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम् । मी० अ० १ पा० ३ सू० ३

के अनुसार यह है कि शब्दप्रमाणके साक्षात् विरुद्ध बातें न मानी जावें परन्तु विरोध भी न हो और साक्षात् विधिवाक्य भी न मिले तो अनुमान करना चाहिये कि यह विधि किसी प्रकार किन्हीं ऋषियोंने वेदमें साक्षात् वा ध्वनि आदिसे देखा ही होगा । तथापि उद्गाता आदिका विधान नीचे लिखे मन्त्रमें मूलरूप पाया जाता है:–

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्, गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु । ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां, यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ॥ ऋ० मं० १० अष्टक ८ अध्याय २ मं० अन्तिम ॥

अन्वितव्याख्यानम्–[त्व शब्दः सर्वनामसु पठित एक शब्द पर्य्यायः] एको होता (पुपुष्वान् ऋचां पोषमास्ते) स्वकर्माधिकृतस्सन् यत्र तत्र पठिता ऋचो यथाविनियोगविन्यासेन पोषयति सार्थकाः करोति (त्वः शक्वरीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्वर्य्युपलक्षितासुच्छन्दोविशेषयुक्तास्वृक्षु गायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एको ब्रह्मा, अपराधे जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वदति (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ) एकोऽध्वर्युर्यज्ञस्य मात्रामियत्तां विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनत्ति ॥

अर्थात् एक होता ऋचाओंको विनियोगानुसार सङ्घटित करता है, एक उद्गाता शक्वर्य्यादिच्छन्दोयुक्त गायत्र गान करता है, एक ब्रह्मा यज्ञमें कुछ अ-

पराध वा भूल चूक होने पर उसका प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिमाण वा इयत्ताको निर्धारित करता है ॥

ऊपर लिखे ४ ऋत्विज् ४ वेदोंके ज्ञाता यज्ञको पूर्ण करते हैं इनमें से "१-होता,, है जिसका यह काम है कि मन्त्रसंहितामें यथास्थान पठित मन्त्रोंको उस यज्ञविशेषमें विनियोगके अनुसार ठीक ठीक करे। जैसे पाणिनि मुनिने अष्टाध्यायीमें स्वाभिमत प्रकरणानुकूल सूत्र पढ़े हैं उनसे वैयाकरण लोग जब कोई प्रयोग सिद्ध करते हैं तब विद्यार्थीको सिखलाते समय सलेट आदि पर विग्रह (असिद्धरूप) लिखकर फिर जिन २ सूत्रोंकी उस प्रयोगके सिद्ध करने में आवश्यकता होती है उन२ सूत्रोंका उच्चारण करते हुए उन२ सूत्रोंकेअर्थानुसार कार्य्य करके प्रयोग सिद्ध करते हैं इसी प्रकार किसी यज्ञविशेषको सिद्ध करनेके लिये होता नामक ऋत्विज् चाहिये जो यज्ञको ठीक २ सिद्ध करें। २-"उद्गाता,, है जो शक्करी आदि वेदके छन्दोयुक्त सामादिका गान जहां २ अपेक्षित है वहां २ ठीक २ करे । ३-"अध्वर्यु,, है जो यज्ञकी मात्रा (जैसे ओषधिकी मात्रा ठीक हो तो आरोग्य करती है) का परिमाण निर्धारित करे। ४-"ब्रह्मा,, है जो पहिले ३ ऋत्विजोंके कार्य्यमें कृताकृतावेक्षण कर्म करे अर्थात् यज्ञमें कोई करणीय कर्म छूट न जावे तथा अकरणीय किया न जावे। यह दृष्टि रक्खे और जब कभी कुछ अन्यथा कर्म हो जावे तब उसका प्रतीकार वा प्रायश्चित्त करे करावे। ब्रह्माके कार्य्यको ऊपर लिखे वेदमन्त्रमें देख कर ऋषियोंने अपने २ ग्रन्थोंमें और विशेष स्पष्टतासे निरूपण किया है। यथा हि छन्दोगा आमनन्ति-

यज्ञस्य हैषभिषक् यद् ब्रह्मा यज्ञायैव तद्भेषजं कृत्वा हरति ॥

अर्थात् यज्ञका यह वैद्य है जोकि ब्रह्मा है वह यज्ञके लिये ही औषध बना के पहुंचाता है ॥ तथा-

यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति ॥ कौथुमशाखीय छान्दोग्य प्र० ४ ख० १७॥

अर्थात् ब्रह्मा यज्ञको निर्दोष सन्धान करता है क्योंकि यज्ञ औषधकृत है जिसमें ऐसा विद्वान् ब्रह्मा होता है ॥

यद्यृक्तोरिष्येत् भूःस्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयात् ॥ कौथु० शा० छा० प्र० ४ खं० १७ ॥

जब किसी ऋचाका अपराध होनेसे दोष उत्पन्न हो तो ब्रह्मा "ओंभूः स्वाहा,, इस मन्त्रसे गार्हपत्य अग्निमें आहुति देकर उसका प्रतीकार वा प्रायश्चित्त करे ॥

आज कल वैदिककर्मकाण्डके अश्रद्धालु पुरुष शङ्का करेंगे कि किसी ऋचा के पाठमात्रमें कोई भूल चूक होजाना कितनी बड़ी बात है जिसके लिये ब्रह्माको प्रायश्चित्तकी आवश्यकता पड़े ? ।

विचार करके देखा जावे तो किसी वेदमन्त्रके पाठमें भेद पड़ना बड़ा-भारी अपराध है । क्या वे अश्रद्धालु पुरुष नहीं जानते हैं कि सम्प्रति राजकीय निर्धारित नीति (कानून) वा किसी उच्चाधिकारी (गवर्नरादि) वा राजा के व्याख्यान (स्पीच) का अनुवाद करते हुवे प्रयोजनीय विषयमें भूल वा ज्ञानसे कोई अन्यथा बोले, लिखे, समझे, समझावे और तदनुसार भूलका काम करे वा करावे तो अवश्य अपराधी है । जब कि लोकमें राजादिके प्रकाशित आज्ञापत्र वा कानूनके शब्दोंमें अन्यथाभाव करना वा मानना अपराध है जिसमें कि बहुधा राजादिकी भूलभी सम्भव है संभव ही नहीं किन्तु प्रायः पहिली २ आज्ञाओंका संशोधन राजा वा राजसभा कियाकरती हैं तो जिस वेदका प्रकाशक परमात्मा है, जिसमें अज्ञानका लेश नहीं, जिसके सृष्टिस्थ तथा वेदप्रतिपादित धर्म नियम अटूट निर्भ्रान्त और त्रैकाल्याबाध्य हैं, उस परमात्माकी आज्ञारूप वेदवाक्योंका अन्यथा विनियोग अन्यथा व्यवहार आदि करना अपराध क्यों नहीं । जिनको वेद और ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा विश्वास है उनके लिये विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं और जो वेद तथा ईश्वर पर अश्रद्धालु हैं उनके प्रति हम यहां कुछ नहीं लिखते किन्तु "वेद,, वा "ईश्वर,, ये दो अधिकरण (हेडिङ्ग) देकर उस २ प्रकरणमें फिर कभी यथावकाश लिखेंगे यहां यह प्रकरणमें इतना ही पर्य्याप्त है ॥

जिस वेदमन्त्र द्वारा हमने ब्रह्मा, होता, उद्गाता, अध्वर्यु इन ४ ऋत्विजों के कामोंका यह विनियोग लिखा है इसी प्रकार उक्त मन्त्रकी व्याख्या करते हुवे निरुक्तकार यास्कमुनि कहते हैं:—

इत्यृत्विक्कर्मणां विनियोगमाचष्टे । ऋचामेकः पोषमास्ते पुपुष्वान्होतर्गचनी । गायत्रमेको गायति शक्करीषूद्गाता । गायत्रं

ओ३म्

आर्य्यतत्त्वप्रकाश १ भागका उत्तर ॥

(पं० छुट्टनलाल स्वामी लिखित)

आर्य्यतत्त्वप्रकाश नामक पुस्तकके (जो वेदोंकी नवीनतामें बनाया है) देखनेसे विदित हुवा कि निर्माताने अपना नाम धाम लज्जावश प्रकाशित नहीं किया है तौ भी सुननेसे विदित हुवा है कि पाद्री खड्गसिंहने बनाया है। जब तक नाम न मालूम था तौ उत्तरकी अधिक आवश्यकता न थी परन्तु नाम खोजनेसे प्रतीत हुवा तौ ऐसा अनुमान हुवा कि यह कोई वेदके माननेवाले आर्य्यवंशके ही हैं। अज्ञान वश धर्म छोड़ दिया है। अस्तु ॥

पृष्ठ ९ तक आधा भाग तौ व्यर्थ वनमें भटके हैं परन्तु फिर पृष्ठ १० में "वेदोंकी प्राचीनता" इस शीर्षकको रख कर १६ पङ्क्ति तक स्वामीदयानन्द सरस्वतीजीका माना वेदोत्पत्ति समय बताया है फिर पृष्ठ १० पङ्क्ति १४ से लिखा है कि "यह भी जानना चाहिये कि १०० करोड़का एक अरब होता है और १०० अरबका १ वृन्द ।„

धन्य पादरी साहब! आप यदि स्वयं गणितशास्त्र में प्रवेश नहीं रखते तौ स्वामी-दयानन्द सरस्वतीजीकी वेदभाष्यभूमिका पृष्ठ २२ में ही देख लेते कि—

एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मं च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्ध्यश्च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ॥

अर्थात् १० इकाईकी १ दहाई । १० दहाईका १ सैंकड़ा । १० सैंकड़ेका १ सहस्र । १० सहस्रका १ अयुत । १० अयुतका १ लक्ष । १० लक्षका १ नियुत । १० नियुतका १ कोटि । १० कोटिका १ अर्बुद । १० अर्बुदका १ वृन्द । १० वृन्दका १ खर्ब । १० खर्बका १ निखर्ब । १० निखर्बका १ शङ्ख । १० शङ्खका १ पद्म। १० पद्मका १ सागर । १० सागरका १ अन्त्य । १० अन्त्यका १ मध्य । १० मध्यका १ परार्ध्य ॥ ये सब पूर्व २ से दशगुणेके वाचक उत्तर २ शब्द हैं॥ इससे सिद्ध है कि इस समय यद्यपि भारतवर्षमें गणना इसी प्रकार होती है जैसा कि पादरी साहब लिखते हैं परन्तु स्वामीजीने जो हिसाब लिखा है वह इन श्लोकोंमें वर्णित परिभाषाके अनुसार है। इस परिभाषामें १० कोटिका १ अर्बुद और १० अर्बुदका १ वृन्द माना है इस लिये स्वामीजीका माना गणित परि-

भावानुसार है । पादरी साहबका नहीं ॥

फिर पादरी सा०ने प्रमाण भी आर्य्योंके पास वेदोंकी प्राचीनतामें दोही बताये हैं कि १–मनु० अ० १ श्लोक ६३ से ७५ तक २–दूसरा ब्राह्मणोंका तिथिपत्र ॥

समीक्षक–पादरी जी ! प्रमाण दो नहीं बहुत हैं पढ़कर देखो महाभारत, वाल्मीकीयरामायण आदि यावत् आर्य्यपुस्तक हैं सबमें वेदोंकी अनादि प्राचीनता स्पष्ट ही है परन्तु हम तुम्हारे माननीय अंग्रेज़ोंके प्रमाणोंसे भी साबित कर सकते हैं सो पीछे लिखेंगे ।

आगे पृ० ११ में मनुका खण्डन किया है कि जो मनुसंहिता वेदोंके प्राचीनत्वमें प्रमाण है । प्रश्न करते हैं कि मनु अपनी पुस्तकको प्रथम सत्ययुग के १०००० वर्ष बीते भाद्र मासके १५ दिन बीते तब ब्रह्माकी आज्ञासे बनाया और समाप्त किया । इस प्रकार संहिताको बनाये बहुत ही वर्ष बीते हैं परन्तु यह आश्चर्य्यकी बात है कि उसमें उन राजों और ऋषियोंके नाम हैं जोकि थोड़े दिन हुवे जब मौजूद थे राजाओंमें ययाति नहुष आदि, ऋषियों में विश्वामित्र, अजीगर्त्त, वशिष्ठ, भारद्वाजादिका वर्णन है। आश्चर्य्य है कि मनु से पीछेके ऋषियोंके नाम मनु पुस्तकमें पाये जाते हैं। स्वामी दया० जी आश्चर्य्य बातोंको नहीं मानते थे आर्य्योंको मनु जी की असम्भव बातोंको न मानना चाहिये। मनुजीनें हिरण्यकशिपुका शरीर यों कहा है कि ऊपर सूर्य्यके समान ऊंची थी इत्यादि भी मिथ्यावाद होनेसे मनुका प्रमाण नहीं मानना चाहिये इत्यादि पृ० १२ पं० ९ तक लिखा है ।

उत्तर–यदि मनु पीछे हुवे राजादिके नाम आनेसे अप्रमाण हो जाता है तौ अब भी हमारे परीक्षितगढ़के मैथो ईसाईका पुत्र योहन्ना मर्कस है बहुतसे ईसाइयोंके नाम मत्ती लूका भी पाये जाते हैं कोई २ चरित्र भी इन अबके ईसाइयोंका पूर्वज लूकादिसे मिलना सम्भव है तौ क्या उनके रचित पुस्तक भी अमान्य हो गये ? । नाम काम सदा संसारमें होते रहते हैं आगे भी यह नाम रहेंगे एक नामके कई राजा भारत ही में जयपुर राज्य पर हो गये हैं जब ख़ास एक गद्दी जयपुर पर ही एक नामके अनेक राजा हो गये आगे भी होंगे तो क्या आश्चर्य्य है जो ययाति आदि राजा, विश्वामित्रादि ऋषि बहुत वा कई हो सकते हैं । प्रयागमें मि० रोशनलाल बैरिष्टर एटलाके पालित लड़केका नाम भी दयानन्द है कदाचित् वह भी संन्यासी हो जावे फिर वह २० वीं ख्रिस्टीय शताब्दीमें कोई पुस्तक लिखे, स्वामी भी कहला ही सक्ता है तौ क्या

१९ शताब्दीमें स्वामी दयानन्द स० का स्वर्गवास लिखना वा किसी पुस्तक विशेष जैसा आपने ही यह पुस्तक आर्य्यतत्त्वप्र० बनाया इसका १९ शताब्दी का बनना क्या इससे झूठ समझा जायगा?। भारत ही में नहीं इंगलेण्डमें भी एक नाम के कई राजा हुवे हैं ईसाई भी एक नामके उन्हीं राजाओंके राज्य में होने असम्भव नहीं हैं इस पर अधिक लेख व्यर्थ है॥

मनुमें हिरण्यकशिपुका वर्णन कहीं नहीं। पादरी साहबने हिरण्यगर्भ के वर्णनको किसीसे सुना होगा। आश्चर्य्य है कि पादरी लोग विना किसी पुस्तकको देखे भी उसके खण्डनमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

आगे पृ० १२ में लिखते हैं कि मनुका खण्डन हो गया इसका प्रमाण मानना ठीक नहीं है अब विना किसी दृढ़ प्रमाणके वेदोंकी साक्षी अपने निज विषयमें प्रमाण नहीं हो सक्ती। मनुजीने वेदोंसे बहुत पीछे अपनी संहिता लिखी है भला वह वेदोंके विषयमें क्योंकर प्रमाण हो सक्ते हैं क्योंकि वह आप ही उसके आरम्भमें न थे कि जो कुछ हुवा सो देखते। सम्पूर्ण प्रमाण आर्य्यलोग केवल मनु जी और वेदों ही के देते हैं। कोई और प्रमाण वे नहीं दे सक्ते हमने उनका उत्तर तौ ठीक दे दिया है (यह सब लेख पादरीका है)॥

उत्तर—भला पादरीजी! यदि मनु जी की साक्षी तौ यूं नहीं मानी जाती कि वह वेदोंसे बहुत पीछे हुवे हैं तौ तुम्हारी पुस्तक वेदोंके नवीनत्वमें कैसे मानी जाय तुम भी तौ जिस समयका वेदोंको बताते हो तब मौजूद न थे? वाह आज तौ सारी तारीख़ ही असत्य कर दीं। डा० हंटरादि भी तौ पूर्व समयमें न थे जबके उन्होंने वृत्तान्त लिखे हैं। क्या तुम ईसा पर बायबिल आते समय थे जो उसको १८९७ वर्ष मानते हो?। क्या आपने आर्य्यपथिक पं० लेखरामजी की "तारीख़दुनियां" लिखित अनेक अंग्रेज़ वाक्योंको नहीं देखा वा सुना जो लिखते हो कि आर्य्य कोई अन्य प्रमाण नहीं दे सक्ते। आर्य्योंके पास केवल मनु और वेदों ही के प्रमाण नहीं वरन बहुतसे प्रमाण आर्य्योंकी सब पुस्तकों तथा अन्य देशीय पुस्तकोंके विद्यमान हैं पं० लेखरामकृत "ऐतिहासिकनिरीक्षण" देख कर भ्रम दूर कर लो! घरकी रत्नमयी भूमि (वैदिकधर्म) छोड़ वन २ मत भटको॥

आगे पादरी साहब० पृ१२ पं० १८ में कहते हैं—ब्राह्मणोंके तिथिपत्रका प्रमाण निरा गड़ बड़ है। केवल इस लिये कि एक प्रसिद्ध और मानी हुई बात है कि ब्राह्मणोंका प्राचीन अनुक्रमका तिथिपत्र राजा भोजके चार सौ वर्ष पहिले

अर्थात् जब भारतखण्डमें बौद्धमतका बड़ी प्रबलतासे प्रचार हुवा था उस समय में नष्ट हो गया अब ब्राह्मणोंके पासका तिथिपत्र तनिक भी विश्वासके योग्य नहीं है। इसका बड़ा भाग मनुसंहितासे सङ्ग्रह किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि उसमें स्वर्गीय और सांसारिक वस्तुओं और प्राचीन राजाओं और बड़े२ मनुष्यों और उन वस्तुओंका जो सैंकड़ों वर्ष वीते कि वर्त्तमान थीं वर्णन है। परन्तु बड़े आश्चर्यकी वात है कि उसमें सिकन्दर राजाका कहीं नाम तक भी नहीं लिखा है इस राजाने अपने इस भारतखण्डके युद्ध और विजयमें बहुत से विचित्र काम किये हैं। इसके पीछे १५० वर्ष यूनानियोंने भारतमें राज्य किया जो उनके सिक्काओंके प्रमाणसे विदित होता है इसका कुछ वर्णन न होनेसे तिथिपत्र इनका प्रमाणयोग्य नहीं है इत्यादि पृ० १३ पं० १८ तक पादरीने लिखा है ॥

उत्तर—यद्यपि ब्राह्मणोंके तिथिपत्रमें कोई बात भी इस विषयकी नही होती और न स्वामीजीने ब्राह्मणोंका तिथिपत्र कहीं प्रमाणमें ही दिया है। हमने कहीं भी नहीं सुना कि ब्राह्मणोंका तिथिपत्र बौद्धमतके समय नष्ट हो गया ? । न पादरी साहबने कोईप्रमाण ही किसी पुस्तकका दिया परन्तु लिखते हैं कि प्रसिद्ध मानी हुई बात है ? क्या ईसाइयोंने मान लई है ? हमने तौ नहीं मानी । कहीं ऐसे ही तौ नहीं मान बैठे हो जैसे आधी रोटी और आधी मछलीसे बहुतसे मनुष्य जिमा दिये वा कब्रमें से उठ खड़े होना । वाह जी ! वाह !! अपनी तौ यह भी माननीय कि कुमारीके बच्चा हो गया । आपके तौ माननेकी बात ही जुदी है । हां मैं भूला क्या ख़ूब ! ठीक है । आपके हिन्दू पुरुषा ब्राह्मणोंकेपास विवाहादि सुझवाने जाते होंगे तब ही से आप जानते हैं कि पतड़े सूं पतड़ो ना मिलो, पतड़ोंमें गड़ब्बड़ है, और सब कुछ ब्राह्मणोंके पत्रे ही में लिखा रहता है। अब ईसाई होने पर आपने यह भेद न समझ कर कह दिया होगा कि यह पतड़ा नहीं तिथिपत्र है तभीसे आप ब्राह्मणोंका तिथिपत्र शब्द लिखने लगे हैं । भला तिथिपत्रमें कहां राजा प्रजा का कहां बड़े २ मनुष्योंका वर्णन है ? क्या पादरीजीने तिथिपत्र भी नहीं देखा, तिथिपत्र भारतवर्षमें प्रति संवत् एक लक्षसे कम न छपता होगा दाम भी)॥ पैसेमें विकता है जिसने यह)॥ का भी पत्रा नहीं देखा वह वेदोंका विवेचन कैसे कर सक्ता है इन्होंने तौ वही तिथिपत्र याद रक्खा जो इनके भाई बिरादर वा पूर्वज ब्राह्मणोंसे विवाहादिबूझने गये होंगे उस समय पं०जीने—

नालिकाविष्कार ॥

अर्थात् तोप बन्दूक बारूद (शतघ्नी भृशुण्डी अग्निचूर्ण) का आविष्कार (ईजाद) प्राचीन आर्य्यावर्त्तमें ही ऋषि मुनियोंने किया था और "इसको जर्मनीके मांकरवथोलडस् शवाटरनने सन् १३२० में सबसे प्रथम आविष्कृत किया," यह विचार तब तक ही है जब तक इस पुस्तक द्वारा सर्वसाधारण ने शुक्रनीति, नीतिप्रकाशिका और महाभारत तथा डाक्टर गर्स्टेनओर्ट वेकन साहबके " विसीसीट्यूडस् आफ़ थिंगज़ " मेजर जेनेरल वार्डेल आदि के प्रमाणोंसे विभूषित इस पुस्तकको नहीं देखा है । मूल्य)॥।

"ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः"

ऐसा और इतना संक्षेपसे अब तक कोई नहीं छपा ! शब्दप्रमाण द्वारा, "मन्त्र ब्राह्मण दोनों वेद हैं वा क्या" ? इत्यादिका निर्णय ७१ प्रमाणोंसे किया है । इसमें अथर्ववेद, तैत्तिरीय, शतपथब्रा०, साङ्ख्य, आपस्तम्ब, प्रातिशाख्य, कात्यायन, बौधायन, परिशिष्ट, मीमांसा, मनुस्मृति, ऐतरेयब्रा०, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, कौशिकसूत्र, अमरकोष, लघुशब्देन्दुशेखर, निरुक्त, सायणभाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, वेदान्तसूत्र, न्यायदर्शन, तैत्तिरीयआरण्यक पिङ्गलसूत्र, चरणव्यूह, न्यायविस्तर इन २७ ग्रन्थोंसे बहुत से प्रमाण द्वारा सङ्ग्रह किया है । श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वतीजीके भूमिकाके वेदसंज्ञा विषयक लेख का खण्डन महन्त ब्रह्मकुशलने किया थाउसके उत्तरमें यह पुस्तक मैंने परिश्रमसे बनाया है मूल्य -)॥।

अक्षरप्रदीप ॥

१) में १०० एक प्रति)। यह पुस्तक नये ढंगसे बहुत उपकारी शिक्षावाक्यों से युक्त शुद्ध सरल भाषामें बालकोंके अभ्यासार्थ छपा है ॥

दयानन्दतिमिरभास्कर की समीक्षा ॥

पं० ज्वालाप्रसाद मुरादाबाद निवासीने "दयानन्दतिमिरभास्कर" नामक ४०० पृष्ठका पुस्तक मुम्बईमें छपाया है इसमें सत्यार्थप्रकाशका मन माना खण्डनाभास किया है । यद्यपि यह पुस्तक वेदादिके वाक्योंका प्रमाणशून्य मनघड़न्त अर्थ करके पूरा किया गया है तथापि जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनके चित्तमें आर्यधर्मकी ओरसे अश्रद्धा उत्पन्न करनेका हेतु होजाता है। इस कारण मैंने इसके खण्डनका प्रारम्भ किया है । इसका विज्ञापन प्रथम मन्त्री राजस्थान प्रतिनिधिसभा और पश्चात् मैंने दिया था तदनुसार ३५ कापियोंका अग्रिम मूल्य भी आगया है और ८० कापीके ग्राहक हुवे हैं परन्तु पुस्तक अनुमान ३५० वा ४०० पृष्ठका होगा इसलिये धनव्यय अधिक है ग्राहक महाशय इसका १) अग्रिम भेजकर सहायता दें तो यह ग्रन्थ शीघ्र ही उनके पास पहुंचेगा ॥ तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश—मेरठ

ओ३म्

वेदप्रकाश ॥

वेदप्रकाशो वेदस्य गौरवं सुप्रकाशयेत् ।
तद्वारकतमोराशिं समन्ताच्च विनाशयेत् ॥

—*०*—

वेदोक्त धर्म प्रतिपादन और तद्विरुद्धमत-निराकरणविषयक

मास (४) | मासिकपत्र | (१) वर्ष

जो

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक और प्रकाशक द्वारा तदीय स्वामियन्त्रालय मेरठमें मुद्रित और प्रकाशित होता है

संवत् १९५४ ॥ ७०० ॥ ३० । ४ । १८९७ ई०

१—वार्षिक अग्रिममूल्य १) पश्चात् १॥) लिया जायगा परन्तु ३ मासके भीतर मूल्य अग्रिम समझा जायगा। मेरठमें अग्रिम ॥।) पश्चात् १)

२—नमूनेमात्रका अङ्क जिन सज्जनोंके पास भेजा जायगा यदि वे ग्राहक होनेको पत्र न लिखेंगे तो दूसरी कापी न भेजी जायगी इस कारण नाम, ग्राम, डाकघर, ज़िलाके पते सहित पत्र अवश्य लिखें ।

३—सर्वसाधारणके समाचार [ख़बर] इसमें नही छपेंगे ।

४—विशेष उपकारक पुस्तकोंकी समालोचना भी टैटिलपेज पर छपेगी।

५—विज्ञापनकी बंटाई एक बारमें २) लीजायगी और विज्ञापन पर "वेदप्रकाशका क्रोडपत्र" यह लिखा होना चाहिये ।

धन्यवाद ॥

श्रीयुत डा० रामप्रसादजी प्रधान आर्य्यसमाज नरसिंहपुर सी०पी०ने १०) दयानन्दतिमिरभास्करसमीक्षाकी सहायतार्थ भेजे सो धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हैं॥

उपदेशकपाठशाला मेरठ ॥

बा० पृथ्वीसिंहजी सभासद् आर्य्यस० मेरठ ने अपनी पुत्रीके विवाहसंस्कारमें २) पाठशालार्थ दान दिये तथा १ लोटा (पात्र) ला० रामचन्द्र रईस मवानाने विद्यार्थीको दिया परमात्मा उनके अभीष्ट पूर्ण करे ॥ १६ । ४ । ९७ को एक और विद्यार्थी ग्राम गधरेड़ी डा० सरसावा ज़ि० सहारनपुरसे मुसद्दीराम नामकआया है यह यूनीवर्सिटी पञ्जाबमें प्राज्ञ परीक्षा पास है और कुछ आगे भी पढ़ा है आशा है कि शीघ्र ही उपदेश योग्य हो जायगा । विद्यार्थी उपदेशप्रणाली और शास्त्रार्थका क्रम भी सीखते हैं । ला० मुन्नालाल साहबने दो के स्थानमें ४ छात्रोंका भोजन स्वीकारा हैं राय साहबको अनेक धन्यवाद हैं ॥

सूचना ॥

हमारे कितने ही ग्राहकोंने रुचि प्रकट की और सद्धर्मप्रचारक जलन्धर ने सम्मति दी तदनुसार वेदप्रकाशका कलेवर ४ पेज बढ़ाया जायगा अर्थात् ४ पेज उपनिद्भाष्यं छपा करेगा परन्तु वेदप्रकाशकी ग्राहक सङ्ख्या आजकी तिथिमें २१२ है यह वृद्धि ३०० ग्राहक होने पर की जावेगी आशा है कि ७ वें अङ्कके प्रकाशित होनेसे पूर्व ही यह सङ्ख्या पूर्ण हो जायगी ॥

मूल्यप्राप्तिस्वीकार २५ । ३ । ९७ से २५ । ४ । ९७ तक

१९५ पं० लक्ष्मीनारायण भिंड १)
१७२ पं० रामकिशोर कलकत्ता १)
१६७ पं० शिवनाथ वाजपेयी सातन १)
१८३ बा० ज्वालाप्रसाद एम०ए०
डिपुटी कलक्टर बुलन्दशहर १)
१८१ पं० बद्रीदत्त वैद्य कासगंज १)
१३६ पं० अयोध्याप्रसाद इन्स्पेक्टर ।।।)
१९७ बा० ज्योतिःस्वरूप देहरादून १)
१९८ ला० रामकृष्ण मलीरा १)
१९५ ला० प्रियालाल कर्णाल १)
२०३ बा० प्रभुदयालु तेरही १)
१८७ बा० जमैयतराय अहमदाबाद १)

११९ पं० ज्ञानीराम चान्दारूस १)
१९२ ला० जगन्नाथप्रसाद झलरा १)
१६५ बा० कुञ्जनलाल धारूर १)
१५२ ला० मिट्ठनलाल अलीगढ़ १)
१७३ बा० कखलावरसिंह तीतरों १)
१९९ ला० अयोध्याप्रसाद " १)
१७७ ला० ध्यानसिंह रदोर १)
२०६ ला० बैजनाथ नजीबाबाद १)
२०७ पं० शालिग्राम रायगढ़ १)
२० पं० रामविलास शाहाबाद १)
१४६ मन्त्री आर्य्यसमाज बरेली १)

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

—:o:—

वर्ष१ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { ४ मास

पं० रामचन्द्र वेदान्ती देहलीके प्रश्नोंके उत्तर ॥

पाठकोंको विदित हो कि पं० रामचन्द्र नवीनवेदान्ती देहली निवासीने एक विज्ञापन पत्र छपाकर प्रकाशित किया है जिसमें लिखा है कि सत्यार्थप्रकाशमें जिन२ पुस्तकोंके प्रमाण दिये हैं वे प्रमाण उन२ पुस्तकोंमें नहीं हैं जिसको देखतेही हमारे पौराणिक भाई भ्रान्तिमें पड़जाते हैं और कहते हैं कि इसका उत्तर सामाजिक लोग नहीं देसक्ते।

यद्यपि इस पत्रमें जो प्रश्न हैं उनके उत्तर बहुधा शास्त्रार्थों और व्याख्यान आदिमें होचुके हैं तथापि हम अपने पौराणिक भ्राताओंके भ्रमनिरासार्थ वेदप्रकाश द्वारा भी इसका उत्तर देना उचित समझते हैं ॥

१–प्र० अत्रपूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः० ।

यह ३ चरणका श्लोक वा० रामायणमें नहीं है :–

उत्तर–वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड सर्ग १२५ श्लोक २० व २१ में यह पाठ वर्त्तमान है मुम्बई का सटीक वा० रामा० कल्पतरु प्रेस सन् १८८९ का छपा पृष्ठ १४१ पं० २ देखिये ॥

२–प्र० और इसी स्थानमें चातुर्मास्य किया था। यह किस श्लोकका अर्थ है

उत्तर–रामचन्द्रजी का वहां चातुर्मास्य करना किसी एक श्लोकका अर्थ नहीं. किन्तु किष्किन्धा और सुन्दरकाण्डोंमें रामचन्द्रजी, सुग्रीव और हनुमान् आदिके समस्त वृत्तान्तको पढ़ो तो स्पष्ट विदित होजायगा कि समुद्रके इस

और चातुर्मास्य भर रामचन्द्रजी रहे फिर मार्गशिर कृष्णा अष्टमीको प्रस्थान किया यह बात नीचे लिखे प्रमाणसे स्पष्ट है:—

मार्गकृष्णेऽष्टम्यां राघवप्रस्थानस्येत्यादि । वा०रामायण तिलक । युद्धकाण्ड पृष्ठ १२६ पं०४ छापा मुम्बई कल्पतरु प्रेस ।

इससे स्पष्ट है कि चौमासेके पश्चात् रामचन्द्रजीने चढ़ाईकी । एक बात यह भी जानने योग्य है कि श्रीस्वामीदयानन्दसर०जी सत्यार्थप्रकाशके इस प्रसङ्गमें यह सिद्ध करते हैं कि वा० रामायणमें इस स्थानमें शिवलिङ्ग स्थापन नहीं लिखा सो यह बात ऊपर लिखे श्लोक (अत्र पूर्वं महा०)के टीकाकारके—

"कूर्मपुराणे तु अत्रस्थाने स्पष्टमेव लिङ्गस्थापनमुक्तम् ।

अर्थात् इस स्थानमें कूर्मपुराणमें तो स्पष्ट ही लिङ्ग स्थापन कहा है,, । इस लेखसे भी सिद्ध होता है कि टीकाकार भी जानता है कि रामायणके श्लोकसे लिङ्गस्थापना सिद्ध नहीं होती परन्तु कूर्मपुराणसे सिद्ध होती है सो रामचरित्र विषयमें रामायणके विरुद्ध अन्य पुराण प्रामाणिक नहीं होसक्ते ॥

३—प्र० विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥

यह आधा श्लोक मनुमें नहीं है ॥

उत्तर—यह श्लोक मनुस्मृति छापा मुम्बई निर्णयसागरप्रेस सम्वत् १९४६ पृष्ठ ३६४ अध्याय ११ श्लोक ६ पं० ६ में यह पाठ उपस्थित है कि—

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् । वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥

इसी श्लोकमें कुछ पाठान्तर होकर ऊपर लिखा सत्यार्थप्रकाशका अर्ध श्लोक लिखा गया है अर्थ एकही है ॥

४—प्र० रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति ।

यह श्लोक भागवतमें नहीं है ॥

उत्तर—इस पाठका पता सत्यार्थप्रकाश नया छपा सम्वत् १९४७ में छाप दिया गया है देख लीजिये कि भागवत स्कन्ध १० अध्याय ३९ श्लोक ३८ और स्कन्ध १० अध्याय ३८ श्लोक २४ ॥

५—प्र० सत्यार्थप्र० ३३८ पृष्ठ में लिखी प्रल्हादकी कथा भागवतमें नहीं है

उत्तर—भागवतमें प्रह्लादकी कथा उपस्थित है परन्तु खम्भेका तपाया जाना कीड़ियोंका उसपर चलना, स्वामीजीने यह नहीं लिखा कि यह भागवतका पाठ है किन्तु उनका तात्पर्य्य यह है कि नृसिंह अवतारकी कथा प्रह्लादके साथ जो भागवतमें लिखी है सृष्टिक्रमविरुद्ध और असत्य है। किसी भागवत बांचने वा सुनने वालेको जो उसपर विश्वास रखता है प्रह्लाद की तरह पहाड़ों परसे गिराया जावे वा अन्य सब चेष्टा वैसीही की जावें तौ वह नहीं बच सक्ता इसी प्रकार प्रह्लादके साथ भी यह चेष्टाकी जातीं तौ न बचता क्योंकि सृष्टिक्रम (अग्नितापादि) जैसा कि हिन्दुओंका विश्वास है कि होलिका मैयाका त्योहार तभीसे चला जबसे कि प्रह्लादकी फुआ उसे लेकर अग्निमें बैठ गई और वह स्वयं फुंक गई भक्त प्रह्लादको आंच न आई इत्यादि विरुद्ध बातें असम्भव होनेसे मिथ्या हैं। महाशय! जब तक आप इन विषयोंकी पुष्टि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे न करें तब तक आपकी इन बातोंसे पुराणोंकी सत्यता नहीं सिद्ध होसकती ॥

६—मनुष्योंकी आदि सृष्टि तिब्बतमें हुई यह किस शास्त्रमें लिखा है इत्यादि

उत्तर—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या अन्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः। तैत्ति० ब्रह्मानन्द वल्ली अनु० १

अर्थात् प्रथम परमात्माने आकाश तत्त्वको उत्पन्न किया फिर वायु फिर अग्नि फिर जल फिर पृथिवी फिर अन्न फिर वीर्य फिर मनुष्यको ॥

इससे स्पष्ट है कि उत्पत्तिक्रममें पुरुषकी उत्पत्ति अन्नके पश्चात् है अन्न पृथिवीसे उत्पन्न होते हैं पृथिवीका ऊंचा भाग तिब्बत ही प्रथम ठंडा और अन्न उपजाने योग्य होसक्ता है क्योंकि जब किसी लोहपिण्डको गर्म करके पुनः ठंडा करो तौ ऊपरका भाग ही प्रथम ठंडा होगा इसी प्रकार अग्निमय पिण्डसे जलमय पिण्ड तत्पश्चात् मृण्मय पिण्ड तत्पश्चात् अन्न से मनुष्य जाति की उत्पत्ति होसकती है इसी विचारसे स्वामीजी ने तिब्बतमें मनुष्योंकी आदि सृष्टि लिखी है ॥

७—प्र० नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ॥

यह श्लोक स्वामीजीके माने दश उपनिषदोंमें से किस उपनिषद्का है?

उत्तर- जिन २ बातोंको सब लोग मानते हैं उनके लिये आवश्यक नहीं कि स्वामीजी अपने माने हुए प्रामाणिक ग्रन्थोंसे ही प्रमाण दें। जब "सत्यसे बढ़कर धर्म नहीं झूंठसे बढ़कर पाप नहीं„ इस सिद्धान्तको सब मतोंके लोग मानते हैं तब कहींका भी श्लोक क्यों न हो, विवादास्पद नहीं होसक्ता। क्या हमारे भाई पं० रामचन्द्र इस सिद्धान्तको नहीं मानते कि "सत्यसे बढ़कर पुण्य और असत्य से बढ़कर पाप नहीं„ यदि मानते हैं तो दोनों पक्ष की मानी हुई बातमें विवाद क्या? नहीं मानते तौ क्या कोई पन्थ उन्होंने ऐसा निकाला है जिसमें सत्यसे घृणा और असत्यसे प्रीति है। संसारमें सब मतोंसे अधिक बुरी बातें वाममार्गमें पाई जाती हैं परन्तु सत्यका विरोध तौ उन्होंने भी नहीं माना परन्तु आपकी लीला अपार है॥

८—स्वामी शङ्कराचार्य्यको विष दिया जानेका वृत्तान्त शङ्करदिग्विजयमें नहीं लिखा इत्यादि॥

उत्तर- सत्यार्थप्रकाशमें भी तौ यह नहीं लिखा कि शङ्करदिग्विजयमें ऐसा लिखा है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि शङ्करदिग्विजयमें सब ही बातें हों तथा शङ्करदिग्विजय भी कई हैं इनके अतिरिक्त कोई अन्य भी शङ्करदिग्विजय हो जो अनुपलब्ध हो। अस्तु यह कोई ऐसा विषय नहीं जो किसी के मत पर दोष लगानेको स्वामीजी मिथ्या लिखते। एक यह भी बात है कि विष देनेवाले का प्रमाण न्यायालय योग्य उस समय न मिल सकने आदि कारणोंसे जानबूझकर भी यह बात शङ्करदिग्विजयमें न लिखी गई हो। स्वयं स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी को विष दिया गया उसका भी न्यायालय योग्य प्रमाण न मिलने आदि कारणोंसे और स्वयं स्वामीजीने निषेध किया इससे अभियोगादि का कार्य्य कुछ न हुआ। किसी धर्मप्रचारकका अस्त्र शस्त्र विषादिसे मारा जाना उसके धर्म पर आक्षेप नहीं किन्तु बड़ा भारी सौभाग्य माना जाता है दृष्टान्तके लिये ईसा, गुरु गोविन्दसिंहके पुत्र, हकीकत् राय, पं० लेखराम आर्य्य पथिक आदिकी मृत्यु उनके अटल यश और धर्मार्थ बलिदानका डंका बजाती हैं॥

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

इसके पतेके लिये देखो "ग्रहलाघव„ अ० ५ श्लो० ४॥

१०– पृष्ठ ८४ में केवल मातङ्गऋषिका ही वर्णव्यत्यय नहीं लिखा है किन्तु इस प्रकार लिखा है कि " छान्दोग्य उपनिषद्में जाबाल ऋषि अज्ञात कुल, महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्गऋषि चाण्डालकुलसे ब्राह्मण होगये थे„ महाभारत बहुत बड़ा पुस्तक है खोजनेको ४।६ मास चाहियें खोजनेसे मिल भी जाय परन्तु केवल मातङ्ग ऋषि पर ही आप शङ्का करते हैं कि महाभारतमें नहीं लिखा सो विश्वामित्र और जाबालका वर्णव्यत्ययसे ब्राह्मण होजाना तौ आपको भी स्वीकृत ही है यदि स्वीकृत है तौ बहुत विवादकी आवश्यकता नहीं यदि स्वीकृत नहीं तौ प्रथम आप जाबाल और विश्वामित्रका उत्तर दीजिये तब हम भी इतने महाभारतसे खोज देंगे॥

११, १२, १३, १४, १५ प्रश्नोंका तात्पर्य्य संक्षेपसे यह है कि जब स्वामी दयानन्दसरस्वती और आर्य्यसमाज, वेदोंकी चार संहिता छोड़ अन्य ग्रन्थोंको मानते ही नहीं तब संस्कारविधि और पञ्चमहायज्ञविधिमें लिखी सब बातें चार संहिताओंमें दिखलानी चाहियें और प्रत्यक्षादि ८ प्रमाण भी वेदसंहिताओंमें दिखलाने चाहियें॥

११–१२–१३–१४–१५ प्रश्नोंका उत्तर यह है कि स्वामीजीने यह कहीं नहीं लिखा कि हम ऋषि मुनि कृत ग्रन्थोंको नहीं मानते और केवल चार संहिताओंको ही मानते हैं किन्तु वेदसंहिताओंके विरुद्ध को नहीं मानना लिखा है। सो प्रत्यक्षादि ८ प्रमाण, षोडशसंस्कारोंके विधि, पञ्चमहायज्ञके समस्त विधानादिमें जो कुछ लिखा है, क्या वह वेद विरुद्ध है? यदि विरुद्ध है तौ बताइये कौन विधि किस मन्त्रसे विरुद्ध है। यदि आप विरोध नहीं दिखा सके तौ वेदानुकलता नीचे लिखे मीमांसा सूत्रसे सिद्ध ही है। यथा–

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। मी० अ० १ पा०३ सूत्र०३

अर्थात् विरोध हो तो त्याज्य है और विरोध नहीं मिले तौ अनुकूलताका अनुमान करना चाहिये। तदनुसार जब विरोध नहीं है तौ जिन २ ग्रन्थों से जो२ विषय स्वामीजीने लिया वह अनुकूल माननीय ही हुवा॥

अन्तमें निवेदन यह है कि यदि इन अन्तके चार प्रश्नों पर विशेष देखना हो तौ "वेदप्रकाश„ के १ वर्ष ३ मासके अङ्कको देखिये। तथा सब ही प्रश्नों पर विस्तार पूर्वक "दयानन्द तिमिरभास्करकी समीक्षा „ छपेगी उसमें देखियेगा॥ महाशय पं० रामचन्द्रजी और सनातन धर्मके सब मुख्यपण्डितोंसे

हमारी प्रार्थना है कि यदि आपकी समझमें सत्यार्थप्रकाशके कोई लेख असत्य प्रतीत हों तो दुराग्रह छोड़ प्रीतिपूर्वक विचार कर लीजिये। हम आप दो नहीं हैं किन्तु एक वेदके धर्मको माननेवाले हैं। स्वामी दयानन्दसरस्वतीजीका भी यही प्रयोजन था कि वैदिक धर्मावलम्बी मात्र एक होजायं, पुराणोंके भिन्न२ उपदेशोंसे जो फूट फैली है वह दूर होजाय तो हमको वह सामर्थ्य प्राप्त होजाय कि जिससे समस्त संसारके मनुष्योंमें की धर्मसम्बन्धिनी भ्रान्तिको दूर करके एक सत्य सनातन वैदिक धर्मामृतपान द्वारा समस्त भूमण्डलको धर्म अर्थ काम मोक्षका भागी बना सकें जिससे हम और आप सब अटल पुण्यके भागी हों॥ यदि महर्षि स्वामी दयानन्दस०जी वा किसी अन्य ऋषि महर्षिका कोई वाक्य वेदविरुद्ध हो तो उसके छोड़नेमें हमको तो कोई आग्रह है ही नहीं परन्तु आपको भी नहीं होना चाहिये। इससे हमारा प्रयोजन यह है कि यद्यपि अभी तक हमको कोई बात सत्यार्थप्रकाशादिमें लिखी असत्य वा वेदविरुद्ध नहीं प्रतीत हुई परन्तु हमारा यह हठ नहीं है कि किसी ऋषिकृत पुस्तकमें भूल हो ही नहीं सकी। परन्तु "भूल होनी सम्भव है" का यह तात्पर्य्य भी नहीं है कि भूल अवश्य है। किन्तु भूल सिद्ध होने पर मान लेनी चाहिये॥

सारा संसार अशान्तिमें पड़ा हुवा भारतकी ऋषिसन्तानोंसे धार्मिक भिक्षा मांग रहा है तब आप और हमको उसे शान्ति देनी चाहिये वा आपसकी लड़ाई? नहीं२ आप भी संसारकी दशापर करुणा करके आपसका विरोध छोड़ संसारकी धार्मिक अभिलाषाको पूर्ण करनेमें हमारा हाथ बंटाइये॥

शास्त्रार्थ बिजनौरका परिशिष्ट॥

ओ३म्

जबकि शास्त्रार्थ बिजनौरमें १३-१-९७ को शिवाश्रमजी व पं० देवदत्तजीके निरुत्तर होनेसे वहांके सनातन धर्मियोंमेंसे १९ सभासद् आर्य्यसमाज बिजनौरमें नये सम्मिलित हुवे और पं० नन्दकिशोरजी आर्य्यसमाज बिजनौरमें उपदेशार्थ गये हुवे थे तो पं० हरिप्रसाद सनातनियोंके पण्डितने पं० नन्दकिशोरजीको नीचे लिखा पत्र भेजा जिसके देखनेसे उनकी योग्यता और उनके भरोसे वाले सनातनी भाइयोंका भोलापन प्रतीत होता है। हमें जो पं० नन्दकिशोरजी द्वारा उनके पत्र मिले हैं उत्तर सहित उनको प्रकाशित करते हैं॥

श्रीः

स्वस्तिश्री समस्तगुणगणालंकृतेषु समस्तमर्य्यादापारावारेषु नलनीदलवद्विशदगुणेषु श्रीमत्सु नन्दकिशोर नामाधेयेषु पण्डित हरिप्रसाद नामाधेयेन कृताः नतितयः सन्तु भो विद्वद्वर्यगोष्ठीगरिष्ट युस्मान्प्रति प्रश्नः वेद शब्दस्य कोर्थः संहिता मात्रपरएववेदशब्दस्याऽर्थोथवा मंत्रब्राह्मणाद्यर्थवाचक एव वेदशब्दस्याऽर्थः द्वयोर्मध्येकरः स्यात् यद्यावयोः प्रमाण्ये तुल्यता स्यात्तदा अवश्यन्नौ सास्त्रार्थो भविष्यति

भावार्थ—स्वस्तिश्री समस्त गुणगणालङ्कृत, समस्त मर्य्यादोंके पारावार, कमलिनी पत्र तुल्य उज्ज्वल गुणवाले, श्रीमान् नन्दकिशोर नामधेयको पण्डित हरिप्रसाद नामधेयकी करी नमस्कार हों ॥

हे विद्वद्वर्य्य समाजमाननीय ! आपसे प्रश्न है कि वेद शब्दका क्या अर्थ है ? संहिता मात्र ही वेद शब्दका अर्थ है अथवा मन्त्र ब्राह्मणादि अर्थका वाचक ही वेद शब्दका अर्थ है । दोनोंमें कौनसा है । यदि हमारी आपकी प्रामाण्यमें तुल्यता हो तौ अवश्य हम तुममें शास्त्रार्थ होगा ॥

ओ३म्

हरिप्रियावद्धरिप्रसाद शर्म्मन्नमस्ते । भवद्धस्तविन्यस्त पत्रमागतं ज्ञेयं चाज्ञायि । तदुत्तरमवेहि—वेदपदवाच्यत्वेन मन्त्र भागस्यैव ग्रहणं नतु ब्राह्मणपदवाच्यानां यदि मन्त्रभागेषु कुत्रचिदप्यर्थविचिकित्सुर्भवानश्मार्चादि कृत्यं सिषाधयिषुश्चेद्विमृशत्वलमनेहोनिनीषया । तूर्णमेवोत्तरं देयं माविलम्बः कार्यः

ह० नन्दकिशोरदेव शर्म्मा

भावार्थ—श्रीयुक्त हरिप्रसाद शर्मन्नमस्ते—आपके हाथका लिखा पत्र आया वृत्तान्त जाना । उसका उत्तर जानिये कि—वेद पदका वाच्य मन्त्र ही है न कि ब्राह्मण । यदि मन्त्रमें कहीं अर्थका निर्णय आप चाहते हैं और पाषाणार्चादि कृत्य सिद्ध करना चाहते हैं तौ विचार करलें समय न बिताइये शीघ्र उत्तर दीजिये विलम्ब न कीजिये ॥

इसके साथ ही पं० हरिप्रसादजीके पत्रकी अशुद्धियां दिखलानेको दूसरा पत्र यह भी थाः—

ओ३म्

अथाशुद्धिप्रदर्शनम्

तथाच—(१) नामधेयेष्वित्यत्र नामाधेयेति वारद्वयं (२) नतिततय इत्यत्र नतितय (३) गोष्ठीत्यत्र गोष्टी। गरिष्ठेत्यत्र गरिष्ट (४) युष्मानत्र युस्मान् (५) शब्दइत्यत्र सद्ब (६) द्वयोर्मध्ये कस्स्यादित्यत्र करस्यात् (७) प्रामाण्य इत्यत्र प्रमाणये (८) शास्त्रार्थ इत्यस्य स्थाने सास्त्रार्थ

इत्याद्युच्छृङ्खलविलेखनं बोधयति भाविनीं शास्त्रार्थदशां शब्दज्ञानमन्तरा वेदार्थविवेचना महती विडम्बना विरम्यतेऽधीहि व्याकरणम् योग्यो भूत्वा विमर्शाय॥

इनके भावार्थ लिखनेकी आवश्यकता नहीं सर्वसाधारण जितना समझ सके हैं समझ ही लेंगे॥

सम्पादकीय टिप्पणी

अन्य अशुद्धियां तो हैं सो हैं ही जिनसे पं० हरिप्रसादशर्म्माजी की विद्या बुद्धिका परिचय मिलता है जिनमें से कि दिग्दर्शनमात्र ८ अशुद्धि पं० नन्दकिशोरजीने दिखलाई हैं परन्तु इन ८ के अतिरिक्त अन्य भी अशुद्धियां हैं—जैसे अलङ्कृतका अलंकृत। पारावारीणेषुका पारावारेषु। नलिनीका नलनी प्रश्नका प्रष्ण। मन्त्रका मंत्र॥

इनके अतिरिक्त एक अर्थाशुद्धि बड़ी भारी है जो पाण्डित्य की दूरस्थ सीमा की ख़बर देती है जिसका हम आगे वर्णन करेंगे यदि इस प्रकारकी अशुद्धियोंको जानकर बचसकैं तो जिस बुद्धिसे ऐसे सूक्ष्म अर्थांशको समझैं क्या वही बुद्धि ईश्वरके यथार्थ ज्ञानमें हेतु न होजाय। और फिर प्रतिमावादि वेद तथा बुद्धिके विपरीत कार्य्योंमें रति ही क्यों रहे। आर्य्यसमाजके सत्य वैदिक सिद्धान्तोंके प्रचारमें बाधक होना ही न छोड़दें। अस्तु वह अशुद्धि यह है कि—

मन्त्रब्राह्मणाद्यर्थवाचक एव वेद शब्दस्यार्थः

इस पङ्क्तिमें "वेद शब्दस्यार्थः„ की जगह केवल "वेदशब्दः„ इतना ही चाहिये था क्योंकि अर्थ और शब्दमें वाच्य वाचक सम्बन्ध होनेसे अर्थ वाच्य होता है और शब्द वाचक होता है। तदनुसार "मन्त्र ब्राह्मणादि अर्थका वाचक वेद शब्द है „ ऐसा कहना बन सकता है न कि "मन्त्र ब्राह्मणादि अर्थका वाचक वेद शब्दका अर्थ„ भला वाचक कभी अर्थ होसक्ता है?॥

पृष्ठ ४६ से आगे आर्य्यतत्त्वप्रकाश १ भागका उत्तर ॥

"स्वर्गे भद्रा शुभं कार्य्यं पाताले च धनागमः ॥ मृत्युलोके यदा भद्रा," इत्यादि श्लोक जुबानी पं०जीने पढ़े होंगे, किसी धनाढ्यकी जन्मतिथिका इष्ट लिखा वा देखा होगा इन्होंने यह जाना कि सब बड़े बड़े आदमियोंका पत्रे में नाम लिखा जाता है । वही संस्कार पुस्तक लिखते भी उभर आये होंगे वा यह वाक्य याद आगया होगा । "पतड़ा बांचै वेद विचारै विप्पर है उरमान्नी । सन्त वचन रैदास पुकारै सुण चेल्ला सुर ज्ञान्नी ॥ वेद विचारया विरमा मरिगो चारों वेद कहाणी । जगके हालका पतड़ा झूंठो कहै सन्त न्यूं बाणी," । २ रामायणके पत्रोंकी सुग्रीव बन्दरकी कथा सुनी होगी तभी तो तिथिपत्रोंमें बादशाह सिकन्दरकी कथा बूझते हो ? भला आजकल तिथिपत्रोंमें जब अंग्रेज़ोंका ही हाल नहीं लिखा जाता तो तिथिपत्रोंमें पूर्व राजादिका वर्णन क्यों होता । ब्राह्मणोंके पास बहुत पुस्तकें होती हैं तिथिपत्रसे कथा नहीं सुनाई जाती परन्तु आपको क्या पत्रे ही का दर्शन हुवा है ? ॥

पादरी साहब ! ब्राह्मणोंके तिथिपत्रमें नहीं किन्तु नित्य पढ़नेके सङ्कल्पमें लिखा है जिससे सृष्टि तथा वेदोंका अनादित्व सिद्ध होता है जो सब हिन्दू नामधारी उच्चजाति मात्रके समस्त जन सुनते सुनाते हैं जिनके घर ब्राह्मणों को जानेसे परहेज़ नहीं है सब ही जानते हैं यदि खड्गसिंहजी भी किसी उच्च हिन्दुकुलसे ईसाई हुवे होंगे तो सङ्कल्प सुना ही होगा उसमें सदाकाल से वैदिक कर्मोंके कर्त्ता उच्चारण करते कराते हैं कि "वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलियुगस्य प्रथमचरणे आर्य्यावर्त्ते पुण्यक्षेत्रे" इत्यादि ॥

अर्थ—यह सातवां वैवस्वत मनु है उसमें यह २८ वां कलियुग है प्रथम चौथाईवां चरण है । कलि ४३२००० वर्षका होता है प्रथम चौथाईमें से ४९९७ वर्ष व्यतीत हुवे हैं ॥ इसमें कालिदास महाकविका प्रमाण है विक्रम सं० २४ के लिखे ज्योतिर्विदाभरणमें कहा है:—

> वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौ सम्मिते ।
> मासे माधवसंमितेऽत्र विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥१॥

ज्योतिर्विदाभरण शेषाध्याय—

अर्थात् कलियुगके ३०६७ वर्ष वीते जब मैंने (कालिदासने) यह ग्रन्थ बनाया है सो अब विक्रम संवत् १९५४ है जब २४ ही था इस हिसाबसे यह

श्लोक १९३० वर्षका बना है इसमें ३०६७ और मिलानेसे ४९९७ वर्ष होचुके हैं॥ इसी प्रकार सिद्धान्तशिरोमणिमें कहा है जिसके गोलाध्यायादिमें वह बातें लिखी हैं जो अंग्रेज़ोंकी बड़ी खोजसे हाथ लगीं हैं जिनकी सत्यता प्रकट होने पर बायबिलानुसार दुनियांकी उत्पत्ति माननी अंग्रेज़ोंने छोड़ दई है॥ सि०शि०म०:- याताःषण्मनवो युगानि० इत्यादि देखो ऐतिहासिक नि० प्रथमावृत्ति पृ०८ पं०१। हम आपके मतकी ममतावाले देशजन्यकी ही साक्षी देते हैं जिन के ईसाई धर्मको आपने सीखा है॥ अमेरिकाकी प्रसिद्ध बुद्धिमती मेडमवि-लेविटस्की मेमसाहिबाने अपने "रेक्रैट डाक्टर्न" जिल्द २ पृ०६९ में लिखा है कि आर्य्यलोग सृष्टिकी आदि और वेदोंके प्रकाशसे आज तक विद्याके द्वारा बराबर लेखा करते कराते लिखते लिखाते चले आये हैं जो सम्पूर्ण आर्य्या-वर्त्तमें यथावत् प्रचरित है किसी प्रकारका जिसमें विरोध नहीं। यह साक्षी उ-दाहरण सहित दी है॥ तथा रावबहादुर पं०श्रीनिवासजीने भी इसीको स्पष्ट प्रकाशित किया है। रिसाला थीयोस० मास नवम्बर १८८५ देखो॥ क्या अब भी संतोष नहीं हुवा? मेमसाहबके भी बयानसे!॥

आगे पृ० १३ पं० १८ से पृ० १४ पं० ४ तक लिखते हैं कि बुद्ध जी जोकि बड़े प्राचीन और अत्यन्त नामी बुद्धिमान् मतप्रचारक आचार्य्य हुये हैं वह अपने बौद्धशास्त्र अध्याय२ सू०१ में लिखते हैं कि वेदोंके समदका प्रमाण ठीक नहीं है और उनमें परमेश्वरके कुछ चिन्ह नहीं हैं और उनकी बातें बुद्धिविरुद्ध हैं इसकारण वह ईश्वरीय वाक्य नहीं होसक्ते। इस पर आर्योंका यह उत्तर हमने मान लिया कि बुद्ध वेदविरोधी थे पर यह सिद्ध नहीं होता कि बुद्धजी के-वल झूठही झूठ कह गये हैं। इस कारण आर्य्योंका यह उत्तर ठीक नहीं है॥

उत्तर-वाह पादरी सा० मुकद्दमोंमें जैसे बहुत लोग गवाहोंको उत्तमोत्तम भोजन कराते और उनकी योग्यता जताते हैं इसी प्रकार अनीश्वरवादी (नास्तिक) बुद्धको बड़े सुविशेषणोंसे सज्जित किया है सोतो जाना परन्तु बौद्धों व आर्य्योंकी अदावत अत्यन्त प्रसिद्ध है। आर्य्योंके विरुद्ध यह गवाही कुछ भी कार्य्यजनक नहीं है नास्तिक लोग वेदविषयमें निन्दा करते ही हैं जैसा कि-" त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः " और यदि आप इनके वचनोंको प्रमाण धर वेदका आधुनिकत्व सिद्ध करेंगे तो मतप्रचारक मुहम्मद सा० के कथनानुसार अब बायबिल भी ईश्वरका मंसूख़ होचुका है। यदि ऐसे ही मतप्रचारकोंकी गवाही पर दावा ख़ारिज होजाय तो गुरुनानकजीके

मतसे और फिर अब स्वामी दयानन्दसर०जीने भी तो सत्यार्थप्रकाशमें सब मतोंका खण्डन लिखा ही है तदनुसार समस्त मत और आपका ईसाई मत भी खण्डित होगया फिर क्यों पुस्तक लिखते हो। "आमोदेनैव कस्तूरी शपथेन न भाव्यते „ कस्तूरी निज सुगन्धसे ही वासित होती है शपथ (कसम) से नहीं जानी जाती। "सत्यमेव जयते नानृतम्" फिर आर्य्योंका कथन कि बुद्ध वेदविरोधी थे यह उत्तर ठीक क्यों नहीं। आप जानते हैं कि बुद्धका ईश्वर ही पर विश्वास नहीं फिर ईश्वरकृत वेद पर कैसे हो यह तो वही बात है कि चार पाये होनेसे चारपाई नाम ठीक नहीं अथवा क्योंकि इसके शत्रु इसकी बुराई करते हैं इससे यह बुरा ही है ॥

आगे इतिहाससे साबित किया है कि वेद प्राचीन नहीं हैं उसका भी वर्णन सुनिये—

पृ० १४ पं० ५ में लिखते हैं कि वेदोंकी अत्यन्त प्राचीनताके विषयमें आर्य्य लोगोंके प्रमाण और तर्कोंके विषयमें इतना ही कहना बस है कि वह समय जो आर्य्य लोग कहते हैं अनुमानसे विरुद्ध और इतिहाससे विरुद्ध है। यह समय उस वंशावलीके विरुद्ध ठहरता है जो कि वाल्मीकीयरामायणके बालकाण्डमें सीताके विवाहसमयमें गुरु वशिष्ठजीने राजा जनकको सुनाई है। तथा जनकके पुरोहित सदानन्दने दशरथको जनककी वंशावली ब्रह्मा और सूर्य्यमान और चन्द्रमानसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कतकतीर्थ पण्डितने अपनी पुस्तकमें बहुत ही प्राचीन इतिहासोंसे सङ्ग्रह कर व्याख्यान लिखा है। उस पुस्तकसे राजा शिवप्रसादजीने इतिहासतिमिरनाशकमें सङ्ग्रह किया है। कतकतीर्थ दयानन्दजीसे बहुत अधिक विद्वान् हुए हैं। वह कहते हैं कि ब्रह्माजीसे रामचन्द्रजी तक ५९ पीढ़ी हुई हैं। और रामचन्द्रजीसे राजा सुमित्र तक ५६ पीढ़ियां। सुमित्र विक्रमके समयमें हुवे हैं। यदि २५ वर्ष में सन्तान होना स्वीकृत हो तो लेखा करनेसे अब तक ४८१७ वर्ष होंगे वस यह वह समय है कि जबसे ब्रह्माजीने संसार रचा था। अब तक ४८१७ वर्ष बीते हैं। ब्रह्माजीसे कृष्णजी तक ६६ पीढी होती हैं रामचन्द्रसे ७ पीढी पीछे कृष्णजी हुए हैं। ब्राह्मण लोग अपनी युगव्यवस्थाके अनुसार आठ लाख वर्ष का अन्तर बताते हैं। परन्तु उनको प्रामाणिक करना बड़ा कठिन है कि नारद दुर्वासा परशुराम विश्वामित्र इत्यादि मुनि रामचन्द्र और कृष्णजी इन दोनों के समयमें क्योंकर हो सके हैं जैसा कि ऋषितरङ्गिणी और राजतरङ्गिणीमें

प्रमाण मिलता है कि ये दोनों एक समयमें थे ॥

उत्तर—पादरीसाहब बार २ ब्राह्मणोंका ही ममत्त्व और सब बातोंमें ब्राह्मणोंको जो लिखते हैं इसमें इनका गूढाशय यह है कि ब्राह्मण तो ईसाई होने ही नहीं परन्तु समयचक्रके फेरसे तथा कबीर आदि पंथोंने भी लोगोंको बहकानेके लिये यही उपदेश किया है कि ब्राह्मण बहकाते हैं। मूर्खोंके हृदयमें यह बात बहुत असर कर रही है सो ये भी बार२ यही दर्शाते हैं कि "ब्राह्मणोंके धर्मको हम क्यों मानें इससे ईसाई होनेमें हमारा धर्म नहीं छूटता यह धर्म तो ब्राह्मणोंका है जो कि छूटता है,,॥

उत्तर—हमको ऐसा विदित होता है कि पादरी जीने मिशनस्कूलकी किसी क्लासमें राजा शिवप्रसादकृत इतिहासतिमिरनाशक ही पढ़तीवार हेडमास्टरकी स्पीच सुनी होगी वाल्मीकीयरामायणको यदि आप प्रामाणिक मानते हैं तथा कलकतीर्थ पं० को भी स्वामी दयानन्दसरस्वतीजीसे बहुत अधिक विद्वान् मानते हैं तो इसी वाल्मीकीयरा०में " दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च " इत्यादि श्लोकोंको भी क्यों नहीं मानते तथा उस पुस्तकमें लिखित व्यवस्था पर आक्षेप ही करनेका साहस क्यों करते हैं । आप ही ऐसे गड़बड़ वंशावलीके प्रमाण देकर वेदोंको नवीन साबित करते हैं कि ऋग्वेदका आरम्भ ३०६२ वर्षसे हुआ और २४१७ वर्ष में समाप्त हुवा ऋग्वेद किसी एक का बनाया नहीं किन्तु ६४५ वर्षमें बना है क्योंकि आरम्भ रामचन्द्रजीके समयमें हुवा है क्योंकि मधुछन्दस विश्वामित्रके पुत्र थे उनका बनाया पहिला मन्त्र है फिर पाराशरका बताया अन्तका मन्त्र बताया है और व्यासजीका होना बुद्धसे पीछे बताया है क्योंकि व्याससूत्रोंमें बुद्धमतका वर्णन किया है। वाहरी बुद्धि ! भला साहब ६ सौ वर्ष पीछे अत्रिजी अष्टक ४ अ० ४ सूक्त ८५ से ८६ तक बनाने वाले आप मानते हैं देखो यही पुस्तक पृ० ३३ पं० ६ और अत्रिगोत्रके पहिले ही स्त्री पुरुष बताते हो जैसा कि ऋग्वेद अ० ३ मण्डल ६ अ० ८ सू० १ से लेकर अष्ट० ४ अ० १ सू० २० तक उसके गोत्रियोंने बना दिये और वहीं उसी अध्याय सू०२८को विश्ववरा नामकी अत्रिगोत्रकी स्त्रीने बनाया। भला ! गोत्र आगेको होता है कि पीछेको ? यदि आप भी किसी उच्च हिन्दू कुलमें हुवे हैं तो अवश्य जानते होंगे कि गोत्र पूर्वज ऋषिके नामसे ही चलता है। फिर आप ही देखो पृ०३०। फिर आप ३४ पृ० में भाग मण्डल ६ अ०८ सू० ५३ से ६१ तक भारद्वाजकृत बताते हो सो क्या भारद्वाजका रामचन्द्रजीके समयमें होना

नालिकाविष्कार ॥

अर्थात् तोप बन्दूक बारूद (शतघ्नी भृशुण्डी अग्निचूर्ण) का आविष्कार (ईजाद) प्राचीन आर्य्यावर्त्तमें ही ऋषि मुनियोंने किया था और "इसको जर्मनीके मांकवरथोलडस् शवाटरनने सन् १३२० में सबसे प्रथम आविष्कृत किया," यह विचार तब तक ही है जब तक इस पुस्तक द्वारा सर्वसाधारण ने शुक्रनीति, नीतिप्रकाशिका और महाभारत तथा डाक्टर गस्टैनओपर्ट वेकन साहबके "विसीसीट्यूड्स् आफ़ थिंगज़," मेजर जेनेरल वाईल आदि के प्रमाणोंसे विभूषित इस पुस्तकको नहीं देखा है। मूल्य)॥।

ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः ॥

ऐसा और इतना संक्षेपसे अब तक कोई नहीं छपा! शब्दप्रमाण द्वारा, "मन्त्र ब्राह्मण दोनों वेद हैं वा क्या,"? इत्यादिका निर्णय ७१ प्रमाणोंसे किया है। इसमें अथर्ववेद, तैत्तिरीय, शतपथब्रा०, साङ्ख्य, आपस्तम्ब, प्रातिशाख्य, कात्यायन, बौधायन, परिशिष्ट, मीमांसा, मनुस्मृति, ऐतरेयब्रा०, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, कौशिकसूत्र, अमरकोश, लघुशब्देन्दुशेखर, निरुक्त, सायणभाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, वेदान्तसूत्र, न्यायदर्शन, तैत्तिरीयआरण्यक, पिङ्गलसूत्र, चरणव्यूह, न्यायविस्तर इन २७ ग्रन्थोंसे ७१ प्रमाणोंका सङ्ग्रह किया है। श्री-स्वामीदयानन्द सरस्वतीजीके भूमिकाके वेदसंज्ञा विषयक लेखका खण्डन महन्त ब्रह्मकुशलने किया था उसके उत्तरमें यह पुस्तक मैंने परिश्रमसे बनाया है॥ मूल्य -)॥।

दयानन्दतिमिरभास्करकी समीक्षा ॥

पं० ज्वालाप्रसाद मुरादाबाद निवासीने "दयानन्दतिमिरभास्कर," नामक ४०० पृष्ठका पुस्तक छपाया है इसमें सत्यार्थप्रकाशका मन माना खण्डनाभास किया है। यद्यपि यह पुस्तक वेदादिके वाक्योंका प्रमाणशून्य मनघडन्त अर्थ करके पूरा किया है तथापि जो लोग संस्कृत नहीं जानते उनके चित्तमें आर्य्यधर्मकी ओरसे अश्रद्धा उत्पन्न करनेका हेतु होजाता है। इस कारण मैंने इसके खण्डनका प्रारम्भ किया है। ३५ कापियों का अग्रिम मूल्य भी आगया है और ९२ कापीके ग्राहक हुवे हैं परन्तु पुस्तक अनुमान ३५० वा ४०० पृष्ठका होगा इस लिये धनव्यय अधिक है ग्राहक महाशय इसका १।) अग्रिम भेजकर सहायता दें तो यह ग्रन्थ शीघ्रही उनके पास पहुंचेगा ॥

१ लघुकौमुदी भाषाटीका सहित २)	न्यायदर्शनवात्स्या० जिल्द सहित १।)
२ " कपड़ेकी जिल्द सहित २।)	५ वैशेषिकदर्शन प्रशस्तपाद भाष्य ॥)
३ सुश्रुत मूल १॥।)	६ भर्त्तृहरिनी०वैराग्यशतकभा०टी०।)॥
४ न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्य सहित१)	दशोपनिषद् बड़े मूलकपड़ेकीजिल्द१।)

८ सीताचरित्र नावल (हिन्दी प्र०) ।।।)
९ पं० गुरुदत्त एम० ए० का ईशोपनिषद्भाष्य सजिल्द (नागरी) ।)
१० कात्यायनसूत्र पूर्वार्द्ध ।।।)
११ वेश्यानाटक ।)॥
१२ आर्य्यसमाजके नियम ≡)। सैंकड़ा
१३ व्याख्यानका विज्ञापन ≠) सैंकड़ा
१४ दमयन्तीस्वयंवरनाटक ≡)
१५ धर्मप्रचार)॥
१६ वायुमण्डल)।
१७ हारमोनियमगाइड ।≠)
१८ वैदिकट्रैक्ट अंग्रेज़ी ३ का सैट -)
१९ सत्यदर्पण ≠)
२० ज्योतिषदर्शन ≠)
२१ व्याख्यानसागर ॥)
२२ योगानुसार सन्ध्याविधि ≡)
२३ बालोपकारीशिक्षा ≠)
२४ दानकरणविधि ≠) ≠)
२५ पदार्थविद्यासार ॥)
२६ सभाप्रसन्न ।)
२७ स्वामीजीका चित्र (रङ्गीन) -)॥
२८ पं० गुरुदत्तका चित्र (रङ्गीन) -)॥
२९ सादेचित्र दोनों प्रत्येक -)
३० पं० लेखरामजीका चित्र ॥-)
३१ खेतीकीविद्याकेमुख्यसिद्धान्त ॥≠)
३२ रामायणका आह्लखण्ड)।
३३ ईशादि ७ उपनिषद् भाष्य ३)
३४ गीताभाष्य २।)
३५ गणरत्नमहोदधि १॥)
३६ अष्टाध्यायी मूल ≡)
३७ भर्तृहरिनीतिशतक ≡)
३८ ऐतिहासिकनिरीक्षण(पं०लेखराम≠)
३९ कुमारीभूषण -)
४० विवाहव्यवस्था ≠)
४१ मांसभो० प्रथम भागका खण्डन-)॥ द्वितीय भाग ≠)॥ तृतीय ≡)।
४२ आयुर्वेदशब्दार्णव ॥≠)
४३ जीवनयात्रा ≡)
४४ यमयमीसूक्त भाष्य ≠)
४५ न्यायदर्शन मूल ≡)
४६ अबलाविनय ≡)॥
४७ अङ्कगणितार्य्यमा ≡)॥
४८ प्रबन्धार्कोदय ।-)
४९ नित्यकर्मविधि)॥
५० भूमिकाविनाजिल्द२।।)सजिल्द२।।-)
५१ पञ्चमहायज्ञविधि ≡)।। „ ।-)॥
५२ उणादिकोष ।।≠)
५३ निरुक्त १)
५४ संस्कारविधि १।) सजिल्द १॥)
५५ निघण्टु ।≠)
५६ शतपथ १ काण्ड ॥)
५७ यजुर्वेद भाष्य २४)
५८ वर्णोच्चारणशिक्षा -)
५९ आर्य्यसमाजके नियमोपनियम)।
६० हवनमन्त्र)।
६०। संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥।
६१ „ द्वितीय पुस्तक -)।
६२ „ तृतीय „ ≠)॥।
(चतुर्थ १ मासमें अवश्य तैयार होगी)
६३ चाणक्यनीतिसार भाषाटीका -)।
६४ प्रश्नोत्तररत्नमाला भाषाटीका और आर्य्यविवाहमङ्गलाष्टक -)
६५ आर्य्यचर्पटपञ्जरी)।
६६ भजनेन्दु -)
६७ महन्त ब्रह्मकुशलके उत्तरमें ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दुपरागे प्रथमोंशः ≠)॥
६८ शास्त्रार्थकिराणा ≠)

पता—पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश—मेरठ

ओ३म्

वेदप्रकाश ॥

वेदप्रकाशो वेदस्य गौरवं सुप्रकाशयेत् ।
तद्वारकतमोराशिं समन्ताच्च विनाशयेत् ॥

—*०*—

वेदोक्त धर्म प्रतिपादन और तद्विरुद्धमत-
निराकरणविषयक

मास (६)	मासिकपत्र	(१) वर्ष

जो

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक और प्रकाशक द्वारा तदीय
स्वामियन्त्रालय मेरठमें मुद्रित और प्रकाशित होता है

संवत् १९५४ ॥ ७०७ ॥ ३० । ६ । १८९७ ई०

१—वार्षिक अग्रिम मूल्य १) पश्चात् १॥) लिया जायगा परन्तु ३ मासके भीतर मूल्य अग्रिम समझा जायगा। मेरठमें अग्रिम ॥।) पश्चात् १)

२—नमूनेमात्रका अंक जिन सज्जनोंके पास भेजा जायगा यदि वे ग्राहक होनेको पत्र न लिखेंगे तो दूसरी कापी न भेजी जायगी इस कारण नाम, ग्राम, डाकघर, ज़िलाके पते सहित पत्र अवश्य लिखें।

३—सर्वसाधारणके समाचार [ख़बर] इसमें नहीं छपेंगे।

४—विशेष उपकारक पुस्तकोंकी समालोचना भी टैटिलपेज पर छपेगी।

५—विज्ञापनकी बंटाई एक बारमें २॥) लीजायगी और विज्ञापन पर "वेदप्रकाशका क्रोडपत्र" यह लिखा होना चाहिये।

उपनिषद्भाष्य ॥

हमने कई सुहृदोंकी सम्मति और विशेष करके सद्धर्मप्रचारक जालन्धरके प्रस्ताव पर उपनिद्भाष्यके ४ पेज वेदप्रकाशमें ३०० ग्राहक होजाने पर बढ़ाने का विज्ञापन किया था। आज २६० ग्राहक हैं जितने ही शीघ्र ४० ग्राहक होंगे उतना ही शीघ्र यह शुभारम्भ होगा ॥ तु० रा०) २७। ६। ९७

"दयानन्दतिमिरभास्कर की समीक्षा"

इस पुस्तक की पाठकगण बहुत उत्कण्ठा रखते हैं इसलिये जुलाई मास में हमारा विचार है कि जितना छपजावेगा उतने (अनुमान ५।६ समुल्लास) का एक भाग उन ग्राहकों की सेवा में भेज देंगे जिन्हों ने अग्रिम १।) भेज दिया है। इस से हम को न्यूनधन के कारण छपाने में सुगमता और ग्राहकों को पढ़कर उत्साह होगा और हमारे पास जो शीघ्रताविषयक शतशः पत्र आते हैं उन की शान्ति होगी। अतः अब मूल्य भेजना आरम्भ करदें ॥

वे०प्र०मूल्यप्राप्तिस्वीकार २६। ६। ९७ तक

१८९ ला० बांकेलाल तिलहर १)
१०० बा० कालीचरण रायबरेली १॥)
१०१ बा० लक्ष्मीनारायण „ १॥)
४७ आर्य्यसमाज „ १॥)
२५० पं० जानकीशरण „ १)
२४९ पं० सूर्य्यप्रसाद शर्मा „ १)
८७ ला० बनारसीदास सा० मेरठ १)
७३ ला० माधवप्रसाद चूरू १)
२२७ पं० गङ्गाप्रसाद रईस आगरा १)
१७८ पं० बुलाकीराम शास्त्री ॥)
२५१ सोतीशङ्करलाल जी बिजनौर १)
२३३ आर्य्यसमाज सीखड़ १)
२४४ पं० सहदेवप्र० पुखरायां १)
११३ बा० मुत्सद्दीलाल रुड़की १)
२५३ ला० अवधविहारीलाल धमरवां १)

उपदेशक पाठशाला मेरठ ॥

१४।-)। पूर्व शेष।

२।॥) भोजनार्थ रामस्वरूप व केशव छात्रको १।) इन्धन। शेष१०।-)॥

धार्मिक शिक्षा की उन्नति और उपदेशकों द्वारा देश के सुधार के उत्साहियों को पाठशाला की सहायता कर के पुण्य का भागी बनना चाहिये ॥

तुलसीराम स्वामी—स्वामि प्रेस—मेरठ

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { ६ मास

ईश्वर और उस की प्राप्ति ॥

महाशयो ! आप जानते हैं कि जिस विषय को वर्णन करने के लिये आज मैं आप के सम्मुख होता हूं ऐसा आवश्यक गम्भीर कठिन और साधारणतया समझ में आने को अयोग्य है जिस को सब लोग जानते हैं। संसार भर के मतमतान्तरों के उत्पन्न और प्रचरित होने का कारण मुख्य करके ईश्वरविषयिणी अनभिज्ञता है। यही नहीं, किसी भी मत को न मान कर निरीश्वरवादी हो, उद्दण्डता के प्रचार का कारण भी यही है। आप यह भी जानते ही हैं कि वर्त्तमान काल में अन्य विद्याओं की खोज प्रादुर्भाव और उन्नति में इतना अधिक प्रयत्न हो रहा है जिस से इस आत्मविद्या का नाममात्र संसार में रह गया है। और लोग सांसारिक पदार्थों के ज्ञान की खोज में ऐसे लिप्त होगये हैं कि प्रतिदिन नये नये विज्ञान का आविष्कार करते २ न तो अन्त आया न आवेगा और इसी प्रकार जड़ पदार्थों की खोज में रहते २ आत्मा अपने परमात्मा के स्वरूप को भूल कर उस से इतना दूर होगया है मानो इस को कभी पूर्व भी आत्मज्ञान न था। और यह भाव इतना बढ़ गया है कि जिस किसी व्याख्यान में जाइये आत्मविषयक संशय ही पाइयेगा और जिस समाज में जाइये इस विषय में शून्यप्रायता पाइयेगा। बड़े २ नामधारी, सभाओं के प्रधान, देश के हितैषी, धर्मोपदेष्टा और बाहर से भक्त बुव लोगों में भी प्रायः इस ज्ञान का अभाव नहीं तो संशय अवश्य पाइयेगा। महाशयो ! यह विषय ऐसा है जिस के विषय में आन्दोलन होकर भूमण्डल में ईश्वर का विश्वास श्रद्धा भक्ति आदि फैलने से, सूखे प्राकृत ज्ञान की अन्धाधुन्ध प्रवृत्ति से आज कल जो घोर वैमनस्य, स्वार्थ, विषयलोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि

की वृद्धि होकर संसार की जातियां एक दूसरे की शत्रुता में बढ़ चढ़ कर चलने में अपना सौभाग्य समझती हैं, यह दुर्दशा दूर होकर, एक ईश्वर की यथार्थ भक्त प्रजा—परस्पर एक दूसरे को भ्रातृभाव से देखती हुई, सर्वदुःखों से निवृत्त हो हुवा कर, धर्म अर्थ काम के पश्चात् मोक्ष को भी प्राप्त हो सक्ती है ॥

मैं इस ईश्वरविषयक व्याख्यान के ४ विभाग करूंगा १—ईश्वर का अस्तित्व २—उस की प्राप्ति का उपाय, अप्राप्ति के कारण ३—प्राप्ति का फल ४—स्तुति प्रार्थना उपासना के फल ॥

१—ईश्वर का अस्तित्व ॥

जिस प्रकार समस्त संसार के पञ्चतत्वात्मक स्थूल पदार्थों को पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से विषय (फ़ील—महसूस) किया जाता है और परमाएवादि सूक्ष्म पदार्थों को बुद्ध्यादि अन्तरिन्द्रियों से विषय किया जाता है, ठीक इसी प्रकार आत्मा से परमात्मा को विषय किया जाता है । परन्तु "विषय" शब्द इन्द्रियों के विषयों में रूढ़ होगया है इस लिये परमात्मा को विषय करना विषय शब्द से व्यवहार में नहीं आता प्रत्युत परमात्मा के साथ विषय शब्द लगाना एक प्रकार की अयुक्त चेष्टा (गुस्ताख़ी) है इस कारण परमात्मा के लिये विषय शब्द के स्थान में "अनुभव" शब्द का प्रयोग कर के काम चलाते हैं। आप पूछेंगे कि "काम चलाते हैं" इस वाक्य में कुछ विशेष ध्वनि है? तो बताइये। हां, इस में अवश्य ध्वनि है और वह ध्वनि यह है कि थोड़ा और गम्भीर विचार से देखाजावे तो वहां, अनुभव शब्द भी अपने ठीक प्रसिद्ध अर्थ से ठौर नहीं पाता क्योंकि—

"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

यथार्थ में वह मन और वाणी से परे है इसलिये ठीक २ किसी शब्द का भी व्यवहार उस में नहीं हो सक्ता तथापि जैसे अन्य गुड़ आदि पदार्थों का स्वाद भी जिस रसना से ग्रहण किया जासक्ता है उस के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों का सामर्थ्य नहीं कि स्वाद को बता सकें तथापि वाणी द्वारा अपने सामर्थ्य भर उद्योग किया जाता है कि गुड़ वा मिश्री का स्वाद इस प्रकार का है। यद्यपि गुड़ वा शहद के स्वाद से ठीक मिलता हुवा किसी भी अन्य मिष्ट पदार्थ का स्वाद नहीं इसलिये किसी अन्य पदार्थ की उपमा आदि से भी उसे नहीं समझा सक्ते क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने तुल्य आप ही है एक

पदार्थ की दूसरे पदार्थ से सर्वांश में तुल्यता हो ही नहीं सक्ती । इसी प्रकार परमात्मा की इस से भी अधिक किसी पदार्थ के साथ तुल्यता असम्भव है । तथापि उपमा अनुमानादि के द्वारा जैसे एक अनभिज्ञ पुरुष को शहद आदि के स्वाद के कुछ २ ज्ञान का कठिन से सङ्केत (इशारा) किया जाता है और तब भी वह रसना इन्द्रिय से ही उसे ठीक विषय करता है इसी प्रकार कठिनता से ईश्वर की ओर भी किन्हीं न किन्हीं शब्दों से संकेत किया जाता है और ऐसा करने से जिज्ञासु के हृदय में जब प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न कराई जाती है तब वह शनैः २ सांसारिक अन्य पदार्थों में वैराग्य उत्पन्न कर के ईश्वरविषयक ध्यान का अभ्यास बढ़ाता हुआ अत्यन्त चित्त को तत्प्रवण (उस की ओर झुका) करके उसे अनुभव करता है । तब यह वाक्य ठीक चरितार्थ होता है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥

अन्वयः—अयमात्मा, प्रवचनेन लभ्यो नास्ति, न मेधया, न बहुना श्रुतेन लभ्यः; किन्तु यमेव एषः वृणुते स्वीकरोति कृपया, तेनैव लभ्यः तस्य एषः आत्मा स्वां तनूं निजां तनूमिव वृणुते स्वीकरोति ॥

यह आत्मा केवल प्रवचन (किसी के बताने) से नहीं जाना जाता, न केवल बुद्धि से, न बहुत पढ़ने से । किन्तु जो पुरुष अपने आत्मा से उस का श्रद्धा भक्ति से वरण ग्रहण करता है उसे परमात्मा ऐसे स्वीकार करके जैसे जीवात्मा देह को कृपया अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं ॥ अर्थात् आत्मा को ही साक्षात् परमात्मा का अनुभव होता है किसी मन वाणी इन्द्रियादि साधन से नहीं हो सक्ता और होना चाहिये भी नहीं क्योंकि प्राकृत इन्द्रियां प्राकृत जगत् के विषय करने ही में काम दे सक्ती हैं । प्रकृति से परे सूक्ष्म चेतन परमात्मा के अनुभव करने में प्राकृत इन्द्रियां कैसे काम दे सक्ती हैं ? किन्तु अप्राकृत आत्मा ही परमात्मा का अनुभव कर सक्ता है । लोक में भी जब किसी सुनार की दूकान पर वा अन्यत्र किसी वस्तु के पकड़ने के साधन चिमटा संडसी आदि पर दृष्टि डालो तो सदा यही नियम देखोगे कि स्थूल वस्तुओं के पकड़ने के साधन स्थूल और सूक्ष्म सुनहरे टुकड़े पकड़ने के साधन भी वैसे ही सूक्ष्म हुआ करते हैं । इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे बाह्य विषयों को ग्रहण करें परन्तु आत्मगत को नहीं । जैसे आंख दूरस्थ पदार्थ को देखती है परन्तु आंख में

पड़े तिनके को आंख नहीं देख सक्ती। इसी प्रकार गरमी शरदी को त्वचा विषय करती है परन्तु त्वचा में रमी हुई गरमी वा शरदी को त्वचा नहीं पहचानती। यही दशा अन्य इन्द्रियों की भी है। परमात्मा इन्द्रियों और मन तथा आत्मा में भी व्यापक है इस लिये इन्द्रियां और मन उसे ग्रहण नहीं कर सक्ते। यद्यपि किसी इन्द्रिय से भी उपलब्ध नहीं होता तथापि हमारा आत्मा उसे उपलब्ध कर सक्ता है। आप पूछेंगे कि क्या कभी परमात्मा के विषय में हम को ऐसी प्रतीति होने लगती है जैसी कि घोड़े को देखकर "अश्वोस्ति" यह प्रतीति होती है ? उत्तर यह है कि क्या कभी एक पदार्थ की प्रतीति दूसरे पदार्थ की प्रतीति के तुल्य किसी को हुई है ? क्या "गौरस्ति" गौ है। इस प्रतीति के तुल्य ही "अश्वोस्ति,, की प्रतीति किसी को होती है ? यदि होती है तौ मिथ्या प्रतीति है क्योंकि "गौरस्ति,, और "अश्वोस्ति,, ये दो प्रतीतियां एक दूसरे के समान हों तौ गौ को देखकर अश्व की प्रतीति वा अश्व को देख कर गौ की प्रतीति होने लगे और ऐसा होवे तौ क्या यह विपरीत वा मिथ्या प्रतीति नहीं है ? इसी प्रकार यदि "अश्वोस्ति,, के तुल्य ही "ईश्वरोस्ति, ,की प्रतीति होवे तौ वह भी मिथ्या प्रतीति ही होगी। परन्तु आप का तात्पर्य्य यह होगा कि जैसे "अश्वोस्ति,, में अस्तित्व में सन्देह नहीं रहता वैसे "परमेश्वरोस्ति,, यहां भी ऐसी प्रतीति न हो जैसी "अश्वोस्ति,, में है तथापि अस्तित्व सामान्य तौ होगा ? अर्थात् "है" यह प्रतीति तौ ईश्वर में भी ठीक ऐसी ही निर्भ्रम होने लगेगी जैसी घोड़ा है में "है" प्रतीति होती है ? हां, यह ठीक है; निस्सन्देह ईश्वर का अस्तित्व वैसे ही निस्सन्देह भान होगा जैसा अन्य पदार्थों का। परन्तु वह क्यों सब को भान नहीं होता यह बात मैं आगे उस प्रकरण पर जहां "उस की प्राप्ति,, का वर्णन होगा, करूंगा। यहां केवल यह वर्णन करना है कि क्या केवल जड़ प्रकृति के अन्धान्धुन्ध परिवर्तनों और चेष्टाओं का यह परिणाम वा फल हो सक्ता है ? जो कि आप एक विधिपूर्वक वा नियमानुसार जगत् की अवस्था देखते हैं ? कदापि नहीं। अथवा प्रतिक्षण परिणामी जगत् को आप सदाकाल से स्वयमेव एकरस मान सक्ते हैं ? जिस से स्रष्टा के मानने की आवश्यकता न रहे ? नहीं। जब जगत का नाम " जगत् " ही इस के अर्थ पर विचार करने से यह बतलाता है कि जगत् एकावस्था में स्थिर नहीं रह सक्ता किन्तु "गच्छति इति जगत्" निरन्तर जाता है इस लिये "जगत,, कहाता है। और जगत् का एक २ अवयव

आर्य्यतत्त्वप्रकाश १ भाग का खण्डन पृ० ७८ से आगे

वेदों के विरुद्ध होने से निर्मूल है। वेद १०० वर्ष की ही आयु बतलाते हैं इत्यादि ॥

उत्तर—आर्य्य लोग वा स्वामी दयानन्दसरस्वती जी किसी युग के लिये भी लाखों वर्ष की अवस्था नहीं मानते। क्या आप बतासक्ते हैं कि किसी आर्य्यसमाजस्थ वा स्वामी दया० जी महाराज ने किसी आर्ष ग्रन्थ के सहारे से लाखों वर्ष की आयु होना माना लिखा वा कहा है ? कभी नहीं। हां, स्वामी जी ने " त्र्यायुषं जमद० " इस वेदमन्त्र से यह तौ अवश्य सिद्ध किया है कि मनुष्य योगाभ्यासादि के द्वारा आयु को त्रिगुण कर सक्ता है अर्थात् यदि १०० वा १२० वर्ष परमायु माने तौ त्रिगुण करने से ३०० वा ४०० के समीप आयुर्वर्ष आते हैं। यही मनु का तात्पर्य्य है इस से अधिक नहीं। यही आर्य्य लोग मानते हैं ॥

पृष्ठ १९ से पृष्ठ २० पं० ९ तक तौ पादरी साहब ने व्यर्थ उसी लेख को दोहराया है जो उन्हों ने ११५ पीढ़ी कल्पना करके और अपनी ओर से २० वर्ष में सन्तानोत्पत्ति मान करके ४४४२ वर्ष सृष्टि की उत्पत्ति से विक्रमादित्य के संवत् १९४२ तक माने हैं इस का उत्तर हम ऊपर लिख चुके हैं जिस प्रकार वह वंशावली जो पादरीसाहब ने लिखी है अपूर्ण है और केवल प्रसिद्ध पुरुषों की वंशावली है किन्तु अनुक्रम से नहीं है तब उस वंशावली के आधार पर निकाले हुवे ४४४२ और ४८१७ व ७६९२ वर्ष सर्वथा निर्मूल हैं ॥

फिर पृष्ठ २० पं० १० से लिखते हैं कि सब वेदों में ऋग्वेद ही प्राचीन है अन्य वेदों में तौ बहुत स्थानों में ऋग्वेद से ही मन्त्र लिये गये हैं। इत्यादि ॥

उत्तर—पादरी साहब! क्या आप का वचन ही प्रमाण मान लिया जावे वा इस में कोई प्रमाण भी है कि ऋग्वेद ही सब वेदों से प्राचीन है ? यदि कोई प्रमाण है तौ बताइये नहीं तौ निर्मूल लिखने का कोई फल नहीं। जब कि सृष्टि की आदि में हुवे ब्रह्मा ऋषि ही चारों वेदों के ज्ञाता थे तब वेदों का भिन्न २ समयों में बनने का वर्णन निर्मूल नहीं तौ क्या है ?। और ऋग्वेद से जो मन्त्र हैं कोई २ वैसा ही मन्त्र अन्य वेदों में भी पाया जाता है इतने से ऋग्वेद के पश्चात् अन्यों का बनना सिद्ध नहीं होता। क्या जिस प्रकार ऋग्वेद से अन्य वेदों में लिया जाना आप मानते हैं उसी प्रकार अन्य वेदों से ऋग्वेद में लिया जाने की कल्पना नहीं होसक्ती ? वास्तव में

जिस प्रकार एक ही अक्षर जब २ उस का प्रयोजन पड़ता है तब २ वारवार एक वा अनेक पुस्तकों में आता है और उसी प्रकार एक ही पद जब २ जहां २ आवश्यक समझा जाता है वारंवार लाया जाता है इस से यह फल नहीं निकलता कि वह २ अक्षर वा पद पूर्व से ही लिया गया। इसी प्रकार एक ही मन्त्र जब २ जहां २ आवश्यक हो लिखा बोला जासक्ता है और मन्त्र क्या किन्तु सूक्त का सूक्त भी प्रयोजन उसी प्रकार का आजाय तो लिया जासक्ता है। जैसे यजुर्वेद के अध्याय ३२ में ३ मन्त्र यह हैः—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः॥

फिर ३ मन्त्रों की प्रतीकें रखी गई हैं किः—

हिरण्यगर्भ इत्येषः यह प्रतीक "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे" इत्यादि मन्त्र का है और "मामाहिंसीदित्येषा"। यह ऋग्वेदस्थ ऋचा का प्रतीक है और "यस्मान्न जात" इत्येषः। यह भी यजुर्वेद के मन्त्र का ही प्रतीक है॥ तत्सवितु:० यह गायत्री मन्त्र १ यजुर्वेद में ही प्रकरणानुकूल ३ वार आया है अ० ३ मं० ३५ अ० ३० मं० २ अ० ३६ मं० ३

इस प्रकार सब वेदों का प्रकाशक एक ही परमात्मा जहां २ जिस २ पद मन्त्र वा सूक्तादि की अर्थ सम्बन्ध से आवश्यकता है वहां २ उस २ को उसी प्रकार वारंवार लाता है। जिस प्रकार एक ही लेखक जहां २ जिन २ अक्षर, पद, वाक्य वा विषय की आवश्यकता होती है वारंवार लाता है। इसलिये इस से यह फल निकालना भूल है कि ऋग्वेद पहिला और अन्य वेद उस के पश्चात् प्रकाशित हुवे॥

पृष्ठ २० पं० १६ से पादरी साहब लिखते हैं कि ऋग्वेद का पहिला मन्त्र विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दस् का बनाया है और अन्त का मन्त्र अघमर्षण ऋषि का बनाया है इसलिये ऋग्वेद का आरम्भ मधुच्छन्दाः के और समाप्ति अघमर्षण के समय में हुई। बीच के मन्त्र अनेक अन्य ऋषियों के बनाये हुए हैं जिन में से बहुतों का सूचीपत्र पुस्तक के अन्त में छपा है उस सूचीपत्र में भारद्वाज, अत्रि, वामदेव, विश्वामित्र, अगस्त्य, कश्यप, कण्व इत्यादि के नाम हैं॥

उत्तर—कात्यायन की उपक्रमणिका के अनुसार जो २ ऋषि उस २ मन्त्र के लिखे हैं वे २ वेद के मूल मन्त्र में नहीं आते किन्तु वे २ ऋषि उन २ मन्त्रों के द्रष्टा हैं, बनाने वाले नहीं। यह बात संस्कृत के किसी आर्ष ग्रन्थ में नहीं

लिखी कि वेदमन्त्रों पर जो ऋषि, देवता, छन्द, स्वर लिखने के साथ ऋषि लिखे हैं वे उन २ मन्त्रों के कर्त्ता वा रचने वाले हैं। यदि लिखी है तो किसी पुस्तक से प्रमाण देना चाहिये क्योंकि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुनः सिद्धिः ।

लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं । केवल " पादरीवाक्यं प्रमाणम् " तो नहीं हो सक्ता । आप को वा अन्य किसी को यह सन्देह न रहे कि उस २ ऋषि ने वेद के उस २ मन्त्र को रचा है इस लिये हम रामायण के कुछ श्लोक नीचे लिखते हैं जिन से यह सिद्ध होजायगा कि जिन ऋषियों को आप उन २ मन्त्रों का रचने वाला समझते हैं उन २ ऋषियों ने वेद समस्त पढ़े थे । यथा—

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगोतमः ॥५॥
जमदग्निर्भरद्वाजस्तेपि सप्तर्षयस्तथा ।
उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः ॥६॥
संप्राप्यैते महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ।
विष्ठिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः ॥७॥
वेदवेदाङ्गविदुषो नानाशास्त्रविशारदाः ॥८॥
महर्षयोवेदविदो रामं वचनमब्रुवन् ॥ १६ ॥ सर्ग १॥

ऊपर लिखे श्लोकों में जिन ऋषियों को वेदवेदाङ्ग का वेत्ता लिखा है आप अपने सूचीपत्र और उस के अन्त में उन को वेदों के किसी २ मन्त्र का बनाने वाला बताते हैं। ऐसे ही विश्वामित्रादि बहुत से ऋषियों ने चारों वेद उपवेद वेदाङ्ग पढ़े यह बात अत्यन्त प्रसिद्ध है । विश्वामित्र धनुर्वेद के पारङ्गत थे । जो धनुर्वेद वेदों के पश्चात् उन का सहकारी होने से उपवेद कहाता है । भला इस दशा में जब कि जिन २ ऋषियों का बनाया आप वह २ मन्त्र बताते हैं उन २ के पिता पितामहादि भी चारों वेदों के ज्ञाता थे तो यह बात क्या मूल रखती है ? कि उन २ ने वेदमन्त्रों को बनाया ! कुछ भी नहीं। इस लिये वेदमन्त्र के ऋषि का यही तात्पर्य्य है कि उस २ ऋषि ने उस २ मन्त्र पर विशेष व्याख्या की है वा उस मन्त्र के अर्थ का वह अनुभव करने

वाला हुवा वही उस मन्त्र का ऋषि कहाता है रचने वाला नहीं । जब ऐसा है तौ यह फल निकालना भूल वा हठ है कि उस २ ऋषि ने बनाये और वेदों की रचना उस २ ऋषि के समय में हुई । आप कहते हैं कि रामचन्द्र के समय में ऋग्वेद का आरम्भ हुवा परन्तु वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक १४—

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ॥

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥

से प्रकट है कि रामचन्द्र जी अपने धर्म और जाति के रक्षक, वेद और वेदाङ्गों का तत्त्व जानने वाले और धनुर्वेद के विद्वान् थे । इस से सिद्ध है कि रामचन्द्र जी के समय में वेद, वेदाङ्ग, उपवेद, सब उपस्थित थे । फिर वाल्मीकीय बालकाण्ड सर्ग १५ श्लोक १ । २ में लिखा है कि राजा दशरथ के सन्तान नहीं होती थी तब ऋष्यशृङ्ग नाम ऋषि जो वेदज्ञ था उस ने आकर दशरथ जी से कहा कि मैं तुम्हे पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊंगा जो अथर्व वेद के मन्त्रों से विधिपूर्वक कराई जायगी । यथा—

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किञ्चिदिदमुत्तरम् ।
लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत् ॥१॥
इष्टिं तेहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात् ॥
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ॥२॥

अब विचारना चाहिये कि जब रामचन्द्र जी के जन्म से भी पूर्व ऋष्यशृङ्ग ऋषि वेदों का ज्ञाता था और अथर्ववेद के मन्त्रों से उस ने यज्ञ कराया था तौ यह कैसे माना जासक्ता है कि "ऋग्वेद रामचन्द्र के समय में आरम्भ हुवा और अथर्व वेद ऋग्वेद से पश्चात् बना" कदापि नहीं ॥

फिर पृष्ठ २१ पं० १८ से पादरी साहब लिखते हैं कि व्यास जी अपने वेदान्तदर्शन के अध्याय २ पाद २ सूत्र ३३ से ३८ तक बौद्ध मत का वर्णन करते हैं इस से प्रतीत हुवा कि व्यास जी, बुद्ध से पीछे हुवे इत्यादि ॥

उत्तर—यद्यपि व्यास जी के बुद्ध से पश्चात् होने वा न होने से वेदों का प्राचीनत्व वा नवीनत्व सिद्ध नहीं होता क्योंकि जब तक "व्यासजी वा उन के समय में किसी अन्य ने वेद बनाये" यह सिद्ध न होजाय तब तक यह लेख

वेदप्रकाश और जुबिली ॥

जिस प्रकार इस सौर जगत को एक सूर्य्य की आवश्यकता है, विना सूर्य्य के सौर जगत के लोक लोकान्तरों और देहधारियों की ठीक २ व्यवस्था नहीं रह सकी। सूर्य्य के विना प्राणियों के प्राण की स्थिति असम्भव है। सूर्य्य के विना प्रकाश और वर्षा नहीं हो सकी, न इस के विना आकर्षण के अभाव से पृथिव्यादि लोक अपनी परिधि में रह सके हैं। समुद्र में नीचे पड़ा हुवा जल मरुभूमि को शान्तिमय नहीं बना सका। यह सूर्य्य ही का प्रताप है कि समुद्रस्थ जल को इतने ऊंचे स्थान पर पहुंचाता है जहां अन्य प्रकार से उस का पहुंचना असम्भव है इत्यादि अनेक काम हमारे जाने हुवे ऐसे हैं जो सूर्य्य करता है और अनेक काम ऐसे भी होंगे जिन्हें हम नहीं जानते कि वे भी सूर्य्य से होते हैं। ठीक इसी प्रकार राजा भी संसारस्थ प्राणियों और विशेष कर मनुष्यों का उपकारक है। उस के विना प्रजा के प्राण तथा धन की रक्षा कैसे हो, बहुत लोगों के समीप समुद्रस्थ जल के समान प्रयोजन से अधिक धन है और बहुतों के पास मरुभूमि के पिपासायुक्त पुरुषों के समान अपनी प्राण यात्रा के निर्वाहार्थ भी धन नहीं। राजा उस धन का विभाग इस प्रकार से करता है कि सब की प्राणयात्रा चले और अधिक धनी लोगों को भी कररूप से धनादि का देना असह्य न हो। रघुवंश के इस श्लोक में क्या अच्छा कहा है कि:—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो वलिमग्रहीत् ॥
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ १ ॥

सूर्य्य जो पानी खेंचता है वह वर्षारूप से छोड़ने के लिये और राजा जो प्रजा से कर लेता है वह प्रजा के ही उपकारार्थ। प्रसङ्ग यह है कि सृष्टि-क्रम से भी राजा के नियम में चलने से शान्ति और नियम भङ्ग करने से अशान्ति सूचित होती है। वेद में सूर्य्य के दृष्टान्त से जो राजधर्म और प्रजाधर्म

का वर्णन है वह इसी प्रकार है जैसे स्कूलों में पुस्तकस्थ जो बात पढ़ाई जाती है वही नकशे आदि पर समझाई जाती है । आज हम को इस विषय में लिखने का कारण यह उपस्थित हुवा कि:—

इस मास जून में श्रीमती राजराजेश्वरी महाराणी क्वीन विक्टोरिया प्रतापशालिनी को राजसिंहासनासीन हुवे ६० वर्ष व्यतीत हुवे हैं, इस अवसर पर इङ्गलेण्ड देश के लण्डन नगर और महाराणी के राज्य भर के सब देशों में आनन्द मङ्गल मनाया गया है । हम को भी इस आनन्द का एक बड़ा भाग प्राप्त है । बड़ा भाग इसलिये है कि हमारे वेद शास्त्रादि में जिस प्रकार का राजशासन विधान है, महाराणी में उस प्रकार के गुण अधिकता से पाये जाते हैं ; जिस प्रकार वेदमन्त्रों में सूर्य्य के दृष्टान्त से मेघों के पराजय और अन्धकार के नाश के समान राजा को दुष्टों के दमन और बुराईयों के नाश की आज्ञा है उसी प्रकार महाराणी के राज्यशासन में मनुष्यजाति के प्राण संहारक राक्षसदल का दलन और अविद्यादि अन्धकार का नाश प्रतिदिन होकर वैदिकधर्म के प्रचार में साहाय्य की वृद्धि होती जाती है । स्वातन्त्र्य, रेल, तार, यन्त्रालय आदि साधनों के अतिरिक्त मनुष्यों की सामान्य प्रकार की प्राणस्थिति जो सैकड़ों नहीं सहस्रों वर्ष से दुर्लभ थी उस में जितना अन्तर पड़ा है उसे वही ठीक बता सके जिसने २०० वा ३०० वर्ष पूर्व भारत में मनुष्य जन्म पाया हो और अब उसे स्मरण हो कि मेरे अमुक पूर्व जन्म में मेरी क्या दशा थी अब क्या है !

इतिहास से जितना विदित हुआ है उतने ही को स्मरण कर के हम मुक्त कण्ठ से विवश हो महाराणी के गुण गान करते हुवे इस ६० वर्ष की जुबिली के आनन्द से आनन्दित होते हैं । और वेदों के नीचे लिखे मन्त्रों का अर्थ स्मरण कर के अपना धर्म समझते हैं कि हम इस प्रकार की राजराजेश्वरी के लिये परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह इस प्रकार के शासन को हमारे ऊपर सुरक्षित रक्खे ॥

वेदमन्त्र ॥

इन्द्रो जयाति न पराजयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह । अथर्व का ६ अनु० १० वर्ग ९८ मं० १ ॥

राजा की विजय हो, पराजय न हो, वह राजों का अधिराज हो, वह प्रजाप्रतिनिधियों का सभापति हो, वह स्तुति योग्य हो, वह वन्दनीय हो, वह शरण लेने योग्य हो, वह नमस्करणीय है । इस प्रकार राजा के गुण कर्म स्वभाव और प्रजा की ओर से उस का मान्य सत्कार वन्दना आज्ञापालनादि वेदविहित है ॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेनाविवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥२॥

राजा, परप्राणपीड़क राक्षसस्वभाव वाले दस्यु आदि को ऐसे विध्वंस करता है जैसे सूर्य्य मेघ को । वह उस को स्कन्धरहित करता है अपने बड़े वधसाधन वज्र से । और उस के प्रबल वज्र से शत्रुदल जो मनुष्यों के प्राण धनादि हरण करने वाले हैं पृथिवी पर गिराये और सदा के लिये सुलाये जाते हैं ॥

सम्पादकीयाः श्लोकाः

श्री श्री श्री राजराज्ञी जगति विजयतां, सर्वसौभाग्यभर्त्री ।
वर्षेऽस्मिन्भारतेद्यावधि बहुशरदो, नैव भूपालराज्ञौ ॥
कश्चित्कीर्त्तेः पताकां सुलभसुविधिना, चेदृशा ह्युत्ततान ।
नापि प्रेक्षासुयुक्तः सकलजनहृदा, सादरं मानितोऽभूत् ॥१॥

अत्र कारणमिदं तु सुस्फुटं, प्रेक्षते सहृदयं प्रजागणः ॥
क्वीन तुल्यसमभाववीक्षको, नहि गतेषु बहुवत्सरेष्वभूत् ॥२॥

प्रजा सर्वानन्देन कथयति धन्यास्तु जननी ।
सदा क्वीन्तुल्यैव प्रभवतु जयन्ती रिपुगणान् ॥
परेश षष्ट्यब्दान् सुखसमुदयैः प्राप च यथा ।
तथाग्रेपि प्राप्नोत्वविरतसमा इत्यनुनये ॥ ३ ॥

तदीया राजकीया ये, प्रजाभरणतत्पराः ॥
वाइसरायादयो योग्यास्ते च सन्तु निरामयाः ॥४॥

अर्थ–श्री राजराजेश्वरी सर्वसौभाग्यशालिनी विजय को प्राप्त हो, इस भारतवर्ष में राजवर्ग में बहुत वर्षों से इस प्रकार का राजा नहीं हुवा जो महारानी के समान कीर्त्तिपताका को ऐसी सरल नीति से ऊंचा करें। और न कोई सावधानी से अपने धर्म का निर्वांह करता हुआ, सम्पूर्ण प्रजावर्ग के हृदय से आदरपूर्वक माननीय हुवा ॥ १ ॥ इस का प्रत्यक्ष कारण प्रजा देखती है कि क्वीनविक्टोरिया के समान कोई प्रजा को समानभाव से देखने वाला गत बहुत वर्षों से नहीं हुवा ॥२॥ अतः सम्पूर्ण प्रजा आनन्द से कहती है कि जननी क्वीन! धन्य हो। दस्युराक्षसादि शत्रुगण को विजय करने वाली क्वीन तुल्य ही प्रभु हो! जिस प्रकार गत ६० वर्ष बीते, परमात्मा आप को अभ्युदय के साथ इसी प्रकार निरन्तर वर्षों को प्राप्त करें यह प्रार्थना है ॥३॥ आप के नियत किये "वाइस राय" प्रभृति प्रजावर्गरक्षक निरामय हों ॥ ४ ॥

अन्त में परमेश्वर से प्रार्थना है कि हे जगदीश्वर! ऐसी कृपा रखिये कि हमारी राजभक्ति ऐसी ही बनी रहे और महारानी राजराजेश्वरी का न्याय प्रताप राज्य दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त हो ॥

तुलसीराम स्वामी
सम्पादक "वेदप्रकाश" मेरठ

इस उत्सव पर ३० जुलाई तक जिन पुस्तकों का मूल्य घटाया है उस की सूचना टैटिल पेज पर देखिये ॥

—÷×*×÷—

"क्या स्वामी दयानन्द मक्कार था ?"

इस नाम का छोटा पुस्तक एक ऐसे पुरुष ने लिखा है जो आर्य्यसमाज का सभासद् नहीं है तथापि भारत के एक प्रसिद्ध सच्चे धर्मप्रचारक पर जो लोग मक्कारी का दोष लगाते हैं और कहते हैं कि वह वेदों की आड़ में नास्तिक था उन लोगों के भ्रम निवारणार्थ उक्त महाशय ने यह पुस्तक बड़ी प्रौढ उक्तियों से सज्जित रचा है। ४० पेज १६ पेजा रायल का पुस्तक है मूल्य)॥

निम्नलिखित पुस्तकों का मूल्य ३०।७।९७ तक घटाया जाता है पश्चात् पूर्ण मूल्य होगा ॥

वेश्यानाटक ।)॥ से घटाकर ≡) सभाप्रसन्न ।) से ≡) लघुकौमुदी भाषा टीका २) से १॥) न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्य १) से ॥।) वैशेषिकदर्शनप्रशस्त-पादभाष्य ॥) से ।) दशोपनिषद् बड़े मोटा अक्षर कपड़े की जिल्द १।) से १) कात्यायनसूत्र पूर्वार्द्ध ॥।) से ॥) आर्य्यसमाज के नियम ≡)। सैंकड़े से केवल ≠) दमयन्ती स्वयंवरनाटक ≡) से =) व्याख्यान का विज्ञापन ≠) से -) सैंकड़े । प्रब-न्धार्कोदय ।-) से।) अबलाविनय ≡)॥ से ≡) चाणक्य भाषानुवाद सहित -)। से -) प्रश्नोत्तररत्नमाला और आर्य्यविवाहमङ्गलाष्टक -) से)॥ आर्य्यचर्पटपञ्जरी)। में ३ कापी। भजनेन्दु -) से)॥ ऋग्वादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंशः-)॥। से केवल -) नालिकाविष्कार (तोप बन्दूक बारूद के विषय) १) की ५० और १ प्रतिका)॥। से)॥ देवनागरीवर्णमाला पुस्तक १) की १०० से घटा कर १५०

शास्त्रार्थकिरणा ॥

इस में शास्त्रार्थ के नियम और शास्त्रार्थविषयक युक्तियां तथा मन्त्रब्रा-ह्मणविषयक शास्त्रार्थ आर्य्यों को देखने योग्य है। प्रायः आर्य्यसमाजों को विरोधियों के पत्र आते ही पण्डितों को पत्र वा तार देने पड़ते हैं परन्तु यदि इस शास्त्रार्थ को देखलें और सर्वसाधारण में बांटदें तो प्रथम तो विपक्षियों को शास्त्रार्थ का साहस ही न रहे और रहे तो शास्त्रार्थ विधिपूर्वक निर्विघ्न हो, परिणाम अच्छा निकले और आर्य्य पण्डितों के पहुंचते ही जो टालमटोली हो जाती है और आर्य्य पण्डितों का समय और समाज का धन रेल भाडा आदि में वृथा जाता है, वह न जावे। मूल्य =) से घटा कर -) २५ कापी लेवें तो १) ही ॥

श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती कृत पुस्तकें ॥

यजुर्वेदभाष्य सजिल्द २७) भूमिका विना जिल्द २॥) सजिल्द २॥।-) प-ञ्चमहायज्ञविधि ≡)॥ सजिल्द ।-)॥ उणादिकोष ॥≠) निरुक्त १) संस्कारविधि १।)

सजिल्द १॥) निघण्टु ।=) शतपथ १ काण्ड ॥) वर्णोच्चारणशिक्षा -) आर्य्याभिविनय ।) सजिल्द ।=) आर्य्यसमाज के नियमोपनियम)। हवनमन्त्र)॥

संस्कृत-भाषा-चतुर्थ पुस्तकम् ॥

जिन लोगों ने इस से पूर्व संस्कृत भाषा प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुस्तकों को पढ़ा है और चतुर्थ पुस्तक के लिये २ वर्ष से सहस्रावधि पत्र लिख रहे हैं उन का सूचीपत्र हम ने नहीं बनाया अतः उन सब को सूचना है कि अब यह पुस्तक भ्वादि १० गण, णिजन्तादि १० प्रक्रिया, कारक, समास, तद्धित, कृदन्त और अव्ययार्थ तथा स्त्रीप्रत्ययों के प्रकरण पर साधारण सुगम प्रयोग, नियम और उदाहरणों सहित छप कर तैयार होगया है। प्रथम पुस्तक छः बार में ८००० पुस्तक छपे। द्वितीय ४५०० पुस्तक छपे और फिर २००० छपेंगे ऐसा ही तृतीय पुस्तक का प्रचार हुवा परन्तु इस चतुर्थ पुस्तक के मुद्रणारम्भ-समय में हम यह नहीं जानते थे कि सर्वसाधारण इतना अधिक इसे उपयोगी समझ कर हमारा श्रम सफल करेंगे इसलिये इस चतुर्थ पुस्तक के छपने के आरम्भ समय (जिसे २ वर्ष होगये) में १००० ही छपना आरम्भ हुवा, छपने के बीच में बहुत ग्राहक प्रतीत हुवे हैं। जिन को चाहिये शीघ्र मंगालें ॥ मूल्य प्रथम पु०)॥। द्वि० -)। तृ० =)॥। चतुर्थ ॥) योग ॥।)॥। परन्तु चारों भाग एक साथ लेने पर केवल ॥।)

"वैदिकदेवपूजा"

यह वह व्याख्यान है जो आर्य्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर देश की उपदेशकता में मैंने-काशी, मिर्ज़ापुर, प्रयाग, लखनौ, कानपुर, बरेली, अयोध्या, आगरा, झांसी, ग्वालियर, मथुरा, मेरठ, सहारनपुर फिर लुधियाना इन नगरों में समारोह के सामने दिया था। लखनौ आदि कई स्थानों में मुझ से इस व्याख्यान के छपने को आग्रह किया गया था। आज यह छपकर तैयार हो गया और मौखिक व्याख्यानों में जो समयाभावादि कारणों से कुछ बातें छूट जाती थीं और जो उस समय तक अज्ञात थीं वे भी इस में बढ़ाई गई हैं। इस में वैदिक देवों के नाम, रूप, स्वभाव और भागग्रहण का प्रकार तथा देवदूत का वर्णन, आश्चर्य्यदायक देवपूजा का फल, कर्मकाण्ड में देवयजन की मुख्यता, किस २ आश्रम को यह कर्त्तव्य और किस २ को क्यों अकर्त्तव्य है इत्यादि विषय की वेदमन्त्र, सूत्र, धर्मशास्त्र और साइंस के प्रकार से युक्तिसिद्ध भी पुष्टि की है। ब्रह्मचारी, गृही और वनी को यह पुस्तक उन के कर्त्तव्य का ध्यान दिलाने वाला है। मूल्य -)॥ पता-पं० तुलसीराम-स्वामी प्रेस मेरठ

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { ७मास

ईश्वर और उस की प्राप्ति पृ० ८६ से आगे ॥

उत्पत्ति और नाश वाला देखा जाता है तब यह समझना कैसी बड़ी भूल है कि अवयवी जगत् किसी ने नहीं रचा, यह सदा से ऐसा ही चला आता है ! प्रसिद्ध बात है कि एक प्राकृत द्रव्य में परस्पर विरुद्ध दो धर्म नहीं रह सक्ते। प्रकृति जड़ है उस में परस्पर विरुद्ध दो धर्म नहीं रह सक्ते कि स्वयमेव जगत् के उत्पादन का धर्म भी रहे और उस के विरुद्ध संहार का धर्म भी रहे। यदि कोई यह शङ्का करे किः—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः० सांख्य सू०

जब प्रकृति में सत्त्व रजः तमः इन तीन गुणों का सङ्घात रहता है और विकृति होने से अर्थात् प्रकृति के कार्य्योन्मुखी होने से रजोगुण—उत्पन्न करता है, सत्त्वगुण पालन करता है और तमोगुण संहार करता है, इस प्रकार उत्पत्ति स्थिति प्रलय तीनों कार्य्य प्रकृति के तीनों गुणों से सिद्ध होजाते हैं तब उत्पत्ति स्थिति प्रलय के कर्त्ता ईश्वर की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—यह ठीक है कि सत्त्व से पालन, रजः से उत्पत्ति और तमः से प्रलय होता है इस प्रकार प्रकृति के ३ गुणों से ही ३ काम हो जाते हैं परन्तु अपने आप नहीं। जिस प्रकार चिकनी मिट्टी में सामर्थ्य है कि उस से घटादि बनें और बालू रेत में नहीं। परन्तु चिकनी मिट्टी क्या स्वयं घट बन सक्ती है ? कदापि नहीं। किन्तु जब कुम्भकार जो चेतन है वह उसे घटाकार बनाता है तभी वह घट बनती है अन्यथा नहीं। यदि कहो कि जब बनाये बिना सृष्टि नहीं बनती तो रजोगुण का सामर्थ्य बना सकना मानना व्यर्थ है वा प्रलय

किये विना कारण में लय नहीं होती तो तमोगुण की लयशक्ति मानना व्यर्थ है ? तो उत्तर यह है कि जिस प्रकार यदि मिट्टी चिकनी न हो अर्थात् उस में जुड़ कर घड़ा बनने का सामर्थ्य न हो तो घड़ा बन नहीं सकेगा किन्तु मिट्टी में स्वाभाविक बनने का सामर्थ्य रहते हुवे ही उस से कुम्भकार घड़ा बना सक्ता है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार प्रकृति के गुणों के रहते हुवे ही परमात्मा उत्पत्ति आदि व्यवहारों को करते हैं अन्यथा तीनों गुणों से रहित गुणातीत परमात्मा में प्रकृतिसम्बन्ध न होने पर सृष्टि आदि का व्यवहार नहीं बन सक्ता। यदि सृष्टि के परमाणुओं में सृष्टि के बनाये रखने और बनाने की शक्ति स्वाभाविक माने तो सृष्टि के किसी एक देश का नाश भी न होना चाहिये। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। हम संसार में मनुष्य पशु पक्षी कीट पतङ्ग वृक्ष पर्वतादि सभी छोटे से छोटे और मध्यम पदार्थों का नाश (प्रलय) देखते हैं और इस से ठीक निश्चित होता है कि बड़े से बड़े पृथिवी और सूर्य्यादि पदार्थों का भी प्रतिदिन ह्रास होते २ एक नियत समय पर क्षय हो जावेगा। इस समय के वैज्ञानिकों का यह निश्चय है कि पृथिवी और सूर्य्यादि सब लोकों का उत्पत्ति के समय उत्तप्त पिण्ड था परन्तु मध्यविन्दु से चारों ओर को गरमी निकलते २ चन्द्रमा छोटा होने से प्रथम ठंडा हुवा उस के पश्चात् पृथिवी ठण्डी हुई जो चन्द्रमा से बड़ी और सूर्य से छोटी है। इसी प्रकार सूर्य्य की उष्णता घटती जाती है और उसी प्रकार पृथिवी पर से समुद्र घटता जाता है परन्तु इस सब न्यूनता को इस कारण जानना कठिन है कि बड़े २ पदार्थों के भाग की थोड़ी सी न्यूनता जानने के लिये सब किसी के पास साधन नहीं। किन्तु वैज्ञानिक लोग विज्ञानशास्त्र और विद्यासम्पादित अपूर्व २ साधनों से इस भेद को जान गये हैं कि यथार्थ में सांसारिक छोटे से छोटे पिपीलिकादि और बड़े से बड़े सूर्य्यादि सब पदार्थ नाशोन्मुख दौड़े जाते हैं। परन्तु कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि सब पृथिवी का नाश कभी न होगा किन्तु इस का कोई भाग कभी नष्ट होता और दूसरा कभी। इसी प्रकार एक भाग कभी नवीन बनता रहता है और दूसरा कभी। इस प्रकार सदा ही उत्पत्ति स्थिति प्रलय होता रहता है किन्तु कभी समस्त पृथिवी का युगपत् (एक वार ही) प्रलय नहीं होता और ऐसे ही न कभी उत्पत्ति युगपत् होती है। परन्तु विचार के सामने ऐसी समझ बेसमझी सिद्ध होती है। क्योंकि जो बात व्यष्टि जगत् में है वही समष्टि में है। अर्थात् जगत् के छोटे २ पदार्थों में जैसे

उपचय अपचय होते हैं (किसी जीव वा वस्तु के देह का बाहरी परमाणु जुड़२ कर बढ़ते जाना उपचय और घटते जाना अपचय कहाता है) वैसे ही पर्वतादि बड़े २ अवयवों का भी और तदनुसार अवयवी सम्पूर्ण जगत् का भी उपचय अपचय होते २ उत्पत्ति और नाश स्वीकार करना होगा। यदि सर्वनाश कभी न माने तौ मनुष्य पशु आदि के देह भी एक ओर से उत्पन्न उपचित होते रहें और किसी दूसरी ओर से नष्ट अपचित होते रहें और ऐसा हो तो कोई मनुष्य पशु आदि कभी न मरे। परन्तु यह नहीं देखा जाता। इसलिये महाशयो! यह समझना बेसमझी है कि जगत् के एक देश का ही नाश होता है और सर्वदेश का नहीं। किन्तु ठीक यही है कि जैसे जगत् के एक देश मनुष्यादि के देहों का उपचय होते २ उत्पत्ति और अपचय होते २ नाश हो जाता है इसी प्रकार इस सौर जगत् के भी उत्पत्ति और प्रलय हैं तथा अन्य सौर जगतों के भी॥

एक और भी हेतु परमात्मा के अस्तित्व में है। और वह यह है कि कोई जीव जो बुरे भले कर्म करता है वह उस में से भले कर्मों का तौ भोग चाहता है इस लिये उसे प्राप्त होजाते हैं। परन्तु बुरे कर्मों का बुरा फल कोई जीव भोगना नहीं चाहता तथापि बुरा फल जीव भोगते हैं और निस्सन्देह वे विना चाहे दुःख को बलात् भोगते हैं। भला फिर ईश्वर के विना और कौन है जो विना चाहे दुःख को बलात् भोगवाता है? यदि कहो कि अन्य जीव भोगवाते हैं तौ हम पूछते हैं कि संसार में ऐसे बहुत से दुःख हैं जो अन्य प्राणियों की ओर से नहीं दिये जाते। जैसे वज्रपात, शीत, धूप, ज्वरादि पीड़ा इत्यादि। भला ये दुःख किस प्राणी की ओर से होते हैं? किसी की नहीं। यदि कहो कि यह सब मिथ्या आहार विहार का फल है तौ हम पूछते हैं कि सब मनुष्य आहार विहार सुखार्थ करते हैं दुःखार्थ नहीं। और इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं कि हम अमुक २ अपराध करें परन्तु उस का अनिष्ट फल न भोगना पड़े। और प्रायः ऐसे प्रयत्न करके कृतकार्य भी होजाते हैं। प्रायः चोर, दण्ड से बचजाते हैं, व्यभिचारी रोग से बचजाते हैं। और उन को देखकर अन्यों को भी साहस होजाता है और इसी प्रकार संसार में दुष्कर्मों का प्रवाह चल पड़ता है। परन्तु तौ भी कभी कभी ऐसी दृष्ट और अदृष्ट रीतियों से ऐसी भयावनी दैवी घटना होती हैं जिन का प्रतीकार मनुष्य कुछ भी नहीं कर सक्ता। वर्त्तमान संवत् में देखिये कि अकाल,

महामारी आदि महाभयानक विपत्तियों का देनेवाला कोई भी प्राणी नहीं है तथापि अपकर्मों के प्रभाव से आया हुवा ईश्वर का कोप ही इस का कारणं स्पष्ट है। आसाम देश में जो अभी भयानक भूकम्प से असंख्य मनुष्यादि प्राणियों को दुःख भोगना पड़ा वह भी किसी प्राणी का दिया दुःख नहीं है। ऐसे भयानक दुःखों को देखकर नास्तिक से नास्तिक मनुष्य भी एक वार कह उठता है कि "दयानिधे ! रक्षा करो" । इस प्रकार प्राणिवर्ग जब घोर पाप का अनुष्ठान करने लगते हैं तब परमात्मा रुद्रसंज्ञक उन के संहारार्थ दैवी आपत्ति डालकर शिक्षा देते हैं और "मनुष्य अपने किये कर्मों का फल आप पाजाता है" ऐसा कहने वाले मतों को साक्षात् उपदेश करते हैं। इस के अतिरिक्त प्राणिवर्ग जो गर्भ में भी भोजन पाते हैं और शरीर बढ़ाते हैं सो सब स्वयमुपार्जित कर्मों का स्वयं होने वाला फल कैसे कहा जा सक्ता है? परमात्मा वेद में बताते हैं किः—

"अहं ददामि गर्भेषु भोजनम्"

अर्थ—"मैं गर्भों में भोजन देता हूं,, अहो ! कैसे आश्चर्य का विषय है कि मनुष्य उस परम कृपालु परमात्मा की अपार कृपा और असीम न्यायपरायणता को देखता हुवा भी यह प्रश्न उठाता है ! कि परमात्मा के अस्तित्व को कैसे स्वीकार करें ! !

जब कि बड़े २ राजा, प्रिंस, बादशाह इस संसार को छोड़ते हैं तब विवश ही जाते हैं तो यह कहना कैसी भूल मे है कि आत्मा स्वयं कर्मफल को भोग लेता है ॥

यद्यपि ईश्वर के अस्तित्व में इतने अधिक प्रमाण हैं जिन की बहुतायत ही इस बात का कारण है कि मनुष्य इस विषय में प्रमाण ही प्रायः कम पाता है। जब मनुष्य को भूख इतनी अधिक लगती है कि जिस से अधिक भूख असम्भव हो। अथवा जब मनुष्य को इतना दुःख आपड़े जिस से अधिक दुःख असम्भव हो। अथवा जब हर्ष इतना अधिक हो जिस से अधिक हर्ष असम्भव है तो मनुष्य उस भूख, दुःख और हर्ष को जानने और मापने को असमर्थ होजाता है। भला जब अन्तवाले सुख, दुःख, हर्ष, क्षुधा आदि भी परा काष्ठा की बहुतायत से सामने आते हैं तब पहचाने नहीं पड़ते तो फिर अनन्त प्रमाण जो परमात्मा को प्रमेय करते हैं उन की प्रमाणता में इस क्षुद्रबुद्धि मनुष्याधम को सन्देह होना क्या आश्चर्य है । तथापि हमने जो संक्षेप से उपनिषदों के सारभूत इस संक्षिप्त

व्यर्थ है परन्तु तथापि सर्वसाधारण को भ्रान्ति न हो इसलिये हम व्यास जी के उन सूत्रों को प्रकरणसहित नीचे लिख कर दिखलाते हैं कि उन में बुद्ध वा उन के अनुयायी किसी पुरुष का वर्णन नहीं है ॥

नैकस्मिन्नसम्भवात् । व्याससूत्र अ० २ पा० २ सू० ३३। एवं चात्माकार्त्स्न्यम् । ३४ । न च पर्य्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।३५। अन्त्यावस्थितेश्चोभयत्वादविशेषः । ३६। पत्युरसामञ्जस्यात् ।३७। सम्बन्धानुपपत्तेश्च । ३८ ।

पाठकगण! ये पादरी साहब के बताये ३३ से ३८ तक वेदान्तदर्शन के सूत्र हैं। हम इन का अर्थ करने से पहिले २८ वें सूत्र से प्रकरण दिखलाते हैं। २८ वां सूत्र यह है:—

नाभाव उपलब्धेः ॥ २८ ॥

उपलब्धि (अनुभव) होने से अभाव नहीं। अर्थात् "एक चित् वस्तु के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का अभाव है" यह नहीं कहा जासक्ता क्योंकि अन्य पदार्थों की उपलब्धि (अनुभव) होती है ॥ यदि कहो कि अन्य पदार्थों की उपलब्धि स्वप्नादि की उपलब्धि के समान मिथ्या है। यह भी नहीं बन सक्ता। क्योंकि:—

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥२९॥

वैधर्म्य से स्वप्नादि के तुल्य नहीं। अर्थात् जाग्रत उपलब्धि और स्वप्नोपलब्धि में वैधर्म्य है। जागते समय की उपलब्धि और प्रकार की है और स्वप्न समय की उपलब्धि और प्रकार की है। इसलिये यह नहीं कह सके कि अन्य वस्तुओं की उपलब्धि स्वप्नादिवत् है ॥

अब दूसरा पक्ष उठाते हैं कि:—

न भावोनुपलब्धेः ॥ ३० ॥

अनुपलब्धि (अनुभव न होने) से भाव नहीं। अर्थात् जिन पदार्थों की उपलब्धि नहीं उन का भाव न मानना चाहिये ॥ और यदि उपलब्धि हो परन्तु क्षणिक उपलब्धि हो किन्तु दूसरे क्षण में उपलब्धि नहीं रहे तौ भी:—

क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥

उपलब्धि के क्षणिक होने से भी भाव नहीं मान सके ॥

सर्वथानुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥

और सर्वथा उपपत्ति न होने से भी । अर्थात् उपलब्धि से भी सर्वथा कोई वस्तु सिद्ध ही होजावे यह नहीं है । क्योंकि बहुत सी मिथ्योपलब्धि भी होती हैं । जैसे सीपी में चान्दी की भी उपलब्धि देखी जाती है और थोड़ी दूर पर आकाश पृथिवी से छुवा है ऐसा सब को प्रतीत होता है परन्तु यथार्थ में आकाश कहीं भी छुवा नहीं क्योंकि वह स्पर्शगुण से ही रहित है । इसलिये उपलब्धि से "भाव है ही है" यह सर्वथा निश्चय नहीं हो सक्ता । तौ क्या एक ही पदार्थ है ? यदि एक ही है तौः—

नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥

एक पदार्थ में असंभव होने से नहीं । अर्थात् यह असम्भव है कि एक ही पदार्थ में एक साथ दो विरुद्ध धर्म रहें परन्तु जिन वस्तुओं की उपलब्धि होती है उन में से बहुतों में एक दूसरे से विरुद्ध धर्म देखे जाते हैं । यदि देहादिकों में आत्मा एक देश में रहे तौः—

एवं चात्माकात्स्न्र्यम् ॥ ३४ ॥

और ऐसा हो तौ आत्मा सर्वगत नहीं । अर्थात् आत्मा के व्यापन में बाधा आती है । यदि आत्मा देहादि के साथ घटे बढ़े तौः—

न च पर्यायादप्यविरोधोविकारादिभ्यः ॥३५॥

आत्मा को विकारादि दोषों का अविरोध न होगा । क्योंकि जब छोटे देह में आत्मा छोटा और बड़े देह में आत्मा बड़ा होजावे तौ आत्मा में आगमापायी दोष आने से आत्मा विकारादियुक्त होगा । और मोक्षावस्था-प्राप्त आत्मा में यही शङ्का आवेगी किः—

अन्त्यावस्थितेश्चोभयत्वादविशेषः ॥३६॥

अन्त्यावस्था (मोक्षावस्था) के उभयत्व से कुछ विशेष नहीं । अर्थात् मोक्षको प्राप्त हुवे आत्मा के आकार में देहाऽभाव से उस का घटना बढ़ना कितना मानोगे ? तब कुछ विशेष न रहेगा और वही शङ्का रहेगी । यदि इस विषय में ईश्वर को कारण मानो तौः—

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥

ईश्वर के असमञ्जस होने से । अर्थात् यदि ईश्वर के करने से ऐसा ही वा

ईश्वर स्वयं ऐसा प्रतीयमान हो तौ उस में असमञ्जस दोष आवेगा । और–

सम्बन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥

सम्बन्ध की अनुपपत्ति से भी । अर्थात् ईश्वर का इन उपलभ्यमान (प्रतीयमान) वस्तुओं के साथ ऐसा सम्बन्ध भी सिद्ध नहीं होता ॥

अब पाठकगण देख सक्ते हैं कि इन सूत्रों के अक्षरों में वा ध्वनि से कहीं बुद्ध का ज़िकर नहीं पाया जाता। पादरी साहब को जो भ्रान्ति हुई उस का कारण यह है कि शङ्कराचार्य्यादि जो २ टीकाकार हुवे वे अवश्य बुद्ध के पश्चात् हुवे और इस कारण उन्होंने बौद्धमत की बहुतायत से इन सूत्रों की टीका में चर्चा की है जिस से जैन बौद्धमत वालों की ओर से आत्मा के विषय में हुई वा होने वाली शङ्काओं के समाधानादि का प्रकार वेदान्तदर्शन के पढ़ने वाले जान जायं और उन से शास्त्रार्थ करते समय वेदान्तदर्शन के आश्रय से उन की शङ्काओं को निर्मूल कर सकें ॥ परन्तु व्यासजी जो इन सूत्रों के कर्त्ता हैं उन्होंने यथार्थ में जैन बौद्धादि का कुछ भी ज़िकर नहीं किया । इस के अतिरिक्त बुद्ध के जो सिद्धान्त थे उन के समान पूर्व काल के भी लोगों के हृदयों में ऐसे विचार उत्पन्न हुवे हों यह सम्भव है । वे ही सिद्धान्त बुद्ध के जन्म और प्रचार के पश्चात् एक मत (मज़हब) के रूप में बने हों । प्रत्युत शाक्यमुनि ने बुद्ध होने का दावा किया तब कहा कि मुझ से पूर्व २४ बुद्ध और हुवे हैं (देखो इतिहासतिमिरनाशक भाग ३ पृष्ठ ३३) इस से भी सिद्ध होता है कि बुद्ध के सा विचार रखने वाले लोग पहले भी कई हो चुके हैं इसलिये भी सम्भव है कि व्यासजी ने उन लोगों के विचारों को लक्ष्य में रखकर सूत्र लिखे हों परन्तु जिन बुद्धादि के नाम वा ऐसे काम की (जो बुद्ध ने ही किये हों उस से पूर्व न हों) इन सूत्रों में गन्ध भी नहीं आती ॥

बुद्ध का व्यास के पूर्व न होना इस से भी सिद्ध है कि हन्टर साहब जिन को आप अवश्य प्रामाणिक मानते होगें उन्होंने भी तवारीख़ हन्टर के पृ० ९७ में लिखा है कि मसीह से १२०० वर्ष पूर्व व्यास हुवे । मसीह से ६३२ वर्ष पूर्व बुद्ध का होना आप स्वयं पृष्ठ २१ में लिखते हैं तौ सोचने की बात है कि बुद्ध का वर्णन ५६८ वर्ष पूर्व व्यासजी कैसे करते । आप ने पृष्ठ २२ में लिखा है कि ऋग्वेद के आरम्भ को ३०६२ और समाप्ति को २४१७ वर्ष हुवे और आप ही बुद्ध को मसीह से ६३२ वर्ष पहले मानते हैं इस रीति से आप

के लेखानुसार बुद्ध को सन् १८८६ ई० तक २५१८ वर्ष होते हैं और आप के विचारानुसार अन्य वेद जो ऋग्वेद से पीछे बने उन को २४१७ वर्ष से भी न्यून ही समय हुवा तौ बुद्ध ने सैंकडों वर्ष पूर्व ४ वेदों का खण्डन कैसे किया। आप के लेख से भी स्पष्ट है कि बुद्ध के पूर्व ४ वेद थे जिन का उस ने खण्डन किया इसलिये वेदों की उत्पत्ति का वह समय जो आप लिखते हैं स्वयं आप ही के लेखों से कट जाता है । और बुद्ध वेदविरोधी का प्रमाण यदि वेद के असत्य होने में माननीय हो तौ हम भी कह सक्ते हैं कि चार्लस ब्रेडला साहब मेम्बर पार्लियामेंट के लेखानुसार आप की ईसाईधर्मपुस्तक सत्य नहीं है। ब्राडला साहब ने क्या झूठ ही झूठ लिख दिया है ? ॥

महरनीमरोज़ ता० ७ । ११ । ८७ पृष्ठ ६ । ७ कालम ३ । १ और इम्पीरियलपेपर सन् ८७ ई० में मि० अर्थलीली साहब के लेख से निश्चय होता है कि बौद्धमत से ईसाईमत निकला और बौद्ध प्रचारक सिकन्दरिया में आये थे। इस लिये वेदधर्म से बौद्धमत और उस से ईसाईमत पश्चात् हुवा ॥

व्यासजी युधिष्ठिर के समय में थे और युधिष्ठिर का संवत् मसीह के ४४३ वर्ष पूर्व २६६३ था तौ २६६३ और ४४३ और १८८६ मिलाने से ४९९२ वर्ष युधिष्ठिर को सन् १८८६ ई० तक हुवे और सन् ९७ ई० तक ११ और मिलाने से ५००३ वर्ष होते हैं। आर्य्य लोग भी युगव्यवस्थानुसार ५००० वर्ष के समीप ही युधिष्ठिर को मानते हैं। ऊपर लिखे विषय की पुष्टि इस से स्पष्ट है कि सूरत नगर के दो शङ्कराचार्य्यों के शास्त्रार्थ में एक ताम्रपत्र पेश हुवा था जिस पर युधिष्ठिरी संवत् २६६३ लिखा था। वह पत्र मसीह से ४४३ वर्ष पूर्व का लिखा था (देखो अमरीकन मिशन का नूरुलफ़िशां पृष्ठ ६ कालम ४ ता० ५।५।८७ ई०) जिस व्याससूत्र में आप बौद्धमत का वर्णन बताते हैं वही व्याससूत्र आरम्भ में:—

शास्त्रयोनित्वात् ॥

ऐसा सूत्र करके शास्त्र (वेद) का कारण ईश्वर को बतलाता है ॥

यदि बुद्धशास्त्र (वेदविरोधी) के कहने से तिथिपत्र प्रामाणिक नहीं तौ यहूदियों के कथनानुसार मसीह का होना भी असत्य है क्या ?

पृष्ठ २२ के आरम्भ से ही पादरी साहब लिखते हैं कि व्यासजी बुद्ध से पीछे हुवे इस में यह भी प्रमाण है कि पतञ्जलि ऋषि ने एक पुस्तक बनाई है जिस का नाम योगदर्शन है उस में उन्होंने पाणिनि के व्याकरण के अध्याय २ पाद ४ सूत्र २३ पर टीका करते हुवे कहा है कि राजा को ऐसी सभा नियुक्त

करनी चाहिये जैसी राजा चन्द्रगुप्त ने किई है । यों हम देखते हैं कि पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में राजाचन्द्रगुप्त की चर्चा किई है और व्यास जी ने इसी पुस्तक पर व्याख्या लिखी है इस कारण इसी से अत्यन्त प्रकट होता है कि व्यास जी, बुद्ध और चन्द्रगुप्त के पीछे हुवे हैं ॥

उत्तर–यहां तौ आप बहुत भूले हैं । प्रथम तौ पतञ्जलि के योगदर्शन में पाणिनि के व्याकरण की टीका नहीं किन्तु पाणिनीय व्याकरण की टीका महाभाष्य है । जब आप को यह भी विदित नहीं तौ लेख क्या हमारा शिर लिखते हैं? धन्य है ! दूसरे महाभाष्य में भी अध्याय २ पाद ४ सूत्र २३ यह है:–

सभाराजामनुष्यपूर्वा । २ । ४ । २३ ॥

इस सूत्र पर अपने प्रकरण में भाष्य ही नहीं है किन्तु–

स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा १ । १ । ६६ ॥

इस सूत्र के भाष्य में, आने वाले " सभा राजामनुष्यपूर्वा " सूत्र की व्याख्या है जिसे हम नीचे लिखेंगे । भला जब पादरीसाहब को इतनी बात भी विदित नहीं कि " योगदर्शन पर व्याकरणभाष्य नहीं हुवा करते और अष्टाध्यायी पर महाभाष्य है वा 'योगदर्शन' पर! तथा उस सूत्र पर भाष्य है वा नहीं" तौ फिर सुनी सुनाई बातों से सत्य वैदिक धर्मविषयक अनुसन्धान करना क्या बुद्धिमानी की बात है ? अस्तु महाभाष्य में इस प्रकार पाठ है:–

जित्पर्यायवचनस्यैव राजाद्यर्थम् । जिन्निर्देशः कर्त्तव्यः ततो वक्तव्यं पर्य्यायवचनस्यैव ग्रहणं भवति । किं प्रयोजनम् ? राजाद्यर्थम् । सभा राजामनुष्यपूर्वा । इनसभम् । ईश्वरसभम् । तस्यैव न भवति–राजसभा । तद्विशेषाणां च न भवति । पुष्पमित्रसभा ॥

तात्पर्य्य यह है कि (स्वं रूपं०) व्याकरण में व्याकरण की संज्ञा से तौ संज्ञी का बोध होता है परन्तु अन्यत्र जिस शब्द का प्रयोग करते हैं उसी का ग्रहण होता है किन्तु यह नहीं होता कि "गो" शब्द को जो कार्य्य कहें वह उस के पर्य्याय "वृषभ" शब्द को भी हो जावे । इस पर भाष्यकार कहते हैं कि "जित्निर्देशकरके वार्त्तिक करना चाहिये कि "जित् पर्य्यायवाची का ही ग्रहण करता है" प्र०–ऐसा वार्त्तिक किस प्रयोजन से किया जावे ? उ०–राजाद्यर्थ । जैसे–"सभा राजामनुष्यपूर्वा" में राजन् शब्द का प्रयोग किया है परन्तु

यहां राजन् शब्दपूर्वक सभा शब्द को नपुंसकलिङ्ग नहीं होता किन्तु राजा के पर्य्याय "इन" "ईश्वर" इत्यादि हों तौ होता है । जैसे—ईश्वरसभम् । इनसभम् । ख़ास राजा शब्द के पूर्वपदत्व भी में नहीं होता । जैसे राजसभा । और राजा के विशेष नाम जहां हों वहां भी नहीं होता । जैसे—पुष्पमित्रसभा ॥

यहां किसी २ पुस्तक में पुष्पमित्रसभा । और चन्द्रगुप्तसभा ये दो उदाहरण पाये जाते हैं । महाभाष्यकार का तात्पर्य्य तौ यह है कि पुष्पमित्रादि जो राजा के विशेष नाम हैं जब वे पूर्व हों तौ समास में सभा शब्द नपुंसकलिङ्ग नहीं होता जैसे—पुष्पमित्रसभा वा चन्द्रगुप्तसभा इत्यादि । पादरीसाहब ने समझा कि महाभाष्य में राजा को शिक्षा दीगई है कि "राजा को ऐसी सभा नियुक्त करनी चाहिये जैसी चन्द्रगुप्त ने किई है" ॥

भला इस से यह कैसे सिद्ध होगया कि राजा को ऐसी सभा नियुक्त करनी चाहिये । और प्रथम तौ यह नियम नहीं कि चन्द्रगुप्त नामक एक वही राजा हुवा हो जो बुद्ध के समय में था । दूसरे व्याकरण में बहुधा कल्पित नाम देवदत्त यज्ञदत्त विष्णुमित्र पुरुष पुष्पमित्र आदि आया करते हैं यथार्थ में वे नाम किसी के उस समय लोक में हों ही यह नियम नहीं । यदि नियम हो तौ आप बतलाइये कि दूसरे उदाहरण " पुष्पमित्रसभा " में जो पुष्पमित्र शब्द है वह इतिहास के किस राजा का नाम है और उस में क्या प्रमाण है? तीसरी बात यह भी है कि सूत्र और वार्त्तिक तक किन्हीं २ पुस्तकों में जब न्यूनाधिक पाये जाते हैं तौ भला उदाहरण की कौन कहे उदाहरण तौ यथार्थ में ग्रन्थकर्त्ता भी एक दो लिख कर चाहता है कि इसी प्रकार विद्यार्थी लोग अन्य उदाहरण अपनी समझ से बना लेवें । इसलिये यदि " चन्द्रगुप्तसभा " यह उदाहरण पीछे से किन्हीं ने मिलाया हो तौ आश्चर्य नहीं प्रत्युत निश्चय है कि ऐसा ही हुवा है । क्योंकि सब पुस्तकों में यह उदाहरण नहीं पाया जाता । हम यहां एक अंग्रेज़ का साक्ष्य देते हैं जिस से पादरी साहब को अधिक माननीय हो । ओरियंटल लेंग्वेज दक्षिण कालिज के प्रिंसिपेल साहब मिस्टर एफ० कीलहार्न मुम्बई के छपे महाभाष्य के पाठान्तर के सूचीपत्र में लिखते हैं कि " चन्द्रगुप्तसभा " यह उदाहरण प्रामाणिक पुस्तकों में नहीं है अतः हम केवल "पुष्पमित्रसभा,, इतना ही छापते हैं इत्यादि ॥

पाठकवर्ग ध्यान देकर समझ सक्ते हैं कि इस प्रकार के एकदेशीय पाठ से सर्वथा सन्देह नहीं किन्तु निश्चय है कि यह पाठ नवीन है । इसलिये पादरीसाहब का लिखना ठीक नहीं ॥

पृष्ठ २३ पं० ११ में पादरीसाहब लिखते हैं कि यजुर्वेद के तैत्तिरीयब्राह्मण के मन्त्र २२ में यह लिखा है कि मैं उन ऋषियों को धन्यवाद देता हूं जिन्हों ने वेदों को बनाया है इत्यादि ॥

उत्तर—प्रथम तो यजुर्वेद का तैत्तिरीयब्राह्मण नहीं किन्तु यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है । यदि तैत्तिरीय शाखा को थोड़ी देर के लिये हम यजुर्वेद ही मानलें तो तैत्तिरीयब्राह्मण का मन्त्र २२ कैसा ? ब्राह्मणों में मन्त्र होते तो उन का नाम ब्राह्मण न होकर मन्त्रसंहिता होता । हां, ब्राह्मणग्रन्थों में मन्त्रसंहिता के मन्त्र कहीं २ व्याख्या करने को वा विनियोग दिखाने को आते हैं सो उस रीति पर मन्त्रसंख्या का उल्लेख पुस्तकों में नहीं है । तैत्तिरीयब्राह्मण के पुस्तक को जिन्हों ने देखा है वे जानते हैं कि उस में अष्टक, अध्याय और अनुवाक हैं। और कोई २ लोग अष्टक की जगह काण्ड, अध्याय की जगह प्रपाठक भी लिखते हैं । मन्त्रसंख्या का प्रकरण नहीं बान्धा गया । परन्तु हम को तैत्तिरीयब्राह्मण के खोजने से पादरीसाहब के सुने सुनाये इशारे का पता लग गया और वह यह है:—

"यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः।अन्वैच्छन्देवास्तपसा श्रमेण"। इत्यादि ॥

यहां पूर्व से वाणी का प्रकरण चला आता है सो उद्धृत करके प्रकरणानुसार पूरा अर्थ लिखेंगे । प्रकरण यह है:—

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे । वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः । वाचीमा विश्वा भुवनान्यार्पिता ॥४॥ सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी । वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य । वेदानां मातामृतस्य नाभिः । सानो जुषाणोपयज्ञमागात् । अवन्ती देवी सुहवा मे अस्तु । यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः । अन्वैच्छन्देवास्तपसा श्रमेण । तां देवीं वाचꣳ हविषा यजामहे ॥

तैत्ति० ब्रा० काण्ड २ प्रपाठक ८ अनुवाक ८ ॥

अर्थ—सब देवता वाणी से जीवन करते हैं । गन्धर्व, पशु और मनुष्य भी । वाणी में ये सब भुवन अर्पित हैं । वह इन्द्र—(जीव) पत्नी वाणी हमारा स्तोत्र सेवन करे । वाणी अविनाशिनी वेदों से पूर्व प्रथम प्रकट हुई । वेदों की माता अमृत का केन्द्र । वह सेवित (वाणी) हमारे यज्ञ के समीप आवे । रक्षा

करती हुई देवी सुहवा मेरी हो । जिस को मन्त्रकृत् ऋषि लोग और देवता तपश्चर्य्या और श्रम से चाहते थे। उस वाग्देवी को हम श्रद्धा से यजन करते हैं।

तात्पर्य्य यह है कि वाणी के विना देव, मनुष्य, गन्धर्व और ऋषि आदि किसी का काम नहीं चलता। वाणी का व्यवहार सब भुवनों (द्वीप द्वीपान्तरों वा लोक लोकान्तरों) में हैं । वाणी जीवात्मा की स्त्री के समान सहधर्मिणी है। वाणी वेदों से पूर्व प्रकट हुई अर्थात् परमात्मा ने वाणी देकर फिर ऋषियों को वेदों का प्रकाश किया । इसी से वह वेदों की माता कही जासक्ती है। वह अमृत का केन्द्र इसलिये है कि उसी पवित्र वाणी से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करते २ मोक्ष प्राप्त होता है। यज्ञ करते हैं तब उस पवित्र वाणी की सहायता ईश्वर से मांगते हैं । वह वाणी मनुष्य की रक्षा करती है परन्तु यदि बुरी वाणी हो तौ दान्त तुड़वाती है जैसा कि एक कविने कहा है –

दन्ता वदन्ति जिह्वे त्वां दशामः किं करिष्यसि ।
एकमेव वचो वच्मि सर्वे यूयं पतिष्यथ ॥

अर्थ–दान्त कहते हैं कि हे जिह्वे! हम तुझ को काटते हैं तू क्या करेगी? जिह्वाने कहा कि मैं एक ही वचन ऐसा बोलती हूं कि तुम सब के सब गिर जाओगे। वाणी को मन्त्रों का उच्चारण करने वाले ऋषि और देवता चाहते हैं अर्थात् मन्त्रोच्चारण विना वाणी के नहीं होसक्ता ॥

यहां केवल "मन्त्रकृत्" शब्द के आने से ऊपर की लिखी कथा पादरी साहब ने स्वयं वा किसी से सुन कर जोड़ली प्रतीत होती है। परन्तु प्रकरण का विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहां केवल इतना ही तात्पर्य्य निकलता है कि मन्त्रकृत् अर्थात् मन्त्रोच्चारण के कर्त्ता को प्रथम वाणी की इच्छा करनी चाहिये । जब वाणी का प्रयोग आजावे तभी मन्त्रोच्चारण हो सक्ता है । यहां पादरी साहब के लेख का पता भी नहीं कि "मैं उन ऋषियों को धन्यवाद देता हूं" इत्यादि ॥

सूचीपत्र जो ऋषियों के नाम का अन्त में छपा है उस का उत्तर इसी में आगया है कि ऋषि, मन्त्रों के कर्त्ता नहीं किन्तु द्रष्टा हैं ॥

अब अन्त में पादरी साहब को सूचना है कि यदि वे हमारे उत्तर में कुछ न्यूनता समझें वा उन का सन्तोष न हो तौ पुनः लिखें हम सदैव उत्तर प्रत्युत्तर को तैयार हैं और यदि भ्रम निवृत्त होजाय तो वैदिकधर्म को स्वीकार करें ॥ * ॥ इति ॥ * ॥

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

———:※:———

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { ८मास

पृ० १०२ से आगे "ईश्वर और उस की प्राप्ति"

पृ० १०२ से आगे

परन्तु गंभीर बुद्धि से विचारणीय थोड़े से वर्णन को आप के सम्मुख धरा है इस से भी ईश्वर के अस्तित्व में मैं समझता हूं कि बहुत कुछ शिक्षा मिलेगी। उस के अस्तित्व में जो प्रमाण नहीं विदित होता इस का कारण जो ऊपर प्रमाणों की बहुतायत को बताया है उस को आप एक सामान्य हेतु समझते होंगे परन्तु दीर्घ दृष्टि से देखें तो यह एक प्रबल हेतु है। देखिये हमारी आंख जिस दूरस्थ पदार्थ को देखती है यदि वह पदार्थ आंख के इतना अधिक समीप होजावे कि आंख में ही आपड़े तो फिर आंख का सामर्थ्य नहीं रहता कि उसे देख सके। अथवा जब कोई वस्तु इतनी अधिक ओरों से दीखे कि ऐसी जगह ही न हो जहां वह न प्रतीत हो तो उस को व्यवहार में दीखना वा देखना नहीं कहा करते। जैसे किसी न्यायाधीश के सामने इतने अधिक प्रमाण अपने वाद वा प्रतिवाद में कोई उपस्थित करदे जिन की गणना करना और अनुक्रम से रखना भी न्यायाधीश न जानता हो तो घबरा कर वह उन सब प्रमाणों की उपेक्षा करने लगता है। इसी प्रकार परमात्मा के अस्तित्व में जो प्रमाणभूत प्रत्येक प्राणी अप्राणी जगत् भर के पत्र पुष्प फल जलचर स्थलचर नभश्चर आदि पदार्थ हैं जिन में से एक २ में उस की अनन्त अनोखी अचिन्त्य कारीगरी सूचित होती हैं और वह कारीगरी अनन्त होने से अचिन्त्य अर्थात् समझ से बाहर हैं। वह संख्या में इतनी अधिक हैं कि मनुष्य उन सबों पर दृष्टि नहीं पसार सक्ता और घबड़ा जाता है और विक्षिप्त के सदृश कहता है कि "ईश्वर के अस्तित्व में क्या प्रमाण है?" इत्यादि॥

अब इस विषय में अधिक लेख बढ़ाना इस कारण भी निष्प्रयोजन वा

अल्पप्रयोजन है कि आगे "उस की प्राप्ति का उपाय" नामक दूसरे भाग में और "अप्राप्ति के कारण" इस तीसरे भाग में जो प्रसङ्ग वश, हेतु देने होंगे वे भी एक प्रकार से उस के अस्तित्व में प्रमाणभूत ही होंगे इसलिये इस विषय में अधिक न कह कर आगे दूसरे भाग का आरम्भ किया जाता है ॥

२—उस की प्राप्ति का उपाय ॥

परमात्मा की सत्ता एक ऐसी महती सत्ता है जो सर्वत्र उपस्थित है जिस के विना एक परमाणु भी नहीं है। तथापि उस की प्राप्ति विना उपाय किये नहीं हो सक्ती। कारण यह है कि वह ऐसा सूक्ष्म है जो अपनी सूक्ष्मता के कारण सामान्य पुरुषों को प्राप्त नहीं होता अर्थात् सामान्य पुरुष उस को प्रतीत नहीं कर सक्ते। यद्यपि वह सामान्य पुरुषों और विशेष पुरुषों में एक से ही भाव से वर्त्तमान है तथापि वे विशेष पुरुष जिन्हों ने उस के प्राप्त करने के उपाय किये हैं उसे प्राप्त करसक्ते हैं और जिन्हों ने उपाय नहीं किये वे उसे नहीं प्राप्त कर सक्ते। इसलिये उपाय जानने की आवश्यकता है ॥

पहिला उपाय—चाह ॥

सब से पहिले उस के प्राप्त करने की चाह (प्रबल इच्छा) उत्पन्न करने की आवश्यकता है। क्योंकि जब तक संसार में किसी वस्तु की प्राप्ति की प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न नहीं होती तब तक किसी प्राप्य की प्राप्ति के लिये पूर्ण पुरुषार्थ भी करते नहीं देखा जाता है। जिन २ पदार्थों की प्राप्ति के लिये लोग प्राणान्त परिश्रम उठाते हैं अवश्य उन की प्राप्तिके लिये उन के हृदय में एक प्रबल उत्कण्ठा की ज्वाला धधकती है। ऐसा न होता तौ धन की प्राप्ति के लिये भी मनुष्य के हृदय में एक प्रबल ज्वाला न धधकती, और यह न धधकती तौ मनुष्य ऐसे २ कठिन कार्य्य इस धनप्राप्ति की अभिलाषा में कभी न करता जैसे कि एक कवि ने गिनाये हैं। यथा:—

नृत्यन्ति गायन्ति रुदन्ति चैव। रोहन्ति वंशं च गुणे चलन्ति ॥
तप्तायसः पिण्डमहो लिहन्ति। सर्वं कुकर्माचरितं चरन्ति ॥१॥
पतिव्रतं सत्कुलजा जहाति। स्वब्रह्मचर्य्यं च पुमान्कुलीनः ॥
यस्य प्रभाप्रेङ्खणमात्रलेशात्। द्रव्यं सदा तच्छरणं ममास्तु॥२॥
वृत्तान्तपत्राणि परःशतानि। सुप्राञ्जलैर्लेखशतैर्युतानि ॥
स्वग्राहकान्यानि सदार्थयन्ति। धनानि तान्यत्र न के भजन्ति॥३॥

गतापराधानपि दण्डयन्ति। कृतापराधानपि च त्यजन्ति॥
यद्भ्रान्तचित्ताः किल राजकीयाः। वित्ताय तस्मै प्रणतिर्मदीया॥४॥
उपानत्प्रहारैरहो ताडिताग्राः। सुनिर्भर्त्सिताः कारगेहे निबद्धाः॥
यदर्थं व्यथास्तस्कराः संहसन्ते। धनायाद्य तस्मै नमस्ते नमस्ते॥५॥

अर्थात् जिस धन के लिये लोग नांचते हैं जो निर्लज्जता का काम है, गाते हैं, रोते हैं, बांस पर चढ़ते हैं, रस्सी पर चलते हैं जहां से गिरें तौ पता न लगे, तपाये हुवे लोहे के गोलों को चाटते हैं, सब प्रकार के कुकर्म तक करते हैं॥१॥ कुलीन स्त्रियां अपना धर्म भ्रष्ट करती हैं, कुलीन लड़के अपना ब्रह्मचर्य्य खो बैठते हैं, केवल इसलिये कि धनरूपी सूर्य्य की कहीं कि॰ रणें दीख पड़ें। धन्य रे द्रव्य!॥२॥ जिस के लिये सैंकड़ों प्रशंसापत्र हाथ जोड़े अपने ग्राहकों को अर्पण किये जाते हैं भला ऐसे धन की सेवा कौन न करे?॥३॥ जिस से भ्रान्तचित्त होकर राजपुरुष—निरपराधों को दण्ड देते और अ-पराधियों को छोड़ देते हैं उस धन को हमारा नमस्कार है॥४॥ जिस धन के लिये चौर लोग जूते खाते हैं, घुड़के जाते हैं, कारागार (जेल) में जाते हैं, इसी प्रकार अन्य अनेक यातनाओं को भुगतते हैं, उस धन को नमस्ते नमस्ते॥५॥

जिस प्रकार इस की प्राप्ति का लोलुप होकर मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों को झेलता है परन्तु उस ओर से एक पद भी पीछे नहीं हटता। इसी प्रकार स्त्री आदि की प्राप्ति के लिये भी इस से बढ़कर विपत्तियों का सा-मना करता है तथापि पीछे नहीं हटता। तब बताइये कि वह क्या वस्तु है जो इस प्रकार मनुष्य को एक विषय की प्राप्ति की उत्कण्ठा में तत्पर ब-ना देती है? महाशयो! वह उस की गहन प्रीति वा अत्यन्त प्रेम है। एक कवि प्रेम की महिमा को इस प्रकार वर्णन करता है:—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि, प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिः। पङ्कजे भवति कोषनिबद्धः॥१॥

अर्थात् बन्धन तो बहुत से हैं परन्तु प्रेम की रस्सी का बन्धन और ही है। दृष्टान्त—जो भ्रमर बांस की गांठ जैसे कठोर पदार्थ को काट डालता है वही प्रेमवश कमल के कोमल कोश में बन्ध जाता है, काटकर नहीं भागता॥१॥

जिस प्रकार यह भ्रमर कठोर से कठोर वस्तुओं का काटने वाला होकर भी कमलकोश में चुप का बन्धा पड़ा रहता है इसी प्रकार अत्यन्त चञ्चल भी मन जो जागते तो जागते ! सोते हुवे भी भागा २ फिरता है वह भी जब परमात्मा की प्रेममयी रस्सी से बन्धता है तब चञ्चलता का नाम भी भूल जाता है । इस प्रेम को जब कि यह छोटे का बड़े पर होता है "भक्ति" कहते हैं । बस भक्ति के विना परमात्मा की प्राप्ति दुर्लभ है इसलिये सब से प्रथम उस में भक्ति (चित्त की तत्प्रवणता) करनी चाहिये । यह भक्ति वा चाह प्रबलता से कैसे उत्पन्न हो ? उस का उपाय "स्तुति" है ॥

"स्तुति"

परमात्मा के दिव्य अलौकिक गुण जिस प्रकार वेदादि सच्छास्त्रों में लिखे हैं उन का वार वार पाठ करना और अर्थ पर ध्यान लगाये रहना "स्तुति" कहाता है । जैसा कि— यजुः । २५ । १३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(यः) जो (आत्मदाः) आपे का दाता है (बलदाः) बलका दाता है (यस्य) जिस के (प्रशिषम्) शासन को (विश्वे) सब (देवाः) देवता (यस्य) जिस को मनुष्य (उपासते) मानते हैं (यस्य) जिस की (छाया) आश्रय रूप भक्ति करना (अमृतम्) मोक्ष का हेतु है (यस्य) जिस का [भूलना] (मृत्युः) मृत्यु कारक है (कस्मै) प्रजापति (देवाय) देवता के लिये (हविषा-विधेम) भक्ति करें ॥

इत्यादि प्रकार से वेद और तदनुकूल अन्य शास्त्रों में उस की महिमा जिस प्रकार वर्णन की गयी है उस को बार बार चिन्तन करना, मुख से कहना, प्रसन्न होते जाना, उस के ऊपर कोई नहीं है, वही सर्वोपरि है, इस कारण अन्य तुच्छ वस्तुओं की प्रीति छोड़ कर उसी एक में प्रीति लगाना "भक्ति" है । परन्तु अन्य सांसारिक पदार्थों से प्रीति कैसे हटे जब तक उन की तुच्छता और असारता न समझी जावे । जाव तक मनुष्य अन्य सांसारिक पदार्थों की असारता तुच्छता और क्षणभङ्गुरता को नहीं जानता तब तक उन्हीं में लिप्त रहता है और जब तक उन्हीं में लिप्त रहता है तब तक परमात्मा के शरण में आने की सुध कैसे आवे? इसलिये यह आवश्यक है कि सांसारिक पदार्थों

की असारता के जानने का उपाय करे, जिस से उन से वैराग्य (अप्रीति) हो। जितना संसार के पदार्थों से वैराग्य होगा उतना ही इस जीवात्मा को परमात्मा की स्तुति भक्ति आदि के लिये अवकाश मिलेगा। सांसारिक पदार्थ मनुष्य की शान्ति नहीं कर सक्ते। यह बात साङ्ख्य शास्त्र के १ अध्याय के २ सूत्र से अच्छे प्रकार समझ में आजावेगी। यथा—

न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।

मनुष्य के आध्यात्मिकादि तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्तिरूप सिद्धि— सांसारिक दृष्ट पदार्थों से नहीं होसक्ती। क्योंकि उन से दुःखनिवृत्ति होते ही तत्काल पुनः दुःख की अनुवृत्ति देखते हैं। कल्पना कीजिये कि एक मनुष्य को क्षुधारूप दुःख है उस की निवृत्ति के लिये वह दो पहर के १२ बजे ८ छटांक भोजन करता है और सायंकाल के ८ बजे दूसरी बार क्षुधा लगती है उस की निवृत्ति के लिये फिर ८ छटांक भोजन करता है ऐसा ही नित्य क्रिया करता है। अब विचारना चाहिये कि क्या उस की क्षुधा १२ बजे से ८ बजे तक ८ घण्टे के लिये निवृत्त होजाती है? कदापि नहीं। क्या उस को सायंकाल के ७ बज कर ५९ मिनट तक क्षुधा न थी? अवश्य थी। अच्छा क्या ६ बजे क्षुधा न थी? अवश्य थी। क्या इस से भी पूर्व न थी? नहीं२ कुछ न कुछ अवश्य थी। किन्तु वह ८ छटांक की क्षुधा जो सायंकाल ८ बजे पूरी क्षुधा हुई है वह ४ बजे भी चार छटांक की क्षुधा अवश्य थी, और एक बजे दोपहर को भी एक छटांक की क्षुधा अवश्य थी। वह क्रमशः एक २ घण्टे में एक २ छटांक बढ़ती आई और बढ़ते २ ठीक आठ बजे पुनः पूर्ववत् पूरी ८ छटांक मांगने लगी। इतना ही नहीं किन्तु वह १ घण्टे के ६० वें भाग एक मिनट में १ छटांक का ६० वां भाग क्षुधा भी अवश्य थी। मानो जिस समय तृप्त होकर दोपहर को उठे थे उसी समय वह पिशाची क्षुधा साथ २ फिरती और बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार अन्य किसी दृष्ट पदार्थ से दुःख की सर्वथा निवृत्ति नहीं होती। क्योंकि सांसारिक समस्त साधन जिन से हम दुःख की निवृत्ति और स्थिर सुख की प्राप्ति की इच्छा करते हैं और इसी प्रयोजन से अनेक प्रकार के कष्ट सहकर भी उन के उपार्जन की चेष्टा करते हैं वे सब स्वयं ही स्थिर नहीं किन्तु प्रतिक्षण नाशोन्मुख दौड़े जाते हैं। तब हमें क्या सुख देसक्ते हैं? इस प्रकार विचारा जावे तो बहुत सहज में दृष्ट सांसारिक पदार्थों की असारता समझ में आजाती है तब फिर इन में ऐसा राग करना जैसा

कि सर्वसाधारण करते हैं उचित नहीं है। जब यह समझ में आजाता है तभी इन से वैराग्य उत्पन्न होता है। वह वैराग्य भी ईश्वर प्राप्ति के उपायों में एक उपाय है। वैराग्य के विना सांसारिक पदार्थों में ही मन दौड़ता रहता है, स्थिर नहीं होता। मन की स्थिरता के विना परमात्मा की प्राप्ति कहां? मन की स्थिरता वैराग्य और अभ्यास से होती है। यथा–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसू० १।१२॥

बार २ अभ्यास और इतर पदार्थों से वैराग्य (अप्रीति) वा अलिप्तता होने से मन एकाग्र होता है। अन्यथा मन बड़ा चञ्चल है इस के भीतर अनेक सुसङ्कल्प कुसङ्कल्प उठा करते हैं। मन की गति रोकने वाले को प्रथम परमात्मा से यह भी प्रार्थना करनी चाहिये कि मेरे मन में, हे भगवन्! बुरे सङ्कल्प न उठें, शुभ संकल्प उठें। जैसी कि वेद में प्रार्थना का उपदेश है।

यज्जाग्रतोदूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

यजुः ३४।१॥

हे भगवन्! (तत्, मे, मनः) वह, मेरा, मन (शिवसङ्कल्पम्, अस्तु) शुभसङ्कल्प वाला, हो (यत्, जाग्रतः, दूरम्, उपैति) जो जैसे, जागते का, दूर जाता है (तत्, सुप्तस्य, उ, तथा, एव, एति) वह, सोते का, भी, वैसे, ही, जाता है (दैवम्) दिव्य है (एकं, ज्योतिषां, ज्योतिः) एक, ज्योतियों की, ज्योति है॥

तात्पर्य्य यह है कि मन जिस प्रकार जागते समय में विषयों में दौड़ा २ फिरता है उसी प्रकार स्वप्न (निद्रा) में भी; जब कि हाथ नहीं चलते, पैर नहीं चलते,, कान नहीं सुनते, नाक नहीं सूंघती, आंखें नहीं देखतीं, त्वचा नहीं छूती और समस्त बाहर के व्यापार बन्द होते हैं। तब भी मन दौड़ने में वैसा ही फुरतीला रहता है जैसा कि जागते समय में। जब मनुष्य अपनी शक्ति भर इस के रोकने में श्रम करता है और नहीं रुकता तौ कमसे कम इस की गति को बुराई से रोककर भलाई की ओर को ही फेरना चाहिये। उन भलाइयों में इस को बहुत दिनों तक दौड़ने देवे। तौ उन भलाइयों के बदले परमात्मा प्रसन्न होकर इस असमर्थ जीवात्मा को मन के रोकने का सामर्थ्य देते हैं और जब यह कृपा होती है तब मानो कार्य्यसिद्धि

में देर नहीं रहती। इस प्रकार मन को रोकने से पहिले शुभकर्मानुष्ठान के लिये छोड़ देना चाहिये। जिस से हुई ईश्वरकृपा से इस के रोकने का सामर्थ्य प्राप्त हो। कदाचित् आप यह पूछेंगेकि—जब कि परमात्मा "वाङ्मनोऽतीत" अर्थात् वाणी और मन का विषय नहीं है, मन उस को नहीं पहचान सक्ता क्योंकि वह प्राकृत स्थूल है इसलिये सूक्ष्मतम परमात्मा को नहीं ग्रहण कर सक्ता। इसलिये मन उस की प्राप्ति का साधन ही नहीं तौ फिर उस की प्राप्ति के उपायों में मन के रोकने की क्या आवश्यकता है?

इस का उत्तर यह है कि यद्यपि मन साक्षात् परमात्मा के ज्ञान का साधन नहीं तथापि हमारा ज्ञान जो मन की प्रेरी हुई इन्द्रियों के द्वारा क्षीण होता रहता है वह क्षीण होना बन्द होजावे और क्रमशः बढ़ता जावे जिस से हम उस महान् उच्च, मनकी गति से दूर, परन्तु आत्मा में ही स्थित, परमात्मा को प्राप्त कर सकें। जिस प्रकार एक नहर से खेतों में पानी देते हैं परन्तु जो खेत पानी के बहाव से ऊंचे हैं उन में पानी नहीं पहुंचता क्योंकि वह आगे को बहा जाता है। परन्तु यदि उस पानी का आगे के बहाव का मार्ग रोका जावे जैसा कि सिलीपर डालकर नहर वाले पानी को ऊंचा करते हैं तौ उन ऊंचे खेतों में भी पानी की गति होजाती है जिन में कि इस से प्रथम नहीं जासक्ता था। ठीक इसी प्रकार मानवात्मा का परिमितज्ञान और वह भी इन्द्रियों के छिद्रों द्वारा प्रतिक्षण नहर (कुल्या) के पानी के समान बहता है तौ भला फिर उस अपरिमित और अत्यन्त, उच्च, परमात्मा तक कैसे पहुंचे? मनुष्य का ज्ञान यथार्थ में इन्द्रिय छिद्रों द्वारा बहता है अर्थात् विषयों में ख़र्च होता है इस कारण उस में और भी न्यूनता होजाती है। आप जानते हैं कि मनुष्य को देखने का काम बहुत पड़े तौ दर्शनशक्ति घट जाती है। चलने से पांव थकते हैं। सुनने से कान थकते हैं। इसी प्रकार विचारने से बुद्धि थकती है। स्मरण करने को बहुत बातें हों तौ स्मृति थकती है। जिन लोगों का लेन देन थोड़ा है वे उसे स्मरण रख सक्ते हैं, परन्तु जिन का व्यापार बहुत है वे स्मरणार्थ रजिस्टर वा बही और फिर भिन्न २ खाते का काग़ज़ लिखते हैं और तिस पर भी प्रायः भूलते हैं। कारण यही है कि ज्ञेय विषय के बढ़जाने से ज्ञान सब में थोड़ा २ बंट जाता है। जब कि सांसारिक पदार्थों के जानने में भी स्मृति के बंट जाने से कठिनाई होती है तौ परमात्मा जो सब से सूक्ष्मतम है उस के जानने में जितनी कठिनाई पड़े

सो सब सत्य है। इसलिये परमात्मा की प्राप्ति के अभिलाषी पुरुष को इन्द्रियव्यापार से हटाकर ज्ञान को नहर के पानी के समान रोककर उच्च बनाना चाहिये इसलिये मन की स्थिरता आत्मज्ञान का उपाय है ॥

ऊपर लिखे शम दम अर्थात् मन और इन्द्रियों को वश करने के अतिरिक्त और भी एक उपाय की आवश्यकता है उसे "तितिक्षा" कहते हैं। प्रायः जीवन में छोटे २ और बड़े २ शोक मोह क्रोध क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदि द्वन्द्व, मन के क्षोभ का कारण होते हैं। इसलिये इस आत्मविद्यालय के विद्यार्थी को उचित है कि शनैः २ सब द्वन्द्वों के सहन करने का अभ्यास डाले। अभ्यास बड़ी वस्तु है जिस से कठिन कार्य्य सुगम बन जाते हैं प्रत्युत दुःखदायक कार्य्य, सुखदायक बन जाते हैं। आरम्भ में अक्षराभ्यास करने वाले बालकों को एक २ अक्षर का बनाना कितना कठिन होता है। अभ्यास उस को कितना सुगम कर देता है यह बात किसी शीघ्र लेखक के समीप खड़े होकर स्वयं प्रतीत होजावेगी। चलना कैसा दुःखदायक है परन्तु जिन को चलने का अभ्यास होजाता है उन्हें विना चले रोटी ही नहीं भावती। इसी प्रकार सारा संसार अभ्यास की महिमा का उदाहरण है। इसलिये परमात्मा की प्राप्ति के अभिलाषी को शीतोष्ण, सुख दुःख की सहनशीलता का अभ्यास करना चाहिये ॥

अब हम उन उपायों का वर्णन यहां पूरा २ नहीं करते क्योंकि योगदर्शन में उन का पूर्ण वर्णन है जो ८ अङ्ग योग के कहलाते हैं। हम यहां छोटे से व्याख्यान में केवल उन के नाम गिनाये देते हैं जिस से योगदर्शन में आप लोग ढूंढ सकें। उन आठों अङ्गों के नाम ये हैं:—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २। २९ ॥

१—यम। २—नियम। ३—आसन। ४—प्राणायाम। ५—प्रत्याहार। ६—धारणा। ७—ध्यान। ८—समाधि ॥

१—यम—तत्राऽहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥

योग २। ३० ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह ये ५ हैं ॥

२—नियम—शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ २। ३२ ॥

ओ३म्

अथ

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यम् ॥

———×÷※÷×———

श्वेताश्वतरमहर्षे-
रुपनिषदि सतां मुदे करोम्येताम् ।
व्याख्यां सत्सच्चित्स-
च्चिदानन्दभेदबोधाय ॥१॥

जगति कृतानां क्रियमाणानां च कार्य्याणां सप्रयोजनतां पश्यता मयापि श्वेताश्वतरोपनिषद्व्याख्यायाः करिष्यमाणायाः सप्रयोजनता निरूपणीया । सा यथा—यद्यपि शाङ्करभाष्य श्वेताश्वतरोपनिषद्दीपिका श्वेताश्वतरोपनिषद्विवरणादीनि व्याख्यापुस्तकानि अस्यामुपनिषदि सन्ति बहूनि, तथापि अद्वैतसिद्धान्तानुरोधेन मूलार्थस्तत्रतत्र विरुध्यते । मत्कृतव्याख्यायां तु मूलाऽविरोधेन सरलार्थस्य तत्रतत्र करिष्यमाणत्वान्नैषदोषः । क्वचन च व्याख्यावसरे प्रकाशयिष्यामि दोषमेनम् । तत्रैव च कथनमिदं नूनं स्पष्टतामाप्स्यतीति किम्बहुना वाचां विसर्गेण ॥ तुलसीरामः (स्वामी)

श्लोकार्थ—श्वेताश्वतर नामक महर्षि के नाम से विख्यात इस उपनिषद् पर सत्पुरुषों के मोदार्थ और प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा के भेद समझाने के लिये इस व्याख्या को बनाता हूं ॥ १ ॥ जगत् में जो २ कार्य्य हो चुके और जो हो रहे हैं उन २ का प्रयोजन देखा जाता है इसलिये मुझे भी इस व्याख्या का प्रयोजन बतलाना चाहिये । वह यह है—यद्यपि शाङ्करभाष्य, श्वेताश्वतरोपनिषद्दीपिका और श्वेताश्वतरोपनिषद्विवरणादि बहुत टीकायें इस उपनिषद् पर वर्त्तमान हैं परन्तु उन सब में अद्वैतसिद्धान्त के अनुरोध से मूलार्थ से विरोध पाया जाता है और इस मेरी व्याख्या में मूल के अनुकूल सरल अर्थ किया जायगा, इस कारण पूर्वोक्त दोष नहीं है । कहीं २ व्याख्या करते हुवे पूर्व्वोक्त टीकाओं का यह दोष दिखाया भी जायगा जिस से मेरा कथन स्पष्ट हो जायगा । विशेष क्या लिखूं ॥ तु० रा० स्वामी

ग्रन्थादौ, पूर्णमदः पूर्णमिदं०-भद्रं कर्णेभिः० सहनाववत्वित्यादिश्लोकत्रयपाठः कैश्चिद्ग्रन्थान्तरादुद्धृतः सच मया न व्याख्यायते। मूलपाठाभावात्प्रतीकमात्रोद्धृतत्वात् केषुचित्पुस्तकेष्वनुपलभ्यमानत्वाच्च ॥

कदाचित्श्वेताश्वतरादयो महर्षयो ब्रह्मैकविचारपरायणा ब्रह्मनिष्ठा ब्रह्मवादिनः परस्परसंवादेन पूर्वं ज्ञातस्यापि ब्रह्मणो विशेषबुभुत्सया कथामवतारयन्ति। ब्रह्मवादिन इति-

(अथ श्वेताश्वतरोपनिषदारभ्यते)

ओ३म्। ब्रह्मवादिनो वदन्ति। किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः। अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्त्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥१॥

पदपाठः-किम्। कारणम्। ब्रह्म। कुतः। स्म। जाताः। जीवाम। केन। क्व। च। संप्रतिष्ठाः। अधिष्ठिताः। केन। सुखेतरेषु। वर्त्तामहे। ब्रह्मविदः। व्यवस्थाम् ॥

अन्वितपदार्थः-(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्म वदितुं शीलं येषां ते (वदन्ति) वक्ष्यमाणं वाक्यजातं संभूय कथयन्ति। तदेवाह-(कारणं, ब्रह्म) (किम्) किंस्वरूपम् ? (कुतः, जाताः, स्म) वयं केनोत्पादिताः अस्मदादेरुत्पादकः कोस्ति ? (केन, जीवाम) अस्मदादेः स्थितिसम्पादकः कोस्ति ? (क्व, च, संप्रतिष्ठाः) अस्मदादेः संस्थायामृत्योः प्रलयस्य कर्त्ता च कोस्ति ? एवं सृष्टिस्थितिप्रलयकारणं पृष्ट्वा दुःखादिव्यवस्थापकः कोस्तीति पृच्छन्ति-(ब्रह्मविदः) ब्रह्म साधारणतया विदन्ति जानन्ति ते वयम् (केनाधिष्ठिताः) (सुखेतरेषु) सुखानि च इतराणि दुःखानि च तेषु (व्यवस्थाम्) नियमम् (वर्त्तामहे) ॥१॥

भाषार्थः-(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी (वदन्ति) कहते हैं कि-(कारणं, ब्रह्म, किम्) कारण, ब्रह्म, क्या है ? (कुतः, जाताः स्म) किसने उत्पन्न किये हैं (केन, जीवाम) हम किस से जीते हैं (क्व, च, संप्रतिष्ठाः) और संस्था [प्रलय] किस में होता है (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता [हम] (केन, अधिष्ठिताः) किस से अधिष्ठित (सुखेतरेषु) सुख दुःखों में (व्यवस्थाम्) नियम को (वर्त्तामहे) वर्त्तते हैं ॥

यहां श्वेताश्वतरादि ऋषियों को 'ब्रह्मवादी' इसलिये कहा है कि वे साधारणतया जानते थे कि जगत्कर्त्ता ब्रह्म है इसलिये आरम्भ का प्रश्न यह है

कि "कारण ब्रह्म क्या है" अर्थात् ब्रह्म क्या वस्तु है, उस का क्या स्वरूप है। यदि उन्हें जगत्कारण का सामान्य ज्ञान भी न होता तो ऐसा प्रश्न करते कि "कारण क्या है" साथ में ब्रह्म पद को न लगाते। विशेष ज्ञान की इच्छा से वे आपस में पूछते हैं कि हम को किस ने उत्पन्न किया? किस से जीते हैं? किस में प्रलय को प्राप्त होते हैं? हमारे सुख दुःख की व्यवस्था कौन करता है? ॥१॥

इदानीं सृष्टिस्थितिप्रलयेषु कालादीनि कारणान्युद्दिश्य एकैकं चिन्तयन्ति काल इति–

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषइति चिन्त्यम्। संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः॥२॥

पदपाठः–कालः। स्वभावः। नियतिः। यदृच्छा। भूतानि। योनिः। पुरुषः। इति। चिन्त्यम्। संयोगः। एषाम्। न। तु। आत्मभावात्। आत्मा। अपि। अनीशः। सुखदुःखहेतोः॥ २॥

अन्वितपदार्थः–किं कालादीनि प्रत्येकं प्रश्नसंघटितब्रह्मपदवाच्यानीति चिन्तयन्ति–(कालः) निमेषादिपरार्धान्तप्रत्ययहेतुः किं ब्रह्म? कारणमिति पूर्वेण सर्वत्र सम्बन्धोऽनुसन्धेयः (स्वभावः) पदार्थानां प्रतिनियता शक्तिः (नियतिः) पूर्वकृतशुभाशुभकर्मणां विपाकजनितोऽर्थः (यदृच्छा) आकस्मिकी प्रवृत्तिः, जगति अविज्ञातं किमपि कारणं यदृच्छाशब्देन व्यवह्रियते (भूतानि) आकाशादीनि पञ्च (योनिः) प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था (पुरुषः) जीवात्मा (इति चिन्त्यम्) एवं प्रकारेण किं ब्रह्मेति मनसि व्यचारयन्। कालं विना न किञ्चिज्जायते इति प्रथमं चिन्तितम्। पुनश्च पदार्थानां स्वभावमुल्लङ्घ्य कालोपि न समर्थः। कालेपि खलु पदार्थानां स्वभावाधीनवृत्तित्वम्, नहि कश्चित्पदार्थः कालपारवश्येन स्वभावमुज्झति। अतः स्वभाव एव ब्रह्म कारणं स्यादिति द्वितीया विचारणा। नियतिं प्रारब्धं विना स्वभावस्याप्यसमर्थत्वान्नियतिरेव ब्रह्मेति तृतीयः पक्षः। प्रारब्धव्यवस्थाया अपि दुर्विज्ञेयत्वात् [यथा–भूमौ केनचित्स्थापितं धनं कश्चिदन्यः प्रतिपद्यते स्थापयिता च प्रायो न पुनः प्रतिपद्यते इत्येवं कर्मणो धनरक्षादेर्व्यवस्थाया असुकरत्वात्] यदृच्छा अकस्मात्प्रवृत्तिनिवृत्ती इति चतुर्थो विचारः। अकस्मादपि न किञ्चिद्भवति, यत्र न किमपि कारणमुपलभमाना वयं यदृच्छां कारणं मन्यामहे तत्रापि तत्त्वदृष्ट्या

भूतानि आकाशवाय्वादीनि कारणान्यवश्यं भवन्ति अतोभूतानीति पञ्चमी चिन्ता। प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणीत्यादिसाङ्ख्यसूत्रानुसारतस्तु स्थूलपञ्चभूतानां पञ्चमकार्य्यत्वात् योनिः प्रकृतिरेव कारणं सैव ब्रह्मपदवाच्येति षष्ठी विचारणा। एतानि कालादीनि सर्वाण्यपि न कारणान्यचेतनत्वात् अचेतनस्य स्वाधीनक्रियाऽक्षमत्वात्, अतः पुरुषो जीवात्मा सच्चिदेव कारणं किमिति सप्तमो विचारः। कालादिष्वेकस्याप्यसद्भावेऽन्येषामक्षमत्वात् (एषां संयोगः) कालादीनां संघातः किं कारणम्? इति चाऽष्टमः पक्षः। (न,तु) नह्येतत्सम्भवति कुतः (आत्मभावात्) आत्मा भोक्ता कर्त्ता तस्य विद्यमानत्वात् आत्मा जीवात्मैव कर्तृत्वादिहेतोः कारणं स्यात् इति नवममनुसन्धानम्। (आत्मा,अपि, सुखदुःखहेतोः, अनीशः) सुखमिच्छति दुःखं च नेच्छति परन्त्ववशः प्राप्नोति, पारतन्त्र्याच्च नैव जीवात्मापि कारणमिति न कस्यापि स्वतन्त्रकारणत्वं निरचिन्वन् ॥ २ ॥

भाषार्थः–(कालः) १–घड़ी पल आदि काल (स्वभावः) २–पदार्थों का नियतधर्म (नियतिः) ३–प्रारब्ध (यदृच्छा) ४–अकस्मात् [इत्तिफ़ाक़] (भूतानि) ५–पृथिवी जल तेज वायु आकाश (योनिः) ६–प्रकृति (पुरुषः) ७–जीवात्मा (इति) यह (चिन्त्यम्) शोचना चाहिये (एषां, संयोगः) इन का, संयोग (न, तु) यह नहीं होसक्ता क्योंकि (आत्मभावात्) चेतन के होने से (आत्मा, अपि, अनीशः) आत्मा भी असमर्थ है क्योंकि (सुखदुःखहेतोः) सुखदुःख के कारण ॥

वे महर्षि आपस में यह कहते हैं कि क्या "काल" ही जगत् का कारण ब्रह्म है? क्योंकि काल विना कुछ नहीं होता। इस प्रकार एक पक्ष कर के उस में दूषण देखते हुवे दूसरा पक्ष उठाते हैं कि पदार्थों के स्वभाव को उल्लङ्घन कर के काल भी कुछ नहीं कर सक्ता, जिस पदार्थ का जो स्वभाव है उस के विरुद्ध काल नहीं करता इस से "स्वभाव,, ही कारण है। इस दूसरे पक्ष में यह शङ्का कर के कि स्वभाव भी प्रारब्धाधीन होते हैं अतः "प्रारब्ध,, ही क्या ब्रह्म है? यह तीसरा पक्ष है। परन्तु प्रारब्धव्यवस्था भी बहुत जगहों में अच्छी रीति से नहीं घटती, जैसे–किसी ने धन की रक्षार्थ धन को पृथ्वी में गाड़ दिया अब कभी २ यह देखा जाता है कि जिस ने वह गाड़ा था उसे न मिल कर किसी अन्य को हाथ लग जाता है इस प्रकार की घटनाओं से यह जान पड़ता है कि प्रारब्ध कर्म कुछ नहीं किन्तु " यदृच्छा " से सब कुछ

हो जाता है यदृच्छा (इत्तिफ़ाक़) उस को कहते हैं जिस कारण का कुछ पता न लग सक्ता हो जो अकस्मात् कहा जाता है यह चौथा पक्ष है। परन्तु जहां कोई साक्षात् कारण न मिलने से हम यदृच्छा को कारण मानते हैं वहां भी पञ्चभूतों में से सब वा कई वा कोई न कोई कारण साक्षात् नहीं तो परम्परा से अवश्य होता है इसलिये जगत् का कारण पञ्चभूत ही हो सक्ते हैं यह पांचवां पक्ष है। इस पक्ष में भी यह शङ्का रहती है कि साङ्ख्य-शास्त्र के अनुसार प्रकृति से महत्तत्त्व उस से अहंतत्त्व उस से ५ तन्मात्रा दोनों प्रकार के इन्द्रिय उन से पञ्च स्थूलभूत इस प्रकार पञ्चमहाभूत, प्रकृति का पांचवां कार्य हैं। इस कारण प्रकृति ही क्या ब्रह्म (कारण) है ? यह छठा पक्ष हुवा। इस प्रकार इन छहों पक्षों में कारण को जड़ता है और जड़ पदार्थ स्वयं अपना काम स्वाधीन नहीं करते इसलिये इन के परतन्त्र होने से स-चित् जीवात्मा ही जो चेतन और स्वतन्त्र है क्या वही ब्रह्म है ? यह सातवां पक्ष है। इस में यह सन्देह रहता है कि आत्मा भी कालादि कारणों के आधीन ही कार्य कर सक्ता है इसलिये इन सातों के संयोग को कारण मानना चाहिये यह आठवां पक्ष है। इस पक्ष को इसलिये नहीं मानना चाहिये कि आत्मा चेतन स्वतन्त्र और कालादि ६ अचेतन परतन्त्र हैं अतः आत्मा ही कारण है ? यह नवम पक्ष है। इस में भी अन्त में यह दोष आता है कि आत्मा सुख चाहता दुःख नहीं चाहता परन्तु परवश विना चाहे दुःख को भोगता है इसलिये प्रतीत होता है कि जीवात्मा भी कर्मफल भोग में परतन्त्र होने से, कारण (ब्रह्म) नहीं हो सक्ता॥ २॥

एक के पश्चात् दूसरे पक्ष पक्षान्तरों को करते हुवे वे महर्षि, सन्तोषदायक पक्ष न पाकर फिर शोचने लगे कि जगत् का कारण कोई और ही है जो परतन्त्र जीवात्मा से कर्मफल भोगवाता है और जगत् को रचता है। इस इच्छा से वे अगले श्लोक में कहे अनुसार विचारपूर्वक शोच कर देखते थे कि—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥३॥

पदपाठः—ते। ध्यानयोगानुगताः। अपश्यन्। देवात्मशक्तिम्। स्वगुणैः। निगूढाम्। यः। कारणानि। निखिलानि। तानि। कालात्मयुक्तानि। अधि-तिष्ठति। एकः॥

इत्थं पक्षान्तराणि निराकृत्य प्रमाणान्तराऽगोचरे परमात्मनि ध्यानयोगेन कारणत्वं प्रतिपेदिरे इत्याह–(ते) श्वेताश्वतरादयः (ध्यानयोगानुगताः) ध्याने–किं कारणमिति चिन्तने योगश्चित्तवृत्तिनिरोधस्तमनुगताः अन्तर्मुखाः सन्तः (निगूढाम्) गुप्तां–बहिर्दृष्ट्या ज्ञातुमनर्हाम् (देवात्मशक्तिम्) देवस्य परमात्मन आत्मशक्तिं स्वकीयां शक्तिं (स्वगुणैः) स्वस्य स्रष्टृत्वादिगुणैः (अपश्यन्) ज्ञातवन्तः। यद्वा देवश्चात्मा च शक्तिश्चेति [एकवचनमार्षम्] समासे। ईश्वरजीवप्रकृतीनां क्रमशो ग्रहणमत्र बोध्यम्। कोऽसौ देवइत्यपेक्षायामाह–(यः) जिज्ञासितः परमात्मा (कालात्मयुक्तानि) कालात्मभ्यां युक्तानि कालादारभ्याऽऽत्माऽवधि पुरुषावधि प्रोक्तानि द्वितीयश्लोकस्थानि मध्यस्थानि प्रत्याहाररीत्या गृहीतानि स्वभाव–नियति–यदृच्छा–भूत–योनिनामकानि (निखिलानि) समस्तानि (तानि कारणानि) (अधितिष्ठति) अधिष्ठाय वर्त्तते (एकः) द्वित्वादिरहितोऽद्वितीयः परमात्मा। तं कारणत्वेनापश्यन्निति शेषः। अत्र हि कालादीनां परमात्माधिष्ठिततया स्वतन्त्रकारणवादादिपक्षान्निराकृत्य देवाधिष्ठिततदधीनकारणत्वमेषामुक्तमित्याशयः न तु अभिन्ननिमित्तोपादानकारणं ब्रह्मैवेति। प्रकृतिपुरुषाद्यन्यकारणानामपि कारणत्वाङ्गीकारात् केवलं तेषां परमात्माधीनत्वाच्च ॥३॥

भा०–इस प्रकार कालादि को स्वतन्त्र कारण न समझ कर (ते) उन ऋषियों ने (ध्यानयोगानुगताः) ध्यान में चित्त की एकाग्रता के साथ (निगूढाम्) छिपी हुई (देवात्मशक्तिम्) परमेश्वर की निजशक्ति को वा परमेश्वर जीव और प्रकृति को (स्वगुणैः) अपने गुणों से (अपश्यन्) पहिचाना (यः) जो (एकः) अकेला (कालात्मयुक्तानि) काल और पुरुष सहित (निखिलानि) समस्त (तानि) पूर्वोक्त (कारणानि) कारणों का (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता है॥

आशय यह है कि काल से लेकर आत्मा–पुरुष पर्य्यन्त द्वितीय श्लोक में कहे स्वभाव, प्रारब्ध, यदृच्छा, पञ्चभूत, प्रकृति इन सब कारणों का भी अधिष्ठाता परमात्मा है अर्थात् काल स्वभाव आदि भी अपने २ अंश में कारण हैं परन्तु कालादि जड़ होने और जीवात्मा सुखदुःखभोग में परतन्त्र होने से स्वतन्त्र कारण नहीं किन्तु परमात्मा सब कारणों का अधिष्ठाता स्वतन्त्र कारण है वह अन्य काल स्वभाव आदि सब कारणों को अपने आधीन रख कर सब जगत् को रचता पालता और प्रलय करता है यह उस के गुणों से पहचाना जाता है। यद्यपि उस की यह शक्ति छिपी हुई अर्थात् सब किसी

को नहीं जान पड़ती तथापि उन ऋषियों ने ध्यानयोग से उसे पहचाना इसी प्रकार अस्मदादि लोग भी ध्यानयोग से उस की छिपी शक्ति को जान सक्ते हैं। इस श्लोक में जो (देवात्मशक्तिम्) पद है उस का दूसरा अर्थ यह भी हो सक्ता है कि देव=परमात्मा, आत्मा=जीव, शक्ति=प्रकृति इन तीनों को उन्होंने जगत् का कारण जाना और इन तीनों में जीव प्रकृति तथा कालादि अन्य साधारण कारणों का अधिष्ठाता परमात्मा है यह भी उन्होंने जाना। और "यह एक परमात्मा अन्य काल स्वभाव प्रारब्ध यदृच्छा पञ्चभूत प्रकृति जीव इन कारणों का अधिष्ठाता है„ इस कहने से इन को भी कारण तो माना किन्तु केवल परमात्मा को ही अभिन्ननिमित्तोपादान कारण नहीं माना। किन्तु परमात्मा स्वतन्त्र इन का अधिष्ठाता है और काल स्वभाव प्रकृति आदि तथा सुख दुःख भोग में जीवात्मा भी परमात्मा के आधीन हैं परन्तु कारण हैं। यह १। २ और ३ श्लोकों का सङ्क्षिप्त आशय है ॥ ३ ॥

पूर्वोक्तस्य कालस्वभावादिपुरुषान्तपरतन्त्रकारणान्तराधिष्ठातुरुक्तकारणान्तरसहितस्य (न तु केवलस्य) परमात्मनः संसारस्वामिनः स्वभूतं संसारचक्रं वर्णयति तच्च संसारचक्रं ब्रह्मचक्रापरनामकम् तदर्थश्चाऽयम्—ब्रह्मणः स्वामिभूतस्य चक्रं स्वभूतं=ब्रह्मचक्रं नतु ब्रह्मैवचक्रम् ब्रह्मचक्रयोः स्वस्वामिभावः सम्बन्धो विज्ञेयो न तु कार्य्यकारणभावः—

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥४॥

पदपाठः—तम् । एकनेमिम् । त्रिवृतम् । षोडशान्तम् । शतार्धारम् । विंशतिप्रत्यराभिः । अष्टकैः । षड्भिः । विश्वरूपैकपाशम् । त्रिमार्गभेदम् । द्विनिमित्तैकमोहम् ॥

प्रसिद्धरथचक्रवत् संसारचक्रं ब्रह्मचक्रं वा वर्णयन् चक्रसमानधर्मान्कांश्चिदाह—(तम्) पूर्वोक्तं प्रकृतिजीवादिकारणान्तरसहितं चक्रस्वरूपेण स्थितम् (एकनेमिम्) एका प्रकृतिः प्रधानमव्यक्तमुपादानमित्याद्यपरनामिका नेमिः प्रान्तकाष्ठमिव यस्य। वाच्यस्य देवस्य पुंस्त्वात् तस्यैव च चक्रस्वरूपरूपकालङ्कारेण वर्ण्यमानत्वाच्च तमेकनेमिमिति पुंस्त्वमनुसन्धेयम् (त्रिवृतम्) त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोभिर्वृतम् तिसृभिर्लोहपट्टिकाभिर्वृतं रथचक्रमिव (षोडशान्तम्) षोडशकला अन्ता अवसानभूता यस्य। षोडश कलाः प्रश्नोपनिषदि षष्ठप्रश्ने

उक्ताः यथा–सप्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् ।
मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम ॥ ६ । ४ ॥

इत्थं प्राण–श्रद्धा–ऽऽकाश–वायु–ज्योति–र्जल–पृथिवी–न्द्रिय–मनो–ऽन्न–वीर्य–तपो–मन्त्र–कर्म–लोक–संज्ञाख्याः षोडश कलाः सन्ति (शतार्धारम्) पञ्चाशदरयुक्तम्, ते चेमे पञ्चाशत् ५० प्रत्ययभेदाः–यथा–पञ्चविपर्ययाः । अष्टाविंशतिरशक्तयः । नव तुष्टयः । अष्टैश्वर्याणि । एवं पञ्चाशत् । (विंशतिप्रत्यराभिः) अराणां मध्ये रथचक्रे प्रत्यरा अपि भवन्ति तथैवास्मिन्संसारचक्रेऽपि तत्सामान्यमाह–विंशतिप्रत्यराः दशेन्द्रियाणि तद्विषयाश्च शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवचनादानविहारोत्सर्गानन्दाः एवं २० विंशतिप्रत्यराभिर्युक्तमित्यर्थः (षड्भिरष्टकैः) एकं प्रकृत्यष्टकम्, द्वितीयं धात्वष्टकम्, तृतीयं सिद्ध्यष्टकम्, चतुर्थं भावाष्टकम्, पञ्चमं देवाष्टम्, षष्ठं गुणाष्टकं चेति षड्भिरष्टकैर्युक्तम् (विश्वरूपैकपाशम्) विश्वरूपोनानारूपः काम एकः पाशो यस्य तम् (त्रिमार्गभेदम्) त्रयो धर्मार्थकामाः मार्गा भेदा यस्य तम् (द्विनिमित्तैकमोहम्) द्वौ रागद्वेषौ निमित्तभूतौ एकश्च मोहोऽविद्यारूपो यत्र ॥

एवं चैकनेमि–त्रिवृत–पञ्चाशदर–विंशतिप्रत्यर–षडष्टक–विश्वरूपैकपाश–त्रिमार्गभेद–द्विनिमित्तैकमोहरूपं संसारचक्रं तस्मिन्जीवो भ्राम्यतीति वक्ष्यति। तत्र पञ्चाशत्प्रत्ययभेदेषु ५–पञ्चविपर्य्ययाः–अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः । योगशास्त्रे, साधनपादे सू० ३ प्रसिद्धाः । २८–अशक्तीनामष्टाविंशतिः–पायूपस्थपाणिपादवागितिपञ्चानां कर्मेन्द्रियाणां श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वानासिकेतिपञ्चज्ञानेन्द्रियाणामेकादशस्य मनसश्च क्रमेण–उत्सर्गाशक्तिः आनन्दाशक्तिः करणाशक्तिः गमनाशक्तिः वचनाशक्तिः श्रवणाशक्तिः स्पर्शाशक्तिः दर्शनाशक्तिः रसनाशक्तिः घ्राणाशक्तिः मननाशक्तिश्चेति एकादशाऽशक्तयः, नवतुष्टीनामभावान्नव, अष्टैश्वर्य्याऽभावादष्ट । एवमष्टाविंशतिः । ९–नव तुष्टयः–कश्चित्प्रकृतिविज्ञानमात्रेणैव तुष्यति, कश्चित्संन्यासाश्रमग्रहणेनैव तुष्यति, कश्चित्कालेनैव सर्वं सिध्यतीति तुष्यति, कश्चिद्भाग्यमेव परं मन्यमानस्तुष्यति, कश्चिदशक्या विषया उपार्जयितुमित्युपरम्य तुष्यति, कश्चिद्विषयार्थं कष्टेनोपार्जितस्य धनस्य रक्षणमपि कष्टमित्युपरम्य तुष्यति, कियानपि भोगो मे स्यात्ततोऽप्यधिकभोगवन्तोऽन्ये सन्तीति दृष्ट्वा कश्चित्तुष्यति, कश्चिद्विषयैस्तृप्तिमपश्यंस्तुष्यति, कश्चिच्च विषयेषु परहिंसां पश्यंस्तुष्यति एवं नव तुष्टयः । ८–अष्टैश्वर्याणि–अणिमा । महिमा । गरिमा । लघिमा । प्राप्तिः । प्राकाम्यम् । ईशित्वम् । वशित्वञ्चेति

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

—:※:—

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { ९ मास

(पृष्ठ ११८ से आगे "ईश्वर और उस की प्राप्ति")

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान ये ५ नियम हैं ॥

३–आसन–स्थिरसुखमासनम् ।१।२।४६॥

स्थिरसुख पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रयासनादि बहुत प्रकार के हैं ॥

४–प्राणायाम– तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥१।२।४९॥

आसन ठीक होने पर श्वास प्रश्वास की गति रोकना प्राणायाम है॥

५-प्रत्याहार-स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।१।२।५४॥

अपने विषय में न लगने से चित्तका स्वरूप में स्थित होना इसी प्रकार इन्द्रियों का भी, प्रत्याहार है ॥

६-धारणा–देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।१।३।१॥

चित्त का किसी एक देश में ठहराव, धारणा है ॥

७-ध्यान–ततः प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।१।३।२॥

तब प्रत्यय (प्रतीति) का एकरस रहना, ध्यान है ॥

८-समाधि-तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।१।३।३॥

वही [ध्यान] जब ऐसा होजाय कि अपने आपको भूलासा, केवल परमात्मा ही के स्वरूप में मग्न होना, समाधि कहाता है॥

अब आप विचार सक्ते हैं कि जिस परमात्मा की प्राप्त्यर्थ हमको अहिंसादि ५ यम, शौचादि ५ नियम और आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि जैसे कठिन कार्य्यों की आवश्यकता है, उसकी प्राप्ति का उपाय किसी मूर्तिविशेष को मानना वा कबूतरी के से आसनों की ही भरमार करके अपने को मुद्राज्ञानी और योगपारंगत समझना कैसी बड़ी भूल है! ॥

अब हम उपाय वर्णन को छोड़ते हैं क्योंकि करने वाले को तो इन उपायों में से केवल एक का भी उद्योग करे तो बहुत है और न करने वालों को इस से सहस्त्रगुण लिखने पर भी कोई लाभ नहीं। इसलिये उसकी अप्राप्ति के कारणों पर आते हैं॥

अप्राप्ति के कारण ॥

ईश्वर की अप्राप्ति के कारण, यद्यपि यही हैं जो कि प्राप्ति के उपायोंका न करना। तथापि संक्षेप से उनके वर्णन करने से समझने में सुगमता मिलेगी॥

१-हमको ऐसा अभ्यास नहीं जो अपने आत्मासे किसी पदार्थका अनुभव करें। अभ्यास न होने का कारण यह है कि हम सब विषयों का ग्रहण इन्द्रियों ही से करते रहते हैं। परन्तु जिस प्रकार इन्द्रियों के सामने न आये हुवे विषयों का कुछ नहीं तो मन से ही हम पीसना पीसने लगते हैं, इस प्रकार इन्द्रियों से विषय न किये जा सकने योग्य परमात्मा के लिये हम मनमें भी जगह नहीं देते, किन्तु बाहर ढूंडते फिरते हैं। और जैसे जब कोई विषय इन्द्रियों को नहीं प्राप्त होता तो मनसे प्राप्त करने लगते हैं और मेघदूतके(स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च) श्लोकके अनुसार स्वप्न में ही मनके लड्डू खूब मीठे बनाते हैं, इसी प्रकार जब परमात्मा मनसे प्राप्त नहीं होते तो हम कुछ ही पीछे हटकर आत्मा ही से उसे प्राप्त करने का उद्योग क्यों नहीं करते ॥

२-हमारा यह स्वभाव है कि जो पुरुष हमारा विरोधी है अर्थात् वे काम करता है जिन्हें हम बुरा समझते हैं तो वह पुरुष हमारे पास बैठने योग्य नहीं रहता और जो चाहता है कि उसे हमारा संग प्राप्त हो उसे हमारी अनुकूलता धारण करनी पड़ती है। परन्तु हम ऐसा नहीं करते कि परमेश्वर की उपासना (सङ्गति) में रहना चाहते हैं तो सर्वथा उस की आज्ञा वेद के अनुकूल चलकर अपने आप को परमात्मा के अनुकूल बनावें ॥

३-हम में से जो कोई ईश्वरकी आज्ञा वेदके अनुकूल चलने का व्रत धारण करते हैं और संसार की बड़ी से बड़ी आपत्तियों को झेलकर भी वैदिक धर्म का झण्डा हाथ से नहीं छोड़ते उन्हें भी जो ईश्वरप्राप्ति से विमुखता रहती है उन्हें मैं समझता हूं कि परमात्मा किसी भीतरी दूषण से अयोग्य समझते हैं। और वे दूषण इस प्रकार के हैं जैसे कि कोई पुरुष केवल इस कारण सांसारिक विरोधों के होने पर भी वैदिक धर्मके झण्डे को न छोड़े कि ऐसा करने से लोग

मुझे कायर डरपोक समझेंगे और मेरा पराजय और उनका जय समझा जायगा, तौ भला वह ईश्वर का भक्त तौ नहीं किन्तु अपना भक्त है कि मैं करूं या कहूं सो होय। नहीं २ उसे चाहिये था कि वह केवल इसी कारण उस झगडे को न छोड़ता होता कि यह झगडा ईश्वर का झगडा है, उसका छोड़ना ईश्वर का छोड़ना है, तौ अवश्य वह ईश्वर का प्यारा बनता और उसे उस की प्राप्ति होती परन्तु ऐसा न करना वा न कर सकना ही सब कुछ करते भी उसके प्राप्त न होने का कारण है॥

४–प्रायः बुद्धि सूक्ष्म होती है और अच्छे सूक्ष्म विषयों का विचार करने के योग्य भी पुरुष पाये जाते हैं और अशुभ कर्म चोरी करना असत्यभाषण आदिरहित भी पाये जाते हैं, सज्जनता भी है, क्रूरता नहीं, हिंसा नहीं करते, मद्यादि निकृष्ट पदार्थ नहीं पीते खाते, कुसङ्ग में नहीं रहते, आलसी और प्रमादी भी नहीं हैं, मूर्ख और जड़ भी नहीं हैं, बूढ़े भी नहीं हैं, युवा हो कर स्त्रीविषयी भी नहीं हैं, इतने पर भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं किन्तु कहीं २ घोर नास्तिकता है। कारण यह है कि उस की प्राप्ति के लिये जो परम पुरुषार्थ की आवश्यकता है वह नहीं किया। माना कि १५ वर्ष भारत वर्ष में विद्याध्ययन किया हो, फिर इंगलेंड सिधारे हों, प्राणान्त परिश्रम करके देह को ऐसा जर्जर कर दिया हो जिसे देखते हुवे भी डर लगता हो, पढ़ते२ आखें चश्मे से भी काम न देती हों, ऐसे पुरुष बहुत प्रकारकी आचरणसम्बन्धी बुराईसे दूरहोकर भी, बुद्धिमान् होकर भी, ईश्वरप्राप्त्यर्थ यदि कोई श्रम करते हैं तौ केवल यही कि किसी आस्तिक पुरुष से दो चार घण्टे बात चीत करके भेद समझ में आजावे और ईश्वर का साक्षात् होजावे। महाशयो! जितना श्रम प्राकृत वस्तुओं की खोज में किया है जो ईश्वर से बहुत स्थूल हैं उस से अधिक की आवश्यकता है और हम तौ उतना भी नहीं करते फिर क्यों आशा करते हैं कि हमें ईश्वरप्राप्ति हो जावे, हमें आस्तिक पद प्राप्त हो जावे, हम भटके न फिरें, इत्यादि। और इस प्रकार थोड़े मिनटों में आस्तिक, ईश्वरभक्त, जीवन्मुक्त आदि बनने की इच्छाकरते हैं तौ इस बड़े पद से नीचे के पदों की प्राप्ति के लिये क्यों प्राणान्त परिश्रम कर पढ़ते हैं, क्यों आंखों और आन्तों के काम से बेकार बन जाते हैं, क्यों समुद्र पार जाते हैं, क्यों डालियें और भोज देते फिरते हैं, क्यों एक दिन के सूर्य्यग्रहण को देखने के लिये संसार भर के मनुष्य कई २ सहस्र मील के मार्ग चल कर एक घटना के देखने का श्रम उठाते हैं, क्यों कलाभवनों को स्थापित कर लक्षों रुपया व्यय कर शताब्दियों पर्यन्त एक २

नक्षत्रादि का चित्र खींच२ कर भाग्यवश कभी कठिन से किसी एक विषय के ज्ञान में कृतकार्य होते हैं ? यह सब किसी पुरुष से बात चीत वा शास्त्रार्थ करके क्यों नहीं प्राप्त करलेते । यदि ये सब विषय केवल बातों से नहीं प्राप्त होसक्ते तौ ईश्वर की प्राप्ति में केवल बातों के सहारे सफलता की आशा क्यों की जाती है ? यदि सफलता हो वा न हो केवल आशा पर-विमान में बैठ कर अदृष्टपार अन्तरिक्ष में जाने का साहस करके पृथिवी से उत्तरीय ध्रुव और दक्षिणीय ध्रुवों के देखने की दीर्घ यात्रा के विना किये उस २ पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है तौ सब से उत्कृष्ट, उच्च, श्रेष्ठ, सर्वदुःखों से रहित, अनामय पद की प्राप्ति के लिये प्राचीन ऋषि मुनियों की भान्ति श्रम की आवश्यकता है; जो नहीं किया जाता है ॥

५—हम जिस प्रकार एक विषय की प्राप्ति में लगते समय दूसरे सब विषयों का ध्यान छोड़ देते हैं । यदि हम चाहें कि हम ध्यानपूर्वक एक सूक्ष्म विषय के पुस्तक को भी पढ़ते रहें और साथ ही किसी का राग वा तान भी सुनते रहें तौ या तौ राग वा तान ही अच्छे प्रकार सुन सक्ते हैं या वह पुस्तक ही पढ़ सक्ते हैं, दोनों साथ नहीं । इसी प्रकार या तौ हम परमात्मा ही का ध्यान करलें वा विषमय विषम विषयों ही के विषय में कृतकार्य हो जायं । दोनों एक साथ कैसे सधें । परन्तु हम सांसारिक धन्धों में ऐसे लिपटे हैं कि सन्ध्या करने प्रथम तौ बैठते ही नहीं और बैठते हैं तो संसार भर के विचार हमें उसी समय आकर घेरते हैं फिर हम जगत्पिता के ध्यान में कैसे मग्न हों ॥

६—हम ने उसे अन्तरात्मा में छोड़ बाहर ढूंढते फिरना आरम्भ कियो इस कारण भी वह प्राप्त नहीं होता । आप कहेंगे कि क्या बाहर नहीं है? केवल भीतर ही है ? जब कि वेद कहता है कि—

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः । यजुः ।४०।२॥

वह सब के भीतर और बाहर भी है । तौ जो लोग बाहर ढूंढते हैं वे अज्ञानी क्यों हैं? उत्तर—महाशयो! "वह इस सब के बाहर और भीतर है" इस का प्रयोजन बड़ी गंभीर दृष्टि से देखिये तौ समझ में यह आवेगा कि इस सब जगत् के भीतर भी परमात्मा है अर्थात् जहां तक जगत् है वहां तक भी है और इस सब जगत् के बाहर भी परमात्मा है अर्थात् वह इस जगत् के बराबर ही नहीं किन्तु जगत् जहां नहीं है वहां भी परमात्मा है । ऐसा ही यजुः अध्याय ३१ मं० ३ में भी लिखा है कि—

हम को सदर मेरठ के आर्य्यसमाज द्वारा निम्न लिखित विज्ञापन मिला है उसको शुद्ध वा अशुद्ध याथातथ्य प्रकाशित करके और यथार्थ स्वामी दयानन्द-सरस्वतीकृतभाष्य और महीधरभाष्य तथा उस का भाषा में तात्पर्य लिख कर सर्वसाधारण के सामने रखते हैं जिस से यह विदित हो जाय कि कौन सा बुरा वा अनर्थ है ॥

स्वामी हरदयालु के नाम से छपा विज्ञापन यह था:—

"दयानन्दरचित यजुर्वेद भाष्य का संक्षिप्त नमूना"

(१)—अध्या० ६ मंत्र १४ पृष्ठ ५०० पं० १७ से॥ हे शिष्य तेरी जिससे नाड़ी आदि बांधी जाती हैं उस नाभी को पवित्र करता हूं तेरे जिस से मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को पवित्र करता हूं तेरी जिस से रक्षा कीजाती है उस गुदेन्द्रिय को पवित्र करता हूं ॥ (२) अध्या १३ मं० ४९ काभावाअर्थ०पृ०१३६३पं०१ जंगल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजाकी हानि करैं वे मारने योग्य हैं ॥ (३) अध्या० २२ मंत्र ४३ के पदार्थमें॥ (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के बीच से लेने योग्य पदार्थ का चिकनाभाग अर्थात् घी दूध आदि उद्धार किया हुवा लेवें ॥ (४) अध्या २१ मंत्र ६० पृष्ठ ११५ पं० ३ से। प्राण और अपान के लिये दुःख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु सें। वाणी के लिये मेढा से। परम ऐश्वर्य्य के लिये बैलसे भोग करैं। सुन्दर चिकने पशुओं के प्रति पचाने योग्य वस्तुओं का ग्रहण करै ॥ (५) अध्या २५ पृष्ठ ३७६ पं० ५० से (हेमनुष्यो) तुम मांगने से पुष्टि करने वाले को स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्तमान अंधे सांपो को गुदेन्द्रियों के साथ वर्तमान विशेष कुटिल सर्पों को (आंतोसे) जलों को नाभी के नीचे के भाग से अण्डकोश को आंडों से घोडा को, लिङ्ग और वीर्य से संतान को पित्त से भोजनोंको पेटके अंगों को गुदेन्द्रिय से और शक्तियों से शिखावटों को, निरन्तर लेओ ॥ विद्वज्जनों को विदित हो कि यह अर्थ प्राचीन भाष्यों के विरुद्ध है वा नहीं। "स्वामीहरदयाल तान्तरिक सदर मेरठ"

अब हम मूलमन्त्र और (उस पर छपे स्वामीजी के संस्कृतभाष्य को छोड़ कर) उसी पर की यथार्थ भाषा टीका को उद्धृत करते हैं:—

१—वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि। यजुः ६। १४॥

पदार्थः—हे शिष्य! मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाचम्) जिस से बोलता है उस वाणी को (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूं (ते) तेरे (चक्षुः) जिस से देखता है उस नेत्र को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूं (ते) तेरी (नाभिम्) जिस से नाडी आदि बान्धे जाते हैं उस नाभि को (शुन्धामि)

पवित्र करता हूं (ते) तेरे (मेढ्रम्) जिस से मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (पायुम्) जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूं।

नोट—मनु ने भी लिखा है कि "शिक्षयेच्छौचमादितः" अर्थात् गुरु प्रथम शिष्य को शौच सिखावे। और यही प्रयोजन इस मन्त्र का है कि बाहरी भीतरी दोनों प्रकार की पवित्रता शिष्य को सम्पादन करावे। पवित्रता तभी हो सक्ती है जब कि इन्द्रियों के व्यापार सद्धर्मानुकूल हों और वे स्वच्छ रखाई जावें। पायु आदि इन्द्रियों के रक्षा आदि धातुज अर्थ हैं। क्योंकि वेद का यौगिक अर्थ लेना होता है॥

अब महीधर का अर्थ सुनियेः—

पत्नी पशुसमीप उपविश्य मृतस्य पशोः प्राणान्मुखादीन्यष्टौ प्राणायतनानि प्रतिमन्त्रं शुन्धति शोधयति अद्भिः स्पृशति० हे पशो अहं ते तव वाचं वागिन्द्रियं शुन्धामि शोधयामि। एवमग्रेऽपि प्राणं प्राणवायुं प्राणेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रियं श्रोत्रेन्द्रियं नाभिं नाभिच्छिद्रं मेढ्रं लिङ्गम् पायुं गुदं चरन्तिगच्छन्त्येभिरितिचरित्राः पादाः एवं त्वदीयानि सर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि॥

अर्थ—यजमान की स्त्री पशु के समीप बैठ कर मुर्दा पशु के प्राण अर्थात् मुखादि ८ प्राणायतनों को एक २ मन्त्र से शुद्ध करती अर्थात् जल से धोती है। हे पशु! तेरी वाणी इन्द्रिय को शोधती हूं। इसी प्रकार आगे भी प्राण, आंख, कान, नाभि, उपस्थ, गुदा, और खुरों को इस प्रकार तेरे सबइन्द्रियों को शोधती हूं॥

नोट— स्वामीजी ने तो "विविध शिक्षाओं से गुरु शिष्य के सब अङ्गों को पवित्र धर्मानुकूल करे" यह लिखा और महीधर ने यज्ञ जैसे पवित्र कर्म में पशु मारकर उस के अङ्गों को यजमान की स्त्री से धुलवाया। अब पाठक जिस अर्थ को पवित्र समझें, मानें॥

२—इमᳬ साहस्रᳬ शतधारमुत्सं व्यच्यमानᳬसरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने माहिᳬसीः परमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥ यजुः १३।४९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन्! तू (जनाय) मनुष्यादि प्राणी के लिये (इमं साहस्रम्) इस असंख्य सुखोंके साधन (शतधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालन के योग्य (उत्सम्) कुए के समान रक्षा करने हारे वीर्यसेचक बैल और (घृतं

दुहानाम्, अदितिम्) घी को, पूर्ण करती हुई, नहीं मारने योग्य गौ को (माहिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस (आरण्यम्) वनके रहने वाले (गवयम्) गौके समान नीलगायसे खेती को हानि होती हो तो उसको (अनुदिशामि) उपदेश करता हूं (तेन) उसके मारने से सुरक्षित अन्नसे (परमे, व्योमन्) उत्कृष्ट, सब में व्यापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत व्यापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुवा तू (तन्वः) शरीर के मध्य में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक (तम्) उस (गवयम्) रीझ को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस (ते) तेरे शत्रुका (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें (तम्) उसको भी (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥

नोट—तात्पर्य्य यह है कि राजा का धर्म है कि गवादि उपकारक जीवों की रक्षा और जङ्गली दुष्ट पशुओं का दमन करे ॥

महीधर का अर्थ—

हे अग्ने परमेव्योमन् उत्कृष्टेस्थाने स्थितमिमं गोरूपं पशुं त्वं माहिंसीः । कीदृशं साहस्रं सहस्रमूल्यार्हं सहस्रोपकारक्षमं वा । शतधारं शतसंख्याकक्षीरधारायुतमतएवोत्सम् उत्सः कूपः तत्सदृशम् उत्सइवोत्सस्तं बहुस्रोतसमित्यर्थः । सरिरस्य मध्ये एषु लोकेष्वन्तः व्यच्यमानं जनैर्विविधमच्यमानमुपजीव्यमानम् । इमे वै लोकाः सरिरमितिश्रुतेः । जनाय सर्वलोकाय घृतं दुहानां घृतकारणं क्षीरं क्षरन्तीम् । अदितिमखण्डिताम् । ते तवारण्यं गवयं गोसदृशं पशुविशेषमनुदिशामि । शिष्टमुक्तम् ॥

अर्थ—हे अग्ने ! उत्तम स्थान में स्थित इस गौ पशु को तू मत मार । यह कैसी है कि सहस्र मूल्य योग्य वा सहस्र उपकार में समर्थ है । सहस्र दुग्ध की धाराओं से युक्त है इसीलिये यह कूप के समान बहुत स्रोतों वाला दूध का कुआ है । इन लोकों में मनुष्य बहुत प्रकार इस से उपजीवन करते हैं । सरिरं इन लोकों का नाम है । ७ । ५ । २ । ३४ सर्व लोक के लिये घृत के कारण दूध को देती है । अखण्डित है । तुझे गौ के तुल्य गवय नाम पशुविशेष को अनुदेश करता हूं । शेष ऊपर कह चुके हैं (कि उस के भक्षण से शरीर को पाल) ॥

नोट—विचारना योग्य है कि स्वामी जीने गौ की रक्षा और नीलगवय को दण्ड लिखा और महीधर ने गौ की रक्षा और गवय को मारना प्रत्युत उस का खाना लिखा है । थोड़ा अन्तर है ?

३—इस में पं० हरदयालु जी ने अध्याय का पता अशुद्ध छपाया है यह (वैगरस्य) पाठ २२ के ४३ में नहीं किन्तु २१ के ४३ में है । जिन लोगों को

थोड़ा भी बोध है वे जानते हैं कि (छागस्य) इस पद का अर्थ बकरे का ही हो सक्ता है बकरी का नहीं। परन्तु यदि यह शङ्का हो कि बकरा दुग्ध नहीं देसक्ता बकरी देसक्ती है। तौ उत्तर यहहै कि क्या कोई "भूमौमनुष्यानिवसन्ति" पृथिवी में मनुष्य रहते हैं। इस से मनुष्य शब्द से स्त्रियों का ग्रहण छोड़ सक्ता है? कभी नहीं। इसी प्रकार बकरा लिखने से भी छागजाति भर विवक्षित है, पुंल्लिङ्ग मात्र विवक्षित नहीं। महीधरभाष्य में भी छाग का अर्थ बकरा ही लिखा है॥

४-इस का तात्पर्य यह है कि प्राण अपान वायु हैं और बकरा भी वातप्रकृति है इसलिये बकरी का दुग्ध प्राणाऽपानादि वायु का सहायक है। मेंढे के दुग्ध से स्वर सुधरता है। गाय बैल की जाति कृष्यादि द्वारा ऐश्वर्य बढ़ाती है। यदि कोई पक्षपाती इस "पशुओं से भोग करने" का कुछ और अर्थ समझे तौ क्या ठाकुर जी को भोग लगाते समय भी भोग शब्द अपने अर्थ को छोड़ देगा? कदापि नहीं। धन का भोगना, राज्य का भोग इत्यादि शतशः व्यवहारों में भोग शब्द के पालन भोजनादि अर्थ का ग्रहण होता है क्योंकि "भुज" (धातु) पालन और अभ्यवहार अर्थ में है॥

५-देखो उसी पृष्ठ० ३७६ पं० १४ से "भावार्थ-जिस २ से जो २ काम सिद्ध होता है उस २ अङ्ग वा पदार्थ से वह २ कामसिद्ध करनाचाहिये"॥ याचना शक्ति पित्त वीर्य आदि अपने पुरुषार्थ और अङ्गोंसे तथा सर्प और स्थूलगुदावाले सर्प घोड़ेआदि अन्य जन्तुओं से जो २ उपकार ग्रहण किया जासके वह २ ग्रहण करने की शिक्षा मन्त्र में है। कोई यह पूछने लगे कि इन सर्पादि से क्या २ उपकार किस २ प्रकार लिया जावे यह भी स्वामी जी ने क्यों नहीं लिखा, तौ उत्तर यह है कि इस प्रकार एक २ मन्त्र के एक २ असाक्षात् विषय को साक्षात् करने के लिये तौ तहकीकात के लिये बड़े २ महकमे खड़े करने पड़ते, जब उन के परिणाम ज्ञात हो लेते तब स्वामी जी वेदभाष्य को पूर्ण करते!॥

कृपा करके इस मन्त्र का महीधरभाष्य भी पढ़ियेः—

वनस्पतिना छागमेषर्षभैरश्व्यादीनामुपस्थानं कृतम्। तत्कथं जायते तत्राह—अश्व्यादयो मेदस्तः मेदो वपामारभ्य तान् छागादीन् अदन् अभक्षयन्०

अर्थ—वनस्पति ने बकरा मेंढा व बैल से अश्वि आदि का उपस्थान किया। वह कैसे होता है सो कहते हैं कि अश्वि आदि ने चरबी से आरम्भ कर के उन छागादिकों को खाया०॥

नोट—अब विचार कीजिये। स्वामी जी ने तौ यौगिक अर्थ से मेदः की चिकनी वस्तु दुग्ध घृतादि अर्थ लिया है और महीधर ने मेदः से चरबी (वपा) का अर्थ लिया है। बताओ कि देवतों का भोजन घृतादि है वा "वपा"?

सम्पादक-

। योगशास्त्रीयविभूतिपादस्थे ४४ सूत्रे तद्व्याख्यायाञ्चोक्तानि । एवं पञ्चाशंत प्रत्यया अराः ॥

अराणां दार्ढ्याय ये प्रत्यराः प्रतिविधीयन्ते ते चास्मिन्संसारचक्रे विंशतिसंख्याः । दशेन्द्रियाणि तद्विषयाश्च दश, एवं विंशतिः ॥

षड्चाष्टकानि कीलकवदत्रार्पितानि तानि चेमानि १—प्रकृत्यष्टकं यथा-भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च॥ अहंकारइतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥१॥ इति गीतायाम्। २-धात्वष्टकं यथा-त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिशुक्राणि। ३-सिद्धयष्टकं यथा-परकायप्रवेशः जलादिष्वसङ्गः उत्क्रान्तिः ज्वलनम् दिव्यश्रवणम् आकाशगमनम् प्रकाशावरणक्षयः भूतजयश्चेति । योगशास्त्रीयविभूतिपादस्थसप्तत्रिंशत्तमसूत्रादारभ्य चतुश्चत्वारिंशत्तमसूत्रावधि वर्णितम् । ४-भावाष्टकं यथा-धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्य्याऽधर्माऽज्ञानाऽवैराग्याऽनैश्वर्य्याख्यम् । ५-अष्टौ वसवो देवाष्टकम् । ६-गुणाष्टकं यथा—दया क्षमाऽनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहा चेति । एवं षडष्टकानि ॥

भा०-पूर्वोक्त काल स्वभाव नियति आदि ७ कारणों सहित परमात्मा को चक्ररूप में वर्णन करते हैं। इस चक्र का नाम संसारचक्र है और दूसरा नाम ब्रह्मचक्र भी है परन्तु "ब्रह्मचक्र" का समास यह है कि "ब्रह्म का चक्र" ब्रह्म और चक्र में स्वस्वामिभावसम्बन्ध है अर्थात् इस चक्र का स्वामी (मालिक) ब्रह्म परमात्मा है और स्व (मिलकियत) चक्र है। न कि कार्य्यकारण सम्बन्ध। क्योंकि ब्रह्म का कोई कार्य्य नहीं (न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते) वह चक्र इस प्रकार वर्णन किया है कि रथचक्र के समान ब्रह्मचक्र में भी किन्हीं बातों का साधर्म्य घटाते हैं:-

(तम्) उस (एकनेमिम्) एक पुट्टि वाले (त्रिवृतम्) तीन पट्टियों से मंढे (षोडशान्तम्) १६ छोर वाले (शतार्धारम्) ५० अरा वाले (विंशतिप्रत्यराभिः) २० बीच की प्रत्यराओं से जड़े हुवे (अष्टकैः) आठ२ के समुदाय [सैट] (षड्भिः) छः गुच्छों से जटित (विश्वरूपैकपाशम्) काम रूप एक फांस वाले (त्रिमार्गभेदम्) तीन मार्गों के भेद वाले (द्विनिमित्तैकमोहम्) दो निमित्त और एक मोह वाले को [देखा] 'अपश्यन्' इस पूर्व श्लोक में आई क्रिया की अनुवृत्ति है ॥

जैसे रथ के पहिये में एक नेमि पुट्ठी होती है जो कि पहिये के चारों ओर की गोलाकार लकड़ियों के जोड़ से बनती है इसी प्रकार इस ब्रह्म के

बनाये चक्र में एक प्रकृति रूपिणी नेमि है॥

जैसे रथ के चक्र में लोहे की पट्टी मंढ़ी रहती हैं वैसे इस में सत्त्व रजः तमः इन तीन गुणों की पट्टी हैं॥

जैसे रथचक्र की नाभि का काष्ठ बाहर निकला रहता है उस के अवयव उस का अन्त होते हैं वैसे ही प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न में चतुर्थ श्लोक में गिनायी हुईं प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम। ये १६ कला जिन को संस्कृत भाष्य में प्रमाणपूर्वक लिख आये, इस के अन्त हैं॥

जैसे रथचक्र में नाभि से नेमि तक बीच में पखड़ी से अरे लगते हैं वैसे इस के ५० अरे हैं। उन में ५ अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश ये पांच क्लेश योगशास्त्र के साधनपाद के ३ सूत्र में लिखे हैं, २८ अशक्ति हैं जिन के ये नाम हैं-गुदा उपस्थ हाथ पांव वाणी ये ५ कर्मेन्द्रिय, कान त्वचा आंख जीभ नाक ये पांच ज्ञानेन्द्रिय ग्यारहवां मन इन की ११ अशक्ति अर्थात् क्रमशः-उत्सर्गाऽशक्ति आनन्दाऽशक्ति करणाऽशक्ति गमनाऽशक्ति वचनाऽशक्ति श्रवणाशक्ति स्पर्शाशक्ति दर्शनाशक्ति, चखने की अशक्ति, सूंघने की अशक्ति और विचार की अशक्ति ये ११ अशक्ति हुईं, ९ तुष्टि जिन का आगे वर्णन करेंगे उन के न होने से ९ प्रकार की अशक्तियां आठ ८ ऐश्वर्य्य जिन का आगे वर्णन करेंगे उन के न होने से ८ प्रकार की अशक्तियां ये सब ११। ९। ८ मिला कर २८ अशक्तियां है। ९ तुष्टि उन में १ कोई तो प्रकृति के ज्ञानमात्र से तुष्ट हो जाता है। २ कोई संन्यासचिह्नों के धारण से तुष्ट हो जाता है। ३ कोई यह समझ कर तुष्ट हो जाता है कि काल ही सब कुछ कर लेता है। ४ कोई भाग्य के भरोसे पर तुष्ट हो जाता है। ५ कोई यह समझ कर चुप बैठ रहता है कि विषयों का भोग अशक्य है। ६ कोई विषयार्थ कमाये धन की रक्षा में कष्ट देख कर तुष्ट हो जाता है। ७ कोई यह समझ कर तुष्ट हो जाता है कि मेरे भोग चाहे जितने हों परन्तु उस से भी अधिक अन्यों के पास हैं। ८ कोई इस कारण तुष्ट हो जाता है कि विषयों से तृप्ति तो होती ही नहीं। ९ कोई विषयभोग में दूसरों की हिंसा को देख उपरत हो बैठता है इस प्रकार ९ तुष्टि हुईं। ८-ऐश्वर्य्य हैं यथा-अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व और वशित्व ये योगशास्त्र के समाधिपादस्थ ४४ वें सूत्र और उस की व्याख्या में वर्णन किये हैं। इस प्रकार ५ क्लेश २८ अशक्ति ९ तुष्टि ८ ऐश्वर्य्य मिल कर ५० अरे इस चक्र के हैं॥

जिस प्रकार रथचक्र में अरों के बीच २ में उन की दृढ़ता के अर्थ प्रत्यरे लगाये जाते हैं उसी प्रकार इस चक्र में २० प्रत्यरे हैं वे ये हैं कि-५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय और दशों इन्द्रियों के १० विषय, सब २० प्रत्यरे हुवे ॥

जिस प्रकार रथचक्र में कीलक समुदाय लगते हैं इसी प्रकार इस चक्र में छः अष्टक हैं । १ प्रकृति का अष्टक जैसे-पृथिवी जल तेज वायु आकाश मन बुद्धि और अहङ्कार ये गीता में लिखे हैं । २ धात्वष्टक जैसे-त्वचा चर्म मांस रुधिर मेदः मज्जा अस्थि और वीर्य । ३—सिद्ध्यष्टक जैसे-परकायप्रवेश, जलादि में असङ्ग, उत्क्रान्ति, ज्वलन, दिव्यश्रवण, आकाशगमन, प्रकाशावरणक्षय और भूतजय ये योगशास्त्र के विभूतिपाद के ३७ वें से ४३ वें सूत्र तक लिखे हैं । ४ भावाष्टक जैसे-धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य । ५ देवाष्टक—आठवसु । ६ गुणाष्टक जैसे—दया क्षमा अनिन्दा शौच अनायास मङ्गल अकृपणता और अस्पृहा । इस प्रकार ६ अष्टक हैं ॥

जैसे रथचक्र में फांस (धांस) लगती हैं उसी प्रकार इस चक्र में कामरूप धांस लगी है ॥

जिस प्रकार रथचक्र किसी निमित्त से चलाया जाता है इसी प्रकार यह चक्र भी पाप पुण्य वा राग द्वेषादि द्वन्द्वों के फलभोगार्थ चलाया गया है ॥

जिस प्रकार रथचक्र में चिकनाई होती है उसी प्रकार इस चक्र में भी एक मोह नामक है ॥ ४ ॥

पूर्वत्र चक्ररूपेण वर्णयित्वोत्तरत्र नदीरूपेण वर्णयति चक्ररूपेण नदीरूपेण च भ्रमणात्मकत्वात्प्रवाहरूपत्वाच्च चलत्वमुच्यते वैराग्यार्थम्—

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम् ।
पञ्चावर्त्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥ ५ ॥

पदपाठः—पञ्चस्रोतोम्बुम्२ । पञ्चयोन्युग्रवक्राम्२ । पञ्चप्राणोर्मिम्२ । पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्२ । पञ्चावर्त्ताम्२ । पञ्चदुःखौघवेगाम्२ । पञ्चाशद्भेदाम्२ । पञ्चपर्वाम्२ । अधीमः क्रि० ॥ ५ ॥

(पञ्चस्रोतोम्बुम्) पञ्च स्रोतांसि पञ्च ज्ञानेन्द्रियच्छिद्राणि बुद्धिस्रवणद्वाराणि अम्बु यस्यां सा ताम् (पञ्चयोन्युग्रवक्राम्) पञ्चभिर्योनिभिः कारणैः स्थूलमहाभूतैरुग्रां वक्रां च (पञ्चप्राणोर्मिम्) पञ्चप्राणाः प्राणाऽपानसमानव्यानोदा-

नीरूपा:ऊर्मयो यस्यां सा ताम् (पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्) पञ्चज्ञानेन्द्रियैः पञ्चबुद्धयो ज्ञानानि तेषामादि मनः मूलं यस्याः सा ताम् (पञ्चावर्त्ताम्) पञ्चशब्दादयो विषयाः आवर्त्ता यस्यां सा ताम् (पञ्चदुःखौघवेगाम्) पञ्चदुःखानि जन्मदुःखं मृत्युदुःखं जरादुःखं व्याधिदुःखं गर्भदुःखञ्चेति तेषामोघः समूहः स एव वेगो यस्याः सा ताम् (पञ्चाशद्भेदाम्) पूर्वश्लोकभाष्योक्ताः ५० प्रत्ययभेदा एव भेदा यस्याः सा ताम् (पञ्चपर्वाम्) पञ्चाऽविद्यादयः क्लेशाः पर्वाणि यस्याः सा ताम् (अधीमः) जानीमः ॥

ते श्वेताश्वतरादयो महर्षयो ध्यानयोगानुगताः सन्तः पूर्वं चक्ररूपेणाऽस्थिरतामस्य संसारस्य पश्यन्तो नदीरूपेणापि जानन्ति। यथा नद्यां जलं प्रवहति तथास्यां ब्रह्मनद्यां=ब्रह्मणोनद्याम् संसारात्मिकायां पञ्चज्ञानेन्द्रियजन्यं ज्ञानमेव जलरूपेण प्रवहति । यथा च नद्यां वक्रतोग्रता च भवति तथास्यां महाभूतवैषम्यमेवोग्रत्वं वक्रत्वं च । यथा नद्याऊर्मयः पुनः पुनः उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च तथैवास्यां प्राणानां गमनाऽऽगमनादिव्यापारः प्रवर्त्तते । यथा नद्याः उपत्यकाधित्यकादिस्थानं मूलं भवति तथास्यामपि पञ्चबुद्धयो मूलत्वेन सन्ति । यथा नद्यामावर्त्ताः जलानांचक्रभ्रमणस्थानानि भवन्ति तथात्रापि शब्दादयो विषयाः मनुष्यादीनां भ्रमस्थानानि ज्ञानविलोपकानि वेद्यानि यत्र निमग्नो मृत्युमेवाप्नोति । यथा नद्यावेगो भवति तथास्यामपि पञ्चदुःखानां वेगोबोध्यः । यथा नद्यो यत्र तत्र भेदैर्भिन्ना जायन्ते तथेयमपि पञ्चाशत्प्रत्ययभेदैर्भिद्यते । यथा च नद्याः पर्वाणि ग्रन्थयोभवन्ति तथैवचास्यामपि पञ्च क्लेशाः पर्वाणीव विद्यन्ते ॥५॥

भा०—संसार को चक्रवत् घूमने वाला कह कर अब नदीवत् बहने वाला कहते हैं । दोनों दृष्टान्तों को वैराग्यार्थ लिखा है क्योंकि चक्र वा नदीतुल्य अस्थिर जगत् में राग नहीं करने की शिक्षा निकलती है ॥

(पञ्चस्रोतोम्बुम्) पञ्चज्ञानेन्द्रियरूपी जलवाली (पञ्चयोन्युग्रवक्राम्) ५ महाभूतों से उग्र और बांकी (पञ्चप्राणोर्मिम्) ५ प्राणरूपी लहरों वाली (पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्) ५ बुद्धियों का आदि मन जिस का मूल है (पञ्चावर्त्ताम्) ५ भंवरवाली (पञ्चदुःखौघवेगाम्) ५ दुःखों के समुदायरूप वेगवाली (पञ्चाशद्भेदाम्) ५० भेदवाली (पञ्चपर्वाम्) ५ जोड़ों वाली [नदी को] (अधीमः) जानते हैं ॥

वास्तव में संसार एक नदी है जो दिन रात्रि बहती जाती है, जिस की

कुछ भी स्थिरता नहीं। जिस प्रकार नदी में स्रोतों से पानी बहता है वैसे इस नदी में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान का जल बहता है। क्योंकि जिस मनुष्य को आंख से देखना बहुत पड़ता है उस की देखने की शक्ति उतनी ही बह जाती है जिस को बुद्धि से काम अधिक पड़ता है वह बुद्धि से काम करते २ थक जाता है मानो बुद्धि की शक्ति बह जाती है। यही दशा अन्य इन्द्रियों की है। जैसे नदी उग्र और बांकी चलती है वैसे यह नदी भी ५ महाभूतों से और उन की विषमता से बड़ी उग्र और बांकी है। जैसे नदी में लहरों की पङ्क्ति उठती हैं और दब जाती हैं, वैसे इस में भी प्राण अपान उदान समान व्यान इन ५ प्राणों की लहरें चलती हैं। जैसे नदी के प्रवाह का एक मूलस्थान होता है वैसे इस में भी ५ ज्ञानेन्द्रियों से होने वाले ५ ज्ञानों (बुद्धियों) का मूल मन नामक मूलस्थान है। जैसे नदी में भंवर पड़ते हैं वैसे इस में भी शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध रूपी ५ भंवर हैं जिन विषयों के भ्रमरचक्र में पड़ कर कुछ ठिकाना नहीं लगता। जैसे नदी का वेग होता है वैसे इस में भी जन्मदुःख, मृत्युदुःख, बुढापे का दुःख, रोगदुःख और गर्भदुःख रूप वेग है। जैसे नदी जहां तहां भिन्न (टूटी) हुई रहती है वैसे इस में भी पूर्व श्लोक में कहे ५० प्रत्ययरूप भेद (तोड़) हैं। जैसे नदी के जोड़ होते हैं वैसे इस में भी अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश रूप ५ (पर्व) जोड़ हैं ॥ ५ ॥

इदानीमुक्तसंसारचक्रे जीवात्मनोभ्रमणं, कृते च यत्ने चक्रादस्माद्विमुक्तिश्चाह—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते, अस्मिन्हंसोभ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥६॥

पदपाठः—सर्वाजीवे७ । सर्वसंस्थे७ । बृहन्ते७ । अस्मिन्७ । हंसः१ । भ्राम्यते क्रि० । ब्रह्मचक्रे७ । पृथक् अ० । आत्मानम्२ । प्रेरितारम्२ । च अ० । मत्वा अ० । जुष्टः१ । ततः५ । तेन३ । अमृतत्वम्२ । एति क्रि० ॥

(हंसः) हन्ति गच्छति जन्मान्तरं योन्यन्तरं वा स जीवात्मा (अस्मिन्) पूर्वोक्ते (ब्रह्मचक्रे) ब्रह्मणः स्वामिनश्चक्रे संसाररूपे, किंभूते—(सर्वाजीवे) सर्वेषामाजीवआजीवनमस्मिन् (सर्वसंस्थे) सर्वेषां संस्था मृत्युः प्रलयोवा यस्मिंस्तस्मिन् (बृहन्ते) बृहति (भ्राम्यते) शुभाशुभकर्मफलप्रदानाय प्रेरयित्रा परमात्मना भ्रमणं कार्यते (च) परन्तु (आत्मानम्) स्वम् (प्रेरितारम्) कर्मानुसारतो

नानायोनिषु प्रेरयितारम् (पृथक्) भेदेन (मत्वा) विज्ञाय (तेन) प्रेरयित्रा परमात्मना (जुष्टः) भक्त्या प्रीतेन प्रीतिपात्रतां नीतोऽयं हंसोजीवात्मा (ततः) पश्चात् (अमृतत्वम्) मोक्षम् (एति) गच्छति ॥

अयं हंसोजीवात्मा, अस्य चक्रस्य प्रेरयित्रा परमात्मना कर्मानुसारतोऽस्मिन्ब्रह्मचक्रे भ्राम्यते, परन्तु यदाऽयं हंसः भिन्नस्वरूपेण वैलक्षण्येन परमात्मानमात्मानं च मन्यते अर्थात् जीवात्मपरमात्मनोः स्वरूपं विजानाति तेन परमात्मना जुष्टः प्रीतिपात्रतांगतश्च भवति तदा तत्कृपया मुक्तिमेति। अद्वैतवादिनस्तु—"पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा ब्रह्मचक्रे भ्राम्यते„ इत्यन्वयं कुर्वन्ति स च पूर्वापरविरुद्धः। वक्ष्यमाणसप्तमश्लोके" अत्रान्तरं ब्रह्मविदोविदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परायोनिमुक्ताः" इति स्पष्टं भेदं विदित्वा ब्रह्मणि लीनास्तत्पराः सन्तो योनिमुक्ता भवन्तीति वक्ष्यमाणत्वात् ॥

भा०—अब इस संसारचक्र से छूटने का उपाय कहते हैं—(अस्मिन्) इस (सर्वाजीवे) सब के जीवनाधार (सर्वसंस्थे) सब का मृत्यु वा प्रलय जिस में होता है ऐसे (बृहन्ते) बड़े (ब्रह्मचक्रे) ब्रह्मचक्र में (हंसः) जीवात्मा (भ्राम्यते) घुमाया जाता है (च) परन्तु (आत्मानम्) आपे को (प्रेरितारम्) और परमात्मा को (पृथक्) भिन्न २ स्वरूप से (मत्वा) जानकर (तेन) उस से (जुष्टः) प्यार किया हुवा (ततः) तब (अमृतत्वम्) मोक्ष को (एति) पाता है ॥

यह संसारचक्र सब का जीवनाधार तथा प्रलयाधार है। परमात्मा कर्मानुसार इस में जीवात्मा को घुमाते हैं परन्तु जब कोई जीवात्मा अपने स्वरूप को और परमात्मा के स्वरूप को भिन्न २ जान लेता है और भक्ति करते २ परमात्मा का प्यारा होजाता है तब मोक्ष को प्राप्त होजाता है। अद्वैतवादी लोग इस का अन्वय उलटा करके इस प्रकार लगाते हैं कि (आत्मानं प्रेरितारं च पृथक् मत्वा भ्राम्यते) "आत्मा और परमात्मा को पृथक् मानकर भ्रमाया जाता है" परन्तु ऐसा अन्वय करना पूर्वापरविरुद्ध है क्योंकि आगे सातवें श्लोक में कहेंगे कि "अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परायोनिमुक्ताः" अर्थात् इस में (अन्तरम्) भेद को जान कर ब्रह्मवादी योनिमुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

षड्भिः श्लोकैरुक्तं कारणजातं विस्पष्टतया प्राधान्येन च त्रेधा विभज्य भोग्यभोक्तृप्रेरयितॄणां साक्षाज्ज्ञानेन यो विवेकस्तद्द्वारा मोक्षप्राप्तिमाह—

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च। अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥७॥

पदपाठः—उद्गीतम् १ । एतत् १ । परमम् १ । तु अ० । ब्रह्म १ । तस्मिन् ७ । त्रयम् १ । सुप्रतिष्ठा १ । अक्षरम् १ । च अ० । अत्र ७ । अन्तरम् २ । ब्रह्मविदः १ । विदित्वा क्रि० । लीनाः १ । ब्रह्मणि ७ । तत्पराः १ । योनिमुक्ताः १ ॥

(एतत्) किं कारणमित्यस्योत्तरभूतं कारणजातम् (उद्गीथम्) उपरिष्टादुक्तम् (तस्मिन्) कारणजाते (त्रयम्) त्रयाणां समूहः । अस्तीति शेषः । किन्तत्त्रयमित्यपेक्षायामाह—(परमं ब्रह्म) एकम् (तु) च (सुप्रतिष्ठा) शोभना प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्यायस्यां वा सा प्रकृतिर्द्वितीया (अक्षरं च) अविनाशि जीवात्मतत्त्वं चेति त्रयम् । (अत्र) एषु परब्रह्मप्रकृतिजीवात्मसु क्रमेणोक्तेषु (अन्तरम्) भेदम् (विदित्वा) ज्ञात्वा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानिनः (ब्रह्मणि) विषये (लीनाः) श्लिष्टाइव यथा लता वृक्षं श्लिष्यति तदाधारेण तिष्ठति तथा (तत्पराः) ब्रह्मपरायणाः (योनिमुक्ताः) योनिभ्यो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताभ्यो मुक्ताःभवन्तीति शेषः॥

पूर्वोक्तस्वतन्त्रपरतन्त्रभेदभिन्नं सत्सच्चित्सच्चिदानन्दभेदभिन्नं वा कारणजातं निरूप्य तत्र भेदमन्तरं विदित्वा मुमुक्षवो मुक्तिं प्रतिपद्यन्ते ॥

भा०—पूर्व ६ श्लोकों में सब कारणों और उन से बने संसारचक्र का वर्णन किया गया और जीवात्मा को कर्मानुसार इस चक्र में घूमना पड़ता है अब इस संसारचक्र से निकलने का उपाय बताते हैं—

(एतत्) यह जो (उद्गीथम्) ऊपर कहा गया है (तस्मिन्) उस में (त्रयम्) तीन का समुदाय है (परमं ब्रह्म) पर ब्रह्म (तु) और (सुप्रतिष्ठा) प्रकृति (च) और (अक्षरम्) जीवात्मा । (अत्र) इन में (अन्तरम्) भेद को (विदित्वा) जान कर (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी लोग (ब्रह्मणि) ब्रह्म में (लीनाः) चिपटे हुवे (तत्पराः) उसी में लगे (योनिमुक्ताः) योनियों छुटे [हो जाते हैं] ॥

पहले ६ श्लोकों में जो कारण कहे उन में तीन (ब्रह्म, प्रकृति, जीवात्मा) प्रधान हैं इन में जो कुछ अन्तर है उस को जानकर ब्रह्मज्ञानी विवेक से मुक्ति को पाते हैं । अर्थात् मुझ में और परमात्मा में क्या और कितना अन्तर है तथा मुझ में और प्रकृति में वा प्रकृति और परमात्मा में कितना अन्तर है, जब यह जान लेता है तब पूर्ण आस्तिक, ईश्वरभक्त, ज्ञानी और विवेकी होकर मोक्ष को पाता है ॥७॥

इदानीं प्रकृतिजीवात्मपरमात्मनां सम्बन्धमाह-

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताऽव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥८॥

पदपाठः-संयुक्तम्२। एतत्२। क्षरम्२। अक्षरम्२। च अ०। व्यक्ताव्यक्तम्२। भरते क्रि०। विश्वम्२। ईशः१। अनीशः१। च। आत्मा१। बध्यते क्रि०। भोक्तृभावात्५। ज्ञात्वा क्रि०। देवम्२। मुच्यते क्रि०। सर्वपाशैः३॥

(एतत्) पूर्वोक्तम् (क्षरम्) क्षरति विपरिणम्यतेऽवस्थान्तरं प्राप्नोति तत् प्रकृतितत्त्वम् (अक्षरञ्च) न क्षरति न विपरिणम्यते इत्यक्षरं जीवात्मतत्त्वं च (संयुक्तम्) भोक्तृभोग्यरूपेण परस्परं संमिलितम् (व्यक्ताव्यक्तम्) व्यक्तञ्चाव्यक्तं च, व्यक्तं विकारापन्नं प्रकृतितत्त्वम् अव्यक्तमविकृतं जीवात्मतत्त्वम् एतदुभयम् (विश्वम्) समस्तम् (ईशः) परमात्मा (भरते) धारयति। (च) परन्तु तेषु व्यक्ताऽव्यक्तपरमात्मस्वेकः (आत्मा) जीवात्मा (अनीशः) अल्पशक्तिमत्त्वादसमर्थः (भोक्तृभावात्) कर्मफलभोगपारतन्त्र्यात् (बध्यते) बन्धनमाप्नोति। परन्तु (देवम्) परमात्मानम् (ज्ञात्वा) (सर्वपाशैः) निखिलबन्धैः (मुच्यते)॥

अत्र स्पष्टं प्रकृतिजीवात्मपरमात्मनां भिन्नस्वरूपाणां पार्थक्येन प्रतिपादनं तत्र प्रकृतेर्विकृतिमापन्नाया भोग्यत्वं जीवात्मनश्च भोक्तृत्वं परमात्मनश्च तयोर्धारकत्वं पालकत्वञ्चोक्तम्॥८॥

अब जीव ब्रह्म और प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध का निरूपण करते हैं-

(एतत्) इस (क्षरम्) प्रकृति (च) और (अक्षरम्) जीवात्मा (संयुक्तम्) मिले हुवे (व्यक्ताऽव्यक्तम्) प्रकट और अप्रकट (विश्वम्) सब को (ईशः) परमेश्वर (भरते) धारण करता है। (च) और (आत्मा) जीवात्मा (अनीशः) विवश (भोक्तृभावात्) भोक्ता होने से (बध्यते) बन्धन में पड़ता है। परन्तु (देवम्) परमेश्वर को (ज्ञात्वा) जान कर (सर्वपाशैः) सब बन्धनों से (मुच्यते) छूट जाता है॥

इस श्लोक में स्पष्ट प्रकृति जीव ईश्वर ये तीन पदार्थ भिन्न २ निरूपण किये हैं और उन में से प्रकृति का अव्यक्त-अप्रकट से प्रकट होना और जीवात्मा का अव्यक्त-अप्रकट ही रहना परन्तु प्रकृति के कार्य्यों से संयुक्त होना और परमात्मा का इन को धारण करना बताया गया है। साथ ही यह भी बताया है कि जीवात्मा शुभाशुभ कर्मों का भोक्ता, भोगने में परतन्त्र होने से बन्धता और परमात्मा के ज्ञान द्वारा मुक्ति पाता है॥८॥

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

——:※:——

वर्ष १ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { १० मास

(पृष्ठ १२२ से आगे "ईश्वर और उस की प्राप्ति")

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि०

उस की जितनी महिमा उस के बनाये जगत् से विदित होती है उतनी ही यथार्थ में नहीं है किन्तु इस से बहुत अधिक है। उस की महिमा का एक भाग है जो जगत् से जाना जाता है। इस दशा में जब कि भीतर का तात्पर्य्य जगत् पर्य्यन्त और बाहर का तात्पर्य जगत् के बाहर भी है। तौ जो लोग उस को बाहर ढूंढना चाहते हैं वे जगत् के बाहर जाकर तौ ढूंढ ही नहीं सके किन्तु भीतर ही ढूंड सके हैं और जगत् के भीतर हृदयाकाश को छोड़ अन्यत्र ढूंढने में किसी न किसी वृक्ष पर्वत लोक लोकान्तर सूर्य्य चन्द्रादि के अन्तर्गत व्यापकपने से विराजमान परमात्मा को चिन्तन करने से जगत् के वे २ व्याप्य पदार्थ भी चिन्तन का विषय होंगे। हम पूर्व कह आये हैं कि दो विषयों को एकवार ही नहीं चीह्न सके हैं इस कारण ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि इन्द्रियां स्थूल हैं वे स्थूल व्याप्य पदार्थ में रह जाती हैं सूक्ष्म व्यापक तक नहीं पहुंचतीं। हां, यदि ध्याता जीवात्मा, ध्येय परमात्मा को अपने आप में ही ध्यान करे तौ ईश्वरप्राप्ति सुलभ है क्यों कि वहां ध्याता जीवात्मा और ध्येय परमात्मा के अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ नहीं है जो ध्यान में विघ्नकारक हो। आप कहेंगे कि ध्यान करना अन्तःकरण का काम है, जब अन्तःकरण को छोड़ हम आत्मा ही से परमात्मा का ध्यान करें तौ ध्यान काहें से करें अन्तःकरण तौ है ही नहीं ॥

३०—जड़ अन्तःकरण की सहायता विना जड़ जगत् का ध्यान नहीं कर सके यह ठीक है परन्तु परमात्मा जड़ नहीं इसलिये जड़ अन्तःकरण की सहायता विना उस का ध्यान कर सके हैं। परन्तु हम प्रायः बाहर ढूंढते हैं जहां असंख्य व्याप्य पदार्थ हम को अपने ही में बान्ध लेते हैं इस कारण हम परमात्मा को प्राप्त नहीं कर पाते ॥

७—जैसा देखने से सुनना भिन्न है सुनने से छूना भिन्न है तथा छूने से चखना भिन्न है इसी प्रकार देखने सुनने छूने और चखने से ध्यान करना भिन्न है। क्योंकि लौकिक स्थूल पदार्थों का आंख से विषय करना देखना कहाता है और कान से विषय करना सुनना कहाता है, त्वचा से विषय करना छूना, रसना इन्द्रिय से विषय करना चखना कहाता है। इसी प्रकार चित्त से विषय करना ध्यान कहाता है। इस दशा में देखना सुनना चखना छूना आदि भिन्न २ काम हैं तो कोई देखने को सुनना कहे तो अज्ञानी है वा नहीं? अथवा सुनने को चखना वा छूने को देखना आदि कहे तो अज्ञानी ही है इसी प्रकार देखने को "ध्यान" कहना भी अज्ञान है। तो जो लोग "ध्यान" के लिये आकार या रूप की आवश्यकता समझते हैं वे अज्ञानी अवश्य हुवे। क्योंकि देखने को रूप की आवश्यकता है, सुनने को शब्द की आवश्यकता है, चखने को स्वादु की आवश्यकता है। इसी प्रकार ध्यान को "वस्तु है" इतने ही की आवश्यकता है, रूप रस शब्द आदि की नहीं। परन्तु लोग ईश्वर के ध्यान के लिये रूप की आवश्यकता समझते हैं इस कारण उस की प्राप्ति नहीं होती ॥

८—ऐसे और बहुत से अज्ञान वा विपरीतज्ञान हैं जो ईश्वर की प्राप्ति के बाधक हैं ॥

अब हम उसकी प्राप्ति का फल वर्णन करते हैं—

३—ईश्वरप्राप्ति का फल ॥

यद्यपि ईश्वर की प्राप्ति का फल स्वरूपलक्षण से "ईश्वरप्राप्ति" ही है परन्तु तटस्थलक्षण से उस का फल कुछ वर्णन करते हैं। मनुष्य संसार में कितना ही सुखी क्यों न हो परन्तु कुछ न कुछ दुःख साथ में लगा रहता है। संसार के समस्त सुख, दुःखमिश्रित हैं। कोई मनुष्य यह नहीं बता सकता कि संसार का अमुक सुख ऐसा है जिस में दुःख सम्मिलित न हो। बड़े २ चक्रवर्त्ती राजा भी दुःखों से रहित नहीं किन्तु जितने बड़े उन्हें सुख हैं

उतने ही बड़े दुःख हैं । पूर्व काल में कितने ही राजा राज्य छोड़ कर तपस्वी हुवे हैं यदि राज्य में दुःख न होता तो वे उसे क्यों छोड़ते । क्योंकि मनुष्य क्या पशु पक्षी भी सुख को नहीं त्यागते किन्तु दुःख को त्यागते हैं । और कभीर जो सुख को भी त्यागता कोई देखा जाता है उस का कारण भी उस सुख के साथ मिश्रित दुःख ही है । अपने प्राणों से प्यारा कठिन से कोई पदार्थ हो सकता है परन्तु मनुष्य दुःखों से घबड़ा कर कोटिशः प्रजा पर शासन करनेवाले प्राणों को भी त्यागने को तत्पर होजाता है । इत्यादि अनेक उदाहरण हैं जो संसार को दुःखमय सिद्ध करते हैं । बस इस प्रकार के सब दुःखों का छूटना ईश्वरप्राप्ति का फल है । बहुत लोग पूछते हैं कि ईश्वर जिसे प्राप्त हुआ और जिसे नहीं प्राप्त हुआ इन दोनों में क्या विलक्षणता लोक में होती है जिस से ईश्वरप्राप्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण मिले । क्योंकि पार-लौकिक मरणानन्तर मिलने वाले मोक्ष मात्र से साधारणों की रुचि नहीं होती । उत्तर—यह ठीक है कि मरणानन्तर होने वाले मोक्ष से इतर साधा-रण मनुष्यों का सन्तोष नहीं होता । परन्तु जिस पुरुष को ईश्वरप्राप्ति होती है वह जीवन्मुक्त भी हो सकता है । वह केवल देहयात्रार्थ श्रम करता है । अन्यों से ईर्ष्या उसे नहीं रहती क्योंकि वह सब को अपना भाई समझ-ने लगता है । वह किसी देश किसी जाति के मनुष्यों में परायापन नहीं समझता क्योंकि पराये वे होते हैं जिन का पिता एक न हो । उसकी दृष्टि में सब का पिता परमात्मा एक है । क्योंकि उस ने उस का साक्षात् किया है । वह संसार के मनुष्यों के साथ द्वेष वा लड़ाई झगड़ा करना अच्छा नहीं समझता । जिस प्रकार पिता के सामने सगे भाई लड़ते हुवे पिता से डरते हैं और पिता से छिपा कर लड़ते हैं । इसी प्रकार जिन्हों ने यह जान लिया कि वह परमात्मा सब का पिता सब का अन्तर्यामी सदा सब को देखता है इस लिये उस के देखते हुवे (और सदा देखता ही है) जो आपस में लड़ेंगे उन्हें पिता दण्ड देगा । इस कारण ईश्वर की प्राप्ति का धनी पुरुष ईर्ष्या द्वेषादि से पृथक् रहता है वह निम्न लिखित वेदमन्त्र को अपना लक्ष्य बनाता है ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्य-क्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् । यजुः ४० । १ ॥

[हे पुरुष त्वम्] तेनत्यक्तेन भुञ्जीथाः कस्यस्वित् धनं मागृधः [केन त्यक्तेन दत्तेन–येन] ईशा इदं सर्वं यत् जगत्यां जगत [तत्] वास्यम्। इत्यन्वयः ॥

(यत्) जो (किञ्च) कुछ (जगत्याम्) सृष्टि में (जगत्) भङ्गुरपदार्थ है (इदं सर्वम्) यह सब (ईशा वास्यम्) परमेश्वर से बसा है (तेन) उस ईश्वर के (त्यक्तेन) दिये हुवे से (भुञ्जीथाः) भोग तू (कस्यस्विद्धनम्) किसी के धन को (मागृधः) मत ललचावे ॥

तात्पर्य्य यह है कि जो पुरुष ईश्वर को प्राप्त कर लेता है वह सदा परमात्मा की इस आज्ञा का पालन करता है कि "तू किसी के धन को मत ललचावे"। जिन लोगों को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हुई वे अन्यों के धनादि पदार्थ हरने में संकोच तो करते हैं परन्तु केवल इस भय से कि इस धनादि का स्वामी जान पावेगा तो हम को दुःख में पड़ना होगा तिस पर कोई ऐसी युक्ति निकालते हैं जिस से उस धनादि का स्वामी न जानने पावे कि किस ने मेरे धनादि का हरण किया। रात्रि दिन उस की चिन्ता में लगे रहकर इस अधम चातुरी के प्रताप से कोई न कोई रीति परधनहरणादि की निकालते हैं और तदनुसार आज कल इस प्रकार के पुरुषों की वृद्धि होती जाती है जो इसी प्रकार (ईश्वर न करे) होती रहेगी तो मनुष्य जाति को भारी दुःख में पड़ने का दुर्दिन देखना पड़ेगा। इस लिये हमारा कर्त्तव्य है, विशेष कर उपदेष्टा ब्राह्मणों का कि उस सर्वपिता सर्वसाक्षी परमात्मा की प्राप्ति के लिये स्वयं भी प्रयत्न करें और अन्यों को भी प्रेरणा करें जिस से मनुष्य जाति पातकों से बचे, कल्याण का मार्ग दीखे, घोर विपत्तियों को रोक सके। इस कारण ईश्वरप्राप्ति का बड़ा भारी फल लौकिक उन्नति के लिये भी लाभदायक है। इस के अतिरिक्त मोक्ष के विषय में तो एक पृथक् व्याख्यान कभी लिखेंगे जो ईश्वरप्राप्ति से ही होता है ॥

अब हम उस की स्तुति प्रार्थना उपासना का फल वर्णन करेंगे–

"स्तुति प्रार्थना और उपासना का फल"

स्तुति का फल तो "उपायवर्णन" के साथ कुछ लिखा है उतना ही पर्याप्त है और विशेष लिखने से भी समाप्ति तो हो ही नही सक्ती। इसलिये प्रार्थना का फल कहते हैं–

प्रार्थना–

तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि। वी॒र्य॑मसि वी॒र्यं॑ मयि॑ धेहि।
बल॑मसि॒ बलं॒ मयि॑ धेहि०। इत्यादि। यजुः १९।९॥

(तेजोऽसि) तू तेज है (तेजो मयि धेहि) तेज मुझ में धार (वीर्यमसि) तू सामर्थ्य है (वीर्यं मयि धेहि) सामर्थ्य मुझ में धार (बलमसि) तू बल है (बलं मयि धेहि) बल मुझ में धार ॥

आप कहेंगे कि जिस प्रकार कोई पुरुष धूप में बैठा है तो उस पर सूर्य्य की गरमी का प्रभाव स्वतः ही पड़ेगा चाहे वह कहे वा न कहे और जाने वा न जाने कि सूर्य्य अपनी गरमी मुझ में धारता है वा धारे। इसी प्रकार हम जो परमात्मा की व्यापकता में रहते हैं, हम पर परमात्मा के सद्गुणों का प्रभाव स्वयं भी उतना ही होगा जितना कि जानने वा प्रार्थना करने से होगा। इस लिये प्रार्थना का विशेष फल क्या होगा?

उ०—आप देखते हैं कि संसार के प्राणियों के असंख्य शब्द आप के समीप होते रहते हैं जो वायु के द्वारा आप के कान तक उसी प्रकार आते हैं जिस प्रकार आप के प्रयोजनीय शब्द आते हैं। परन्तु आप उन को सुनते हैं तब भी आप पर उन का प्रभाव इतना भी नहीं होता जिस से कि आप यह प्रतीत भी करें कि कोई शब्द आप के कान तक आया। इसी प्रकार बहुत से विना प्रयोजन के स्पर्श भी आप करते हैं जिन को चित्त के अन्य धन्धों में लगे रहने से जान भी नहीं पाते हैं कि वह स्पर्श कैसा है। जब यह दशा संसार के स्थूल शब्द स्पर्शादि की है तो परमात्मा जो सब से अत्यन्त सूक्ष्म हैं उन के सद्गुणों का प्रभाव जैसा कि प्रार्थना (जिस से चाव और उत्कण्ठा की वृद्धि होती है) के द्वारा प्रतिक्षण उन सद्गुणों के उपार्जन करने से हो सक्ता है। वैसा प्रभाव विना जाने विना प्रार्थना किये कैसे सम्भव है? कदापि नहीं॥

अब यह प्रश्न उपस्थित होगा कि उक्त दृष्टान्त से ज्ञानपूर्वक प्रभाव होते हैं अज्ञानपूर्वक वैसे नहीं होते। यह तो सिद्ध हो सक्ता है, परन्तु प्रार्थना पूर्वक कुछ विशेषता नहीं प्रतीत होती॥

उ०—प्रार्थनापूर्वक मिली वस्तु का सुख निर्धनों से पूछिये, भूखों से पूछिये, सत्य तो यह है कि विना प्रार्थना के भी और विना जाने भी वह दयालु परमात्मा हम पर सद्गुणों की वर्षा अपने एकरस स्वभाव से कर ही रहे हैं। परन्तु जिस प्रकार विना मांगे जिन्हें भूख मिटाने को रोटी मिलती है और विना मांगे वस्त्रादि सामग्री प्राप्त है वे भूखे तो नहीं रहते किन्तु "भूते" हो जाते हैं; उन का घमण्ड यहां तक बढ़ जाता है कि परमात्मा तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से उन चर्मचक्षुओं को क्या दीखेगा किन्तु माता पिता आचार्य

आदि स्थूल देहधारी पूजनीय पुरुष भी नहीं दीखते, वह माता का मान्य खोता है, पिता की पत नहीं रखता, गुरु का गौरव नहीं समझता । सदा "सिद्धोऽहं कृतकृत्योऽहम्" के घमण्ड में चूर हो जाता है । जब उसे मान्य अमान्य में विवेक नहीं रहता तब उद्दण्ड और उच्छृङ्खल होकर अकार्य करने लगता है, अमान्यों को मान्य देने लगता है, मान्यों का तिरस्कार करने लगता है, इस प्रकार विपरीत कर्मों को करते२ न जाने किस घोर विपत्ति का मुख देखने योग्य बन जाता है । इस लिये मनुष्य को योग्य है कि यदि वह नम्रता चाहता है, यदि वह नम्रभाव से परमात्मा का सुशील पुत्र बन कर सर्व प्रकार की धृष्टता दुर्जनता ईर्ष्या द्वेष मत्सरता दुःशीलताओं से बच कर सभ्य सज्जन शान्त निरहङ्कार सौम्य सुशील होकर आनन्द भोगना चाहे तो परमात्मा के शरण में अपने को जानता हुवा सदा यही विचार रक्खे कि जो२ सुख शान्ति आदि मुझे भिन्न२ मार्गों और कार्य्यों से प्राप्त हुई हैं वा होंगी वे सब यथार्थ में परमात्मा ही का प्रसाद हैं और होंगी। दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थों का दाता वही है, वही है जो गूंगे को बोलने वाला बनाता है, पगों से चलने में असमर्थ को भागने दौड़ने योग्य बनाता है । इस लिये उसी की स्तुति उस से प्रार्थना किया करे । जिस से ऐसी दशा मनुष्य की हो जावेगी कि घोर विपत्ति में, दुःख में, शोक में, दुर्जनों के साथ उन से अवसर पड़ने पर अपनी रक्षा करने में और इसी प्रकार अन्य अनेक कठिन समयों में भी वह नहीं घबरावेगा । उस परमपिता के भरोसे यदि वह पाप का अनुष्ठान नहीं करता है और इस कारण जानता है कि वह मेरा रक्षक है तो चाहे जैसा दुःख का समय हो धैर्य से अतिवाहित करेगा । इस प्रकार प्रार्थना के अनोखे बल से मनुष्य न जाने क्या२ आनन्द पावेगा । अब हम प्रार्थना के प्रसंग में इस थोड़े से कथन पर ही समाप्ति करके उपासना के फल का विचार दर्शाते हैं—

उपासना और उस का फल ॥

संस्कृत में "उप" उपसर्गपूर्वक "आस" उपवेशने, धातु से उपासना शब्द बना है इसलिये उपासना का अर्थ उप=समीप । आसना=बैठना । अर्थात् परमात्मा के समीप ही क्या उस में ही प्रतिक्षण हम रहते हैं इस विचार के मन्त्रपाठ अर्थविचार और विश्वास करते हुवे परमात्मा की सहायता को प्राप्त करते रहना उपासना कहाती है । आप और हम सदा देखते हैं कि मनुष्यों और पशुओं के भी बच्चे, जब कभी कोई दुःख विपत्ति भय आदि आता

है तो मा! कह कर अपनी माता के पास जाते हैं वा हे पितः! कह कर अपने पिता की गोद में आ बैठते हैं और फिर उस भय दुःख आदिदायक पुरुष वा वस्तु की ओर ताकते हैं और अपने जी में यह समझते हुवे कि अब तो हम माता वा पिता की गोद में हैं अब हमारा यह क्या कर सक्ता है, निर्द्वन्द्व हो जाते हैं। इसी प्रकार सांसारिक दुःखों के सामने मनुष्य एक बच्चे के समान भीरु है, उस को पग२ पर दुःख और भय घेरे हुवे हैं, चाहे कैसा ही बलवान् हो, राजा हो, धनी हो, परन्तु दुःख और भय से उस समय तक रहित नहीं होसक्ता जब तक उपासना के बल से बलिष्ठ न हो॥

आप कहेंगे कि बहुत से मनुष्य संसार में ऐसे देखे जाते हैं जो उपासना नहीं करते तथापि भय और दुःख उन्हें न्यून है तथा बहुत से लोग नित्य १ घण्टा २ घण्टा और बहुत से सारे जन्मभर उपासना पूजा में रहते हैं तथापि अनेक दुःख और क्लेश भोगते हैं। तो उत्तर यह है कि सदा याद रक्खो कि "सब भक्त, भक्त नहीं। सब उपासक, उपासक नहीं" संसार में दम्भ से बहुत काम लिया जाता है। बहुत लोग ऊपर से बड़े भक्त, उपासक, धर्म २ की पुकार मचाने वाले, कपड़े रंगने वाले, धर्मध्वजी भी हैं परन्तु भीतर से प्रतिक्षण स्वार्थपरता का घात लगाये रहते हैं, इस के विरुद्ध कई ऐसे भी मिलेंगे जो देखने में कोई बाहरी दिखावट उपासना भक्ति और धर्म की नहीं रखते परन्तु उन का प्रत्येक व्यवहार धर्म के अनुकूल है, प्रत्येक क्षण ईश्वर को नहीं भूलते, उस की आज्ञा के विरुद्ध नहीं चलते, ऐसे पुरुषों पर यदि पूर्वकृतकर्मविपाक से देखने में कोई दुःख भी पड़े तथापि उनके मन पर उसका प्रभाव बहुत न्यून पड़ता है और पक्के ही उपासक हों तो सर्वथा ही न पड़े॥

उपासना से दूसरा फल यह भी होता है कि मनुष्य उपासक रहता है तो न केवल दुःख और भय ही उस को नहीं सता सके किन्तु वह पाप का अनुष्ठान भी नहीं करता। जिस प्रकार रक्षक को देख कर चोर चोरी से निवृत्त होते हैं, माता को देख पुत्र मिट्टी खाने से बन्द होजाते हैं, अध्यापक के सामने विद्यार्थी पढ़ने लग जाते हैं, कार्य्यालय के अध्यक्ष को देख कर उसके कर्मचारी अपने २ काम को ठीक करने लगते हैं, आलस्य प्रमादादि को छोड़ देते हैं, सावधान होजाते हैं। इसी प्रकार सब के अध्यक्ष सब के अधिष्ठाता परमात्मा को समीप पाय कर उस के उपासक पापों से सदा बचते हैं। जो नहीं बचते वे उपासक, भक्त नहीं, धर्मात्मा नहीं, किन्तु दम्भी, भक्तब्रुव, धर्म-

ध्वजी हैं । इस लिये उपासना का यथार्थ फल, यथार्थ उपासक को ही होता है, दिखावे वाले को नहीं ॥

यथार्थ उपासक सांसारिक पुरुषों में अलग पहंचाना जाता है । वह परमात्मा के न्यायादि गुणों से इस प्रकार सब ओर परिप्लुत रहता है जिस प्रकार समुद्र में कूदा हुवा पुरुष सब ओर से गीला और अग्नि में पड़ा हुवा लोहपिण्ड सब ओर से उत्तप्त होजाता है ॥

महाशयो ! परमात्मा वाणी से भी उसी प्रकार अतीत हैं जिस प्रकार मन से अतीत हैं इसलिये परमात्मा के साक्षात् करने का सामर्थ्य किसी पुरुष की वाणी वा लेखनी में क्या हो सकता है । अब हम इस व्याख्यान को समाप्त करते हैं और आप से अन्त में यही निवेदन करते हैं कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन० ॥ इस का अर्थ पूर्व " ईश्वर का अस्तित्व " शीर्षक में बता चुके हैं । आवो मिल कर उस की उपासना करें ॥

उस परमात्मा की उपासना विना मनुष्यजीवन व्यर्थ है । क्योंकि उपासना, स्तुति, प्रार्थना, केवल मनुष्य ही करसक्ता है । इसलिये यदि प्राण छुट गये और अन्य किसी योनि में जापड़े तो फिर यह सुअवसर न मिलेगा । इसलिये ऐसा न हो कि मनुष्यजीवन व्यर्थ जावे अतः शीघ्र सावधान होना चाहिये ॥

आज हम ने अपने सामर्थ्य के अनुसार यह थोड़ा सा इस विषय में निवेदन किया है । आशा है कि हमारे पाठकगणों का उपकारक होगा । इसके सम्बन्धी अन्य मोक्षादि विषयों पर भी यथामति और यथाऽवसर फिर कभी लिखेंगे ॥

वैदिकदेवपूजा नामक १ व्याख्यान पूर्व छप चुका है आज यह दूसरा " ईश्वर और उस की प्राप्ति" नामक व्याख्यान भी समाप्त करते हैं । तीसरा व्याख्यान अब पुनर्जन्म और मोक्षविषयक होगा ॥

॥ इति ॥

त्रिभिः श्लोकैः पूर्वोक्तं दृढयति—.

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥९॥

पदपाठः—ज्ञाज्ञौ १। द्वौ१। अजौ१। ईशानीशौ१। अजा१। हि अ०। एका१। भोक्तृभोगार्थयुक्ता१। अनन्तः१। च। आत्मा१। विश्वरूपः१। हि। अकर्त्ता१। त्रयम्२। यदा अ०। विन्दते क्रि०। ब्रह्मम् २। एतत् २॥

(ईशानीशौ) समर्थाऽसमर्थौ सर्वशक्तिमदल्पशक्तिमन्तौ। ईशनीशाविति पाठे ह्रस्वत्वमार्षम् (ज्ञाज्ञौ) सर्वज्ञाऽल्पज्ञौ (अजौ) अजन्मानावनादी (द्वौ) जीवात्मपरमात्मानौ स्तः (हि) निश्चयेन (एका) (अजा) सनातनी प्रकृतिः (भोक्तृभोगार्थयुक्ता) भोक्ता जीवात्मा, भोगइन्द्रियैर्विषयाणां ग्रहणम्, अर्थोविषयाश्च तैर्युक्ता अस्ति। पूर्वोक्तयोर्द्वयोरजयोरात्मनोर्मध्ये एकः (अनन्तः) सर्वव्यापकः (आत्मा च) (विश्वरूपः) विश्वं समस्तं जगद्रूपयति सः (हि) तथापि (अकर्त्ता) न रागादिना किञ्चित्करोति किन्तु स्वभावेनैवैकरसेन विश्वं रूपयति अर्थात् तत्सन्निधानमात्रतएव विश्वं रूपमापद्यते नहि तेन काचिदपूर्वा तदेकरसत्वहापिका चेष्टा क्रियते। वक्ष्यति च—"न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इति एवं तस्य स्वाभाविक्या क्रियया कर्त्तृत्वं रागपूर्वकक्रियाद्यभावेन चाऽकर्त्तृत्वमप्यनुसन्धेयम् (यदा) यस्मिन्काले (एतत्त्रयम्) द्वौ अजावेकाऽजा चेति (ब्रह्मम्) ब्रह्मणइदं ब्राह्मं ह्रस्वत्वमार्षम् (विन्दते) लभते तदाकारणज्ञानमाप्नोतीति शेषः॥

अत्र जीवात्मपरमात्मनोः अजत्वमनादित्वं नित्यत्वं क्रमेणेशत्वानीशत्वे सर्वज्ञत्वाऽल्पज्ञत्वे च उक्ते परमात्मनः सर्वव्यापकत्वमनन्तत्वं जगद्रूपयितृत्वं तथाप्येकरसत्वादपरिणामित्वादकर्त्तृत्वञ्चोक्तम्। प्रकृतेश्च भोक्तृभोगार्थयुक्तत्वेनेदमुच्यते यत्—जीवात्मा, प्राकृतपदार्थेषु ममतावत्वात्तद्युक्तो भवति देहादियुक्तो भवति प्रकृतिश्च तेन भोक्त्रा जीवात्मना तत्कृतेन भोगेन, स्वविषयैः प्राकृतैरर्थैश्च युज्यते इति। एतस्मिंस्त्रये परमात्मनो ब्रह्मणः स्वामित्वाज्जीवात्मप्रकृत्योश्च स्वत्वात्स्वस्वामिभावसम्बन्धस्तेन चेदं सर्वं ब्रह्मणइदं ब्राह्ममित्युच्यते॥ शाङ्करभाष्यादिष्वत्र मूलतोविरुद्धाऽर्थोवर्णितः ॥९॥

अब ३ श्लोकों से उक्त ३ पदार्थों के परस्पर सम्बन्ध और स्वरूप को दृढता से वर्णन करते हैं:—

(ईशानीशौ) समर्थ और असमर्थ (ज्ञाऽज्ञौ) सर्वज्ञ और अल्पज्ञ (अजौ) अजन्मा (द्वौ) दो हैं। (हि) निश्चय (एका) एक (अजा) न जन्मनेवाली (भोक्तृभोगार्थयुक्ता) भोक्ता, भोग और अर्थों से युक्त होने वाली है। (च) और (अनन्तः) अनन्त (आत्मा) परमात्मा (विश्वरूपः) संसार को बनाता है (हि) तथापि (अकर्त्ता) कर्त्ता नहीं। (यदा) जब कि (एतत्) इस (त्रयम्) तीन के समुदाय (ब्रह्मम्) ब्रह्मसम्बन्धी को (विन्दते) प्राप्त होता है [तभी कारण का ज्ञान होता है]॥

यहां जो दो अज और एक अजा का वर्णन है उस में एक परमात्मा है जो सर्वज्ञ, अजन्मा, समर्थ अर्थात् सर्वशक्तिमान् है। दूसरा जीवात्मा—अल्पज्ञ, अजन्मा और असमर्थ अर्थात् अल्पशक्तिमान् है। तीसरी प्रकृति जो अजा अर्थात् अनादि है और भोक्ता जीवात्मा, भोग इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण, अर्थ इन्द्रियों के विषय इन से युक्त होती है अर्थात् प्रकृति से बने इन्द्रियं और उन के विषयों सहित जीवात्मा इस प्रकृति रूप वृक्ष के फल खाता है और यह प्रकृति विकृत होकर जीवात्मा भोक्ता से योग करती है। और इन तीनों में से एक अनन्त आत्मा अर्थात् परमात्मा विश्वरूप अर्थात् संसार का रचने वाला है जो प्रकृति से महत्तत्वादि को बना कर जीवात्माओं के कर्मानुसार उन्हें इस प्राकृत पदार्थों के समुदाय से जोड़ता है। यद्यपि वह जगत् का रचने वाला है तथापि अकर्त्ता है अर्थात् जीवात्मा की भान्ति रागद्वेषादि से शुभाशुभ कर्म करने वा उन के फलों का भोगने वाला नहीं है। परमात्मा को जगत् का कर्त्ता और अकर्त्ता भी इसलिये कहते हैं कि उस के विना जगत् उत्पन्न नहीं होसक्ता किन्तु उसके सन्निधान से ही जगत् बनता है परन्तु तौ भी वह राग से जगत् को नहीं बनाता किन्तु स्वभाव से ही बनाता है। संस्कृत भाष्य में लिखे (न तस्य कार्य्यं) प्रमाण से उस की क्रिया स्वाभाविक है अर्थात् ऐसी नहीं जिस से उस की एकरसता में भेद पड़े (जैसे सूर्य्य किसी वनस्पति को उगाता और किसी को सुखाता है परन्तु उगाने और सुखाने में सूर्य्य एकसा ही रहता है) तो जैसे लोक में किसी कार्य्य का कर्त्ता, जब उस कार्य को करता है तब उस समय के सा नहीं रहता जैसा कि न करने के समय था अर्थात् जब हम चलते हैं तब बैठने की अवस्था से कुछ भेद पड़ता है और जब बोलते हैं तब चुप रहने की अवस्था से कुछ भेद पड़ता है इसी प्रकार क्रिया करने में जैसी कुछ अवस्था हमारी बदलती है वैसी उस परमात्मा

की नहीं बदलती, वह एकसा ही रहता है इसी से उस को अकर्त्ता भी कहते हैं। ये तीनों जीव ब्रह्म प्रकृति जब ज्ञात होते हैं तभी उस प्रश्न के उत्तर का ज्ञान होता है कि "कारण क्या है"। ये तीनों मिलकर "ब्रह्मम्" ब्राह्म अर्थात् ब्रह्म और उस के सम्बन्धी पदार्थ हैं। "ब्राह्मम्" की जगह "ब्रह्मम्" यह पाठ आर्ष है और "ईशानीशौ" की जगह "ईशनीशौ" भी। शाङ्करभाष्यादि में इस का मूलविरुद्ध अर्थ है ॥ ९ ॥

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥१०

पदपाठः—क्षरम्१। प्रधानम्१। अमृताक्षरम्१। हरः१। क्षरात्मानौ २। ईशते क्रि०। देवः१। एकः१। तस्य ६। अभिध्यानात् ५। योजनात् ५। तत्त्वभावात् ५। भूयः अ०। च। अन्ते ७। विश्वमायानिवृत्तिः१ ॥ १० ॥

अन्वि०—(क्षरम्) क्षरति नश्यति अवस्थान्तरमापद्यते विपरिणमतीति क्षरम् (प्रधानम्) प्रकृतिनामकं तत्त्वम् एकम्, (अमृताक्षरम्) अमृतं च तदक्षरमऽविनाश्यऽविपरिणामि जीवात्मतत्त्वं द्वितीयम्, (हरः) हरति नाशयति प्रलयं करोति स हरः परमात्मा तृतीयः। तत्र (एकः) असहायः (देवः) दिव्यगुणयुक्तः परमात्मा (क्षरात्मानौ) क्षरंप्रधानमात्मा जीवात्मा च तौ (ईशते) वशित्वेनाधितिष्ठति। (तस्य) परमात्मनः (अभिध्यानात्) सर्वतोभावेन चिन्तनात् (योजनात्) तत्र चित्तस्ययोगात् (तत्त्वभावात्) वस्तुतोभक्त्या (भूयश्च) पुनश्च (अन्ते) अवसाने (विश्वमायानिवृत्तिः) विश्वाः समस्ता याः मायाः अविद्याः तासां निवृत्तिर्भवतीति शेषः ॥

प्रकृतिः परिणामिनी, आत्माऽपरिणामी, परमात्मा च तयोर्नियन्तास्ति। तस्मात्स्वनियन्तुः परमात्मनोध्यानात् तत्र योगाभ्यासेनैकाग्रयात् परमात्मप्रसादाऽविद्यानिवृत्तिर्भवति ततश्च मोक्षप्राप्तिरिति ॥

(क्षरम्) क्षीण होनेवाली (प्रधानम्) प्रकृति है (अमृताक्षरम्) अमर और नहीं क्षीण होने वाला [जीवात्मा] है (हरः) परमेश्वर (क्षरात्मानौ) प्रकृति और जीवात्मा है पर (एकः) एक (देवः) परमात्मा (ईशते) अधिकारिभाव से रहता है। (तस्य) उस के (अभिध्यानात्) सब ओर से ध्यान करने से (योजनात्) योग से (तत्त्वभावात्) ठीक २ भक्ति से (भूयश्च) फिर २ से (विश्वमायानिवृत्तिः) सब अविद्याओं की निवृत्ति होती है ॥

तात्पर्य यह है कि १-प्रकृति परिणामिनी (जिस की अवस्था बदले) है। २-जीवात्मा अपरिणामी है ३-सब का हरण नाश वा प्रलय करने वाला परमात्मा है वह इन जीव प्रकृति दोनों पर राज्य करता है। उसी के बार२ ध्यान, योग और भक्ति से जीवात्मा अविद्यादि क्लेशों से छूट कर मुक्ति पाता है ॥१०॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः॥११॥

पदपाठः-ज्ञात्वा क्रि०। देवम् २। सर्वपाशापहानिः१। क्षीणैः३। क्लेशैः३। जन्ममृत्युप्रहाणिः१। तस्य६। अभिध्यानात्५। तृतीयम्१। देहभेदे७। विश्वैश्वर्य्यम्१। केवलः१। आप्तकामः१॥ ११॥

(देवम्) परमात्मानम् (ज्ञात्वा) विज्ञाय (सर्वपाशापहानिः) सर्वेषांपाशानां बन्धनानामपहानिर्नाशउच्छेदः (क्लेशैः) अविद्यादिपञ्चभिः (क्षीणैः) नष्टैः जन्म-मृत्युप्रहाणिः) जन्ममरणयोर्निवृत्तिः। यत् (तृतीयम्) जीवप्रकृतिपरमात्मनां प्रदेषु तृतीयं परमात्मनः पदम् (विश्वैश्वर्य्यम्) सकलैश्वर्यवत् अस्ति (तस्य) तृतीयस्य (अभिध्यानात्) चिन्तनात् (देहभेदे) सति (केवलः) देहादिसङ्गरहितः (आप्तकामः) आप्ताः पूर्णाः कामा यस्य तथाभूतोभवति॥

परमात्मज्ञानफलमुच्यतेऽत्र। तस्मिन्परमात्मनि ज्ञाते सर्वबन्धोच्छेदो जन्ममरणनिवृत्तिश्च जायते। सर्वतोभावेन तच्चिन्तनाद्देहभेदेसति अयं जीवात्मा केवलो भवति तदाकश्चित्कामः सङ्कल्पोऽप्राप्तोनावशिष्यते सर्वसङ्कल्पशान्तिर्जायते॥११

भा०-(देवम्) परमात्मा को (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वपाशापहानिः) सब बन्धन कट जाते हैं (क्लेशैः) क्लेशों के (क्षीणैः) क्षीण होने पर (जन्ममृत्युप्रहाणिः) जन्म मरण छूट जाता है (तृतीयम्) तीसरा जो (विश्वैश्वर्यम्) विश्व का ऐश्वर्य पद है (तस्य) उस के (अभिध्यानात्) सर्वथा चिन्तन से (देहभेदे) देह छूटने पर (केवलः) स्वच्छ हो जाता है (आप्तकामः) पूर्ण काम हो जाता है॥

परमात्मा के ज्ञान का फल कहते हैं कि उस के जानने से न कोई बन्धन रहता है, न जन्म और मृत्यु होते हैं। तब आत्मा, तृतीय अर्थात् जीव प्रकृति और ब्रह्म इन में तीसरे सकलसंसार के प्रभु का ध्यान करने से केवल स्वच्छ होजाता है तब देह भी नहीं रहता न कोई कामना शेष रहती है, सब पूर्ण हो जाती हैं॥ ११॥

पूर्वोक्तमुपसंहरति—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।१२।

पदपाठः—एतत्१ । ज्ञेयम्१ । नित्यम्१ । एव अ० । आत्मसंस्थम्१ । न अ० । अतः५ । परम्१ । वेदितव्यम्१ । हि अ० । किञ्चित्१ । भोक्तार । भोग्यम्२ । प्रेरितारम्२ । च । मत्वा क्रि० । सर्वम्१ । प्रोक्तम्१ । त्रिविधम्१ । ब्रह्मम्१ । एतत्१॥१२॥

(एतत्) पूर्वोक्तम् (एव) हि (ज्ञेयम्) ज्ञातव्यं, किं कारणमित्यस्योत्तरभूतं वेदितव्यम् । किम्भूतं (नित्यम्) आद्यन्तविवर्जितम् (आत्मसंस्थम्) आत्मनि स्वस्मिन्नेव संस्था यस्य तत् एतत्त्रयं न कस्यचित्कार्यमतएव न कस्मिंश्चित्कारणे संस्थामाप्नोति किन्तु प्रत्येकं स्वस्मिन्नेव संतिष्ठते। किमेतदिति पूर्वोक्तमुपसंहरन् स्मारयति—(भोक्ता) जीवात्मानं, प्रथमान्तमार्षम् (भोग्यम्) कार्य्यपरिणतं प्रधानम् (प्रेरितारञ्च) नियन्तारं परमात्मानं च (मत्वा) विज्ञाय (अतः) एतद्विज्ञानानन्तरम् (किञ्चित्, वेदितव्यं, न) अवशिष्यत इति शेषः । (एतत्, सर्वं, त्रिविधम्) (ब्रह्मम्) ब्राह्मं ब्रह्मसम्बन्धि कारणजातम् (प्रोक्तम्) वर्णितम् ॥

जगत्कारणजिज्ञासुना मुख्यतया कारणत्रयमेव वेदितव्यमस्ति । कालादीनाममुख्यतयाऽत्र वेदितव्यगणनायामगणनाऽनुसन्धेया ॥१२॥

भा०—एतत्, एव) यही (ज्ञेयम्) जानने योग्य है । जो (नित्यम्) नित्य है (आत्मसंस्थम्) आपे में स्थित है (भोक्ता) जीवात्मा (भोग्यम्) प्रकृति (च) और (प्रेरितारम्) नियन्ता को (मत्वा) जानकर (अतः) इस से (परम्) आगे (किञ्चित्) कुछ (वेदितव्यम्) जानने योग्य (न) नहीं रहता ॥

इस में पूर्व ३ श्लोकों में कहे विषय का उपसंहार किया है कि जो जगत् का कारण जानना चाहे उस को इन तीन के अतिरिक्त मुख्य करके जानने को कुछ नहीं है किन्तु जगत्कारण यही तीन मुख्य हैं । अन्य कालादि मुख्य न होने से गणना में नहीं लाये गये ॥ १२ ॥

ननु सर्वगतोपि परमात्मा कथं न सर्वैरनुभूयते तदनुभवे कश्चोपाय इत्याहाध्यायान्तैश्चतुर्भिः—

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्त्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः ।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥१३॥

पदपाठः–वह्नेः ६ । यथा अ० । योनिगतस्य ६ । मूर्त्तिः १ । न अ० । दृश्यते क्रि० । न अ० । एव अ० । च अ० । लिङ्गनाशः १ । सः १ । भूयः अ० । एव अ० । इन्धनयोनिगृह्यः १ । तद्वा अ० । उभयम् १ । वै अ० । प्रणवेन ३ । देहे ७ ॥१३॥

अन्वितपदार्थः–(यथा) (वह्नेः) अग्नेः (योनिगतस्य) स्वोत्पत्तिस्थानकाष्ठादिगतस्य (मूर्त्तिः) स्वरूपम् (न, दृश्यते) (च) परन्तु (लिङ्गनाशः) लिङ्गिनोऽग्नेर्लिङ्गस्य काष्ठमथनजन्योष्मणः नाशः (एव) अपि (न) । लिङ्गेन हेतुना लिङ्गिनो ज्ञानमुपपद्यते, तस्मादत्रापि अग्निर्लिङ्गी तस्य मूर्त्तिः प्रकाशःस्वरूपं सर्वैर्नदृश्यते परन्तु संघर्षणेनोष्मा उद्भवति स एव चोष्माऽग्निसद्भावे लिङ्गं चिह्नम् तेन च नैतद्वक्तुं शक्यतेऽग्निर्नास्तीति । अग्निदिदृक्षुणा च तथा सति किमनुष्ठेयमित्याह–(सः) उक्तोग्निः (एव) हि (भूयः) पुनः (इन्धनयोनिगृह्यः) इन्धनेन काष्ठेन योनिनोत्पत्तिस्थानेन संघर्षितेन गृह्यते, तथाभूतः । अर्थादग्निर्दिदृक्षुणा काष्ठादिनिर्मथनं कार्य्यं तदानीं चाग्निप्रादुर्भावे तद्ग्रहणं सुकरम् । यथा लिङ्गलिङ्गिनोः सद्भावेऽपि निर्मथनोपायमावश्यकं (तद्वा) तद्वत्, इवार्थोवाशब्दः (उभयम्) लिङ्गं लिङ्गी चेत्युभयम् । दार्ष्टान्तमाह–(वै) निश्चयेन (देहे) शरीरे (प्रणवेन) ओङ्कारेण कृतजपेन भावितार्थेनोपायभूतेन परमात्मनः साक्षात्कार इति शेषः ॥

यथा काष्ठादिषु सर्वैर्नज्ञायतेऽग्निरस्तीति, ऊष्मादिना चिह्नेन च नेदमप्युच्यते नास्तीति । तथैव देहादिषु व्याप्तोपि परमात्मा न सर्वैर्ज्ञायते सूक्ष्मत्वात् परन्तु तदीयस्रष्टृत्वादिलक्षणैर्लिङ्गैर्नेदमपि वक्तुं शक्यं नास्ति स्रष्टा परमात्मेति । यथा चारणिभ्यां निर्मन्थनेनाग्नेः साक्षात्कारस्तथैवाधरारणिस्थानीये देहे उत्तरारणिस्थानीयेनोङ्कारेण भावितार्थेन परमात्मनः साक्षात्कारोभवति । तदेव स्पष्टयत्युत्तरेण ॥ १३ ॥

भा०–यदि परमात्मा सर्वत्र है तो सब किसी को उस का साक्षात्कार क्यों नहीं होता और साक्षात्कार का क्या उपाय है सो बताते हैं–(यथा) जैसे (योनिगतस्य) अपने प्रादुर्भावस्थान में रहते हुवे (वह्नेः) अग्नि का (मूर्त्तिः) स्वरूप (न) नहीं (दृश्यते) दीखता (च) परन्तु (लिङ्गनाशः) चिह्न का नाश

(एव) भी (न) नहीं। (सः) वह (एव) ही (भूयः) फिर (इन्धनयोनिगृह्यः) इन्धन जो उस का उत्पत्तिस्थान है उसी से ग्रहण करने योग्य है। (तद्वा) वैसे ही (देहे) देह में (प्रणवेन) ओङ्कार से (वै) निश्चय (उभयम्) चिह्न और चिह्न वाला दोनों को [जानो] ॥

तात्पर्य्य यह है कि जैसे अग्नि काष्ठादि में वर्तमान है परन्तु उस का चमकीला स्वरूप नहीं देख पड़ता तथापि काष्ठादि में अग्नि के चिह्न का नाश भी नहीं है किन्तु घिसते हैं तो काष्ठ गरम होजाता है और काष्ठ की सूरत जो दीखती है यह भी अग्नि का चिह्न है। उसी अग्नि को दो काष्ठों के निर्मन्थन से देख सक्ते हैं। इसी प्रकार परमात्मा हमारे देहादि में है पर नहीं दीखता परन्तु उस के रचनादि चिह्न पाये जाते हैं। अब यदि कोई उस का साक्षात्कार चाहे तो देहरूपी *अधरारणि और ओङ्कार का अर्थ विचारपूर्वक जपरूपी उत्तरारणि की रगड़ से उस परमात्मा का साक्षात्कार अनुभव कर सक्ता है। यह उपाय है। इसी को अगले श्लोक में स्पष्ट कहा है ॥ १३ ॥

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ॥ १४ ॥

पदपाठः—स्वदेहम्२। अरणिम्२। कृत्वा अ०। प्रणवम्२। च अ०। उत्तरारणिम्२। ध्याननिर्मथनाभ्यासात्५। देवम्२। पश्येत् क्रि०। निगूढवत् अ० ॥

परमात्मानं साक्षाच्चिकीर्षुर्जिज्ञासुः (स्वदेहम्) स्वस्य शरीरम् (अरणिम्) अधरारणिस्थानीयम् (प्रणवम्) ओङ्कारम् (च) (उत्तरारणिम्) (कृत्वा) प्रकल्प्य (ध्याननिर्मथनाभ्यासात्) ध्यानमेव निर्मथनं तस्याभ्यासात्पौनःपुन्यात् (निगूढवत्) प्रच्छन्नमिवस्थितम् (देवम्) परमात्मानम् (पश्येत्) साक्षात्कुर्य्यात् ॥ १४ ॥

भा० परमात्मा का साक्षात्कार चाहने वाला जिज्ञासु (स्वदेहम्) अपने देह को (अरणिम्) अधरारणि (च) और (प्रणवम्) ओङ्कार को (उत्तरारणिम्) उत्तरारणि (कृत्वा) कल्पना करके (ध्याननिर्मथनाभ्यासात्) ध्यान

*यज्ञ में अग्नि उत्पन्न करने के लिये दो काष्ठविशेष होते हैं जिन में से नीचे के काष्ठ को अधरारणि और ऊपर के को उत्तरारणि कहते हैं। ये दो अरणि मथकर अग्नि उत्पन्न करते हैं।

रूपी मथन के अभ्यास से (निगूढवत्) दुबके हुवे से (देवम्) परमात्मा को (पश्येत्) देखें ॥ १४ ॥

पुनर्दृष्टान्तान्तरैस्तदेवाह-

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिराप: स्रोत:स्वरणीषु चाग्नि:।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।१५।

पदपाठ:-तिलेषु ७। तैलम् १। दधिनि ७। इव अ०। सर्पि: १। आप: १। स्रोत:सु ७। अरणीषु ७। च अ०। अग्नि: १। एवम् अ०। आत्मा १। आत्मनि ७। गृह्यते क्रि०। असौ १। सत्येन ३। एनम् २। तपसा ३। य: १। अनुपश्यति क्रि०॥ १५ ॥

(तिलेषु) (तैलम्) तैलम् प्रविष्टं, (दधिनि) (सर्पि:) घृतम्, (स्रोतस्सु) गिरिप्रस्रवणेषु (आप:) अन्तर्हितानि जलानि, (अरणीषु, च, अग्नि:) काष्ठविशेषेषु च वह्नि: (इव) यथाऽन्तर्हितोवर्त्तते (एवम्) तथैव (आत्मनि) स्वस्मिन् (असौ, आत्मा) अपर: परमात्मा (गृह्यते) साक्षात्क्रियते। किन्तु (य:, एनम्, सत्येन, तपसा, अनुपश्यति) य: पूर्वोक्तं परमात्मानं सत्येन दम्भादिरहितेन तपसाऽनुष्ठितेन, जिज्ञासया साक्षात्करोति तेनैव न सर्वैरित्यर्थ: ॥

यथा तिलेषु तैलमस्ति परं पीडनं विना नोपलभ्यते, यथा च दधनि घृतमस्ति परं मन्थनमन्तरेण नोपलभ्यते, स्रोतस्सुप्रस्रवणेषु चाप: सन्ति परं तद्देशखननं विना न दृश्यतेन्तर्जलमस्तीति, अरणीकाष्ठेषु च वर्त्तमानोऽप्यग्निर्निर्मथनाद्युपायमन्तरेण न प्रादुर्भवति तथैवात्मनि स्थितोऽपि परमात्मा दम्भादिदोषरहितध्यानतपश्चर्यां विना नोपलभ्यते कृते चोक्तोपाये उपलभ्यतएवेत्यर्थ: ॥ १५ ॥

भा० फिर अन्य दृष्टान्तों से वही वर्णन करते हैं-(इव) जैसे (तिलेषु) तिलों में (तैलम्) तैल, (दधिनि) दधि में (सर्पि:) घृत, (स्रोतस्सु) झरनों में (आप:) जल, (च) और (अरणीषु) काष्ठों में (अग्नि:) अग्नि है। (एवम्) इसी प्रकार (आत्मनि) आत्मा में (असौ) यह दूसरा (आत्मा) परमात्मा (गृह्यते) साक्षात् किया जाता है। (य:) जो कोई (एनम्) पूर्वोक्त परमात्मा को (सत्येन, तपसा) सच्ची, तपश्चर्या से (अनुपश्यति) साक्षात् करता है ॥

अर्थात् जैसे तिलों में तैल है परन्तु पेलने से ही मिल सक्ता है, दही में घृत है पर विलोने से ही मिल सक्ता है, पहाड़ के झरनों के भीतर जल छिपा

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

वर्ष १ { वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ } मास ११

ओ३म्

ऋ० भूमिका पर प्रश्न ॥

हमारे पास कुछ प्रश्न "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" के ऊपर एक आर्य्य पुरुष ने भेजे हैं। यद्यपि प्रश्नकर्ता की इच्छा यह नहीं है कि ये प्रश्न उत्तर सहित मुद्रित किये जावें। परन्तु यथार्थ में ये ऐसे प्रश्न अवश्य हैं जो कुछ विचार करने वाले सत्पुरुष में उग सकें तथा इन प्रश्नों को मुख द्वारा भी चर्चा में आते देखा गया है। प्रायः आर्य्यपुरुष स्वयम् हम से इन प्रश्नों को पूछ चुके हैं। इस लिये इन पर कुछ संक्षिप्त उत्तर लिख कर छपा देने से सर्वसाधारण का उपकार होगा इस प्रयोजन से इस प्रश्नपत्र को नीचे प्रकाशित करते हैं-

श्रीमान् मान्यवर पण्डित तुलसीराम स्वामी जी नमस्ते।

विनय पूर्वक निवेदन है कि निम्नस्थ प्रश्नों का उत्तर कृपा करके शीघ्र प्रदान कीजिये।

१—वेदभाष्यभूमिका प्रथमावृत्ति पृष्ठ २९ वेदनित्यत्वविचार में स्वामी जी ने महाभाष्यकार का प्रमाण दिया है जो ये है ॥

"सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः।
एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते ॥"

[दाधाघ्वदाबित्यस्य सूत्रस्योपरि महाभाष्यवचनम्]

इस में से पहिले टुकड़े का अर्थ तो स्पष्ट ही है। परन्तु दूसरे टुकड़े में जो महाभाष्यकार ने अपनी युक्ति दी है वह मेरी समझ में नहीं आई।

स्वामीजी ने इस अन्तिम टुकड़े का अर्थ यह किया है ॥

"शब्दानामेकदेशविकारेचेत्युपलक्षणात् नैव शब्दस्यैकदेशापाय एकदेशोपजन एकदेशोविकारिणि सति दाक्षीपुत्रस्यपाणिनेराचार्य्यस्य मते शब्दानां नित्यत्वमुपपन्नं भवति" ॥

कृपा करके महाभाष्य प्रमाण का और फिर स्वामी जी की व्याख्या का अक्षरार्थपूर्वक स्पष्टार्थ करके अनुगृहीत कीजिये ॥

२–वेदभाष्यभूमिका पृष्ठ ६५ में देवताविषयक "ये त्रिंशति त्रयस्परो०" ऋ० अ० ६ अ० २ व० ३५ मं० १ । तथा "त्रयस्त्रिंशतास्तुवत०" य० १४।३१॥ तथा "यस्यत्रयस्त्रिंशद्देवानिधिं०" और "यस्यत्रयस्त्रिंशद्देवाअङ्गे गात्राविभेजिरे०" अथर्व कां० १० प्रपा० २३ अ० ४ मं० २३।२७॥ यह चार प्रमाण वेदों के दिये हैं कृपा करके इन का भी अर्थ करके कृतार्थ कीजिये ॥

३-"ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले०"

इस मुण्डकोपनिषद् वचन का अर्थ करते हुए स्वामी जी ने "परान्तकाल" को १०० ब्राह्मवर्षों की संज्ञा माना है । इस में किसी कोष अथवा ज्योतिष शास्त्रादि का प्रमाण हो तो कृपया उस से सूचित कीजिये ॥

४–वेदभाष्यभूमिका और वेदभाष्य में जो भाषार्थ है वह स्वामी जी का अपना है अथवा किसी और का । यदि किसी और का है तो किस का है कृपा करके इसका उत्तर भी प्रदान कीजिये ॥

५–ज्योतिष्टोम । अग्निष्टोम । यज्ञ किस प्रकार के होते थे और वह किस प्रयोजन से किये जाते थे ॥

करनाल पञ्जाब आपका दास– आर्य्य

उत्तर १–सर्वे सर्वपदा० का अर्थ तो यही है कि (दाक्षिपुत्रस्य पाणिनेः) दाक्षि के पुत्र पाणिनि के मत में (सर्वे) सब (सर्वपदादेशाः) सब पदों को आदेश होते हैं । (हि) क्योंकि (एकदेशविकारे) यदि एक देश में विकार होता तो (नित्यत्वम्, न, उपपद्यते) नित्यत्व, नहीं, सिद्ध होता ।

अर्थात् यथार्थ में "भू शप् तिप" के स्थान में "भवति" यह प्रयुक्त होता है । तो यह मत समझो कि प्रथम कुछ और था और फिर कुछ और होगया इसलिये शब्द अनित्य होगया । किन्तु "भू शप् तिप्" आदि भी नित्य हैं और उन के स्थान में बोले जाने वाले "भवति" आदि भी नित्य

हैं। क्योंकि प्रकृति प्रत्यय आदि के विभाग केवल अर्थ के समझने के लिये हैं न कि किसी के एक देश में कोई विकार उत्पन्न होता हो। किन्तु जो पूर्व था वह भी और जो पीछे उस के स्थान में बोला जाता है ये दोनों ही नित्य हैं।

नित्य का तात्पर्य भी नैयायिकों के अनुसार नहीं किन्तु व्याकरण पुस्तक के बनने से वे शब्द नहीं बने किन्तु पूर्व सिद्ध हैं और यही नित्यता है।

श्री १०८ स्वामी जी ने भी भूमिका पृष्ठ २९ पं० २७ नई छपी संवत् १९५९ में लिखा है कि—

वेदपार। गम्। ड। सुँ। भू। शप्। इत्येतस्य वाक्यसमुदायस्य स्थाने वेदपारगोऽभवदितीदं समुदायान्तरं प्रयुज्यते अस्मिन्प्रयुक्तसमुदाये अम् ड सुँ शप् तिप् इत्येतेषाम् अम् ड् उँ श् ष् इ प् इत्येतेऽपयन्तीति केषाञ्चिद्बुद्धिर्भवति सा भ्रममूलैवास्ति। इत्यादि॥

इस का तात्पर्य यह है कि "वेदपार गम् ड सुं भू शप् तिप्" के स्थान में "वेदपारगोऽभवत्" यह प्रयोग किया जाता है तब किन्हीं लोगों को भ्रम से यह प्रतीत होता है कि "गम् का अम्, ड का ड्, सुं का उं, शप् के श् प् और तिप् के इ प् नष्ट होजाते हैं। परन्तु नष्ट नहीं होते किन्तु वहां उन का प्रयोग न करके "वेदपारगोऽभवत्" का प्रयोग करते हैं। "शब्दों के एकदेशविकार में" इस कथन को उपलक्षण मात्र जानना चाहिये इस से एकदेश का अपाय=नाश वा एकदेश का उपजन=वृद्धि वा आगम भी समझ लेना चाहिये। इससे पाणिनि के मत में एकदेशविकार अर्थात् लोप आगम आदि होते तो नित्यत्व सिद्ध न था किन्तु लोपादि समझाने के वास्ते हैं और वे कल्पित हैं इसी कारण भिन्न २ व्याकरण के बनाने वाले भिन्न २ रीति से अपने पुस्तकों में किसी शब्द की सिद्धि करते हैं। जैसे पाणिनि ने "झि" प्रत्यय किया फिर झ् को अन्त आदेश किया और सारस्वत में प्रथम ही "अन्ति" प्रत्यय मान लिया तो प्रकृति प्रत्ययादि विभाग वैयाकरणों की कल्पना शब्दार्थ की सुगमतार्थ है वास्तव में सब शब्द उस से पूर्व ही यथार्थभाव से चले आते हैं कुछ इन वैयाकरणों के बनाने से नहीं बने। यही बात महाभाष्य में लिखी भी है कि—

नित्येषु शब्देषु सतामादैचां संज्ञा क्रियते न संज्ञया आदैचो भाव्यन्ते ॥

शब्द नित्य हैं उनमें जो प्रथम ही " आत् ऐच् " थे, उन को वैयाकरण लोग वृद्धि संज्ञा करते हैं न कि वृद्धि संज्ञा से " आत् ऐच् " (न होने पर भी नये) बनाये जाते हैं ॥ यही शब्दों का नित्यत्व है और तदनुसार वेद के शब्दों का भी । क्योंकि जैसे वक्ता जब गौः पद को बोलता है तब ही गौः यह पद नवावतार को प्राप्त नहीं होता किन्तु संसार में गौः यह पद वक्ताओं के बोलने और न बोलने पर भी जैसे वर्त्तमान रहता है और जैसे किसी का पुत्र जन्मे और वह अपने पुत्र का नाम देवदत्त रक्खे तो पुत्रजन्म के समान देवदत्त शब्द का नया जन्म नहीं हुवा किन्तु संसार के शब्दसागर में वह देवदत्त शब्द पूर्व ही से वर्त्तमान था । इसी प्रकार ऋषियों के जन्मने से वेदशब्दों का जन्मना नहीं समझना चाहिये किन्तु ऋषियों (जिनके द्वारा वेद शब्दों का प्रकाश हुवा) के जन्म से पूर्व भी वे शब्द परमात्मा में यथावत् उपस्थित थे । इसलिये नित्य हैं ॥

२—ये त्रिं॒श॒ति॒ त्रय॑स्प॒रो दे॒वासो॑ ब॒र्हिरास॑दन् ।
वि॒दन्नह॑ द्वि॒तास॑नन् ॥ ऋ० अ० ६ अ० २ व ३५ मं० १

पदपाठः—ये १ । त्रिंशति १ । त्रयः १ । परः १ । देवासः १ । बर्हिः १ । आ अ० । असदन् क्रि० । विदन् क्रि० । अह अ० । द्विता अ० । असनन् क्रि० ॥ १ ॥

अन्वितपदार्थः—(ये) (त्रिंशति त्रयः परः) त्रयस्त्रिंशत् (देवासः) देवाः । आज्जसेरसुक् । पाणि० ७ । १ । ५० (बर्हिः) बर्हिषि यज्ञपदे बर्हिरित्तिपदनाम-निघं० ५ । २ (आ, असदन्) निषीदन्ति [ते] (विदन्) स्वस्वभागं प्राप्नुवन्तु (अह) अनन्तरम् (द्विता) द्विधा (असनन्) ददतु । षणु दाने ।

ये अग्न्यादयस्त्रयस्त्रिंशद्देवाः स्वस्वपदे तिष्ठन्ति तेऽग्निदूतेन प्रापितं स्वस्वभागं प्राप्नुववन्तु ते न प्रीणिताश्चते, अस्मभ्यं धनं धान्यं च द्विधा ददतु । अर्थात् यज्ञद्वारा देवेभ्यो यद्धविर्दीयते तेनाऽनुकूता भूत्वा ते धनधान्यवर्द्धका जायन्ते ॥

भा०-(ये) जो (त्रिंशति त्रयः परः) तेंतीस (देवासः) देवता (बर्हिः) यज्ञस्थान में (आ, असदन्) विराजते हैं [वे] (विदन्) अपना २ भाग लेवें (अह) और तत्पश्चात् (द्विता) दो प्रकार (असनन्) देवें ॥

संस्कृत भाष्य में निघण्टु और अष्टाध्यायी के प्रमाण लिखे हैं वे ऊपर देख लीजिये । तात्पर्य्य यह है कि अग्न्यादि ३३ देव, अग्निदूत द्वारा अपने २ हव्य पदार्थ का ग्रहण करते और हम को धन तथा धान्य दोनों प्रकार का सुख की वृद्धिकारक होजाते हैं । विशेष व्याख्यान हम अपने बनाये "वैदिकदेव-पूजा" नामक पुस्तक में लिख चुके हैं कि अग्न्यादि देव किस प्रकार हमारे सुखों के साधक हैं ॥१॥ स्वामी जी का भाष्य यहां तक नहीं हुवा इसलिये यह लिखा गया ॥

त्रयस्त्रिꣳशता स्तुवत० । इत्यादि । यजु० १४ । ३१ ॥

इस पर स्वामी जी का भाष्य सुगम स्पष्ट उपस्थित है । इसलिये पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं ॥२॥

यस्य॒ त्रय॑स्त्रिंशद्दे॒वा नि॒धिं रक्ष॑न्ति स॒र्वदा । नि॒धिं तम॒द्य को वे॑द॒ यं दे॑वा अ॒भि॒रक्ष॑थ ॥ अथर्व कां १० प्रपाठक २३ अ०४ मं० २३

पदपाठः-यस्य ६ । त्रयस्त्रिंशत् १ । देवाः १ । निधिम् २ । रक्षन्ति क्रि० । सर्वदा अ० । निधिम् २ । तम् २ । अद्य अ० । कः १ । वेद क्रि० । यम् २ । देवाः १ । अभिरक्षथ क्रि० ॥

अन्वितपदार्थः—(यस्य) परमेश्वरस्य (निधिम्) कोषम् अनन्तरत्नादियुक्तम् (त्रयस्त्रिंशत्, देवाः, सर्वदा, रक्षन्ति, तम् निधिम्, अद्य, कः, वेद, यम्, देवाः) (अभिरक्षथ) सर्वतोरक्षन्ति ॥

अर्थात् ईश्वरप्रजाभूता अग्न्यादयस्त्रयस्त्रिंशद्देवताःस्वस्मि-न्ननेकरत्नादिपदार्थान् रक्षन्ति तान् पदार्थांश्च को जानाति कुत्र किं निहितमिति । किंत्वन्वेषणं कार्यम् ॥ ३ ॥

भा०-(यस्य) जिस के (निधिम्) कोष को (त्रयस्त्रिंशत्, देवाः) ३३ देवता (सर्वदा, रक्षन्ति) सदा, रखते हैं (तम् निधिम्) उस कोष को (अद्य) अब (कः) कौन (वेद) जाने (यम्) जिस को (देवाः) देवता (अभिरक्षथ) सब ओर रखते हैं ॥

अर्थात् परमात्मा की प्रजारूप ये ३३ देव अपने में अनेक रत्नादि के खज़ाने को रखते हैं परन्तु कौन जाने कि पृथिव्यादि किस देव में क्या २ रत्न कोष कहां २ रक्खा है। किन्तु इन ३३ देवों में अनेक रत्नादि कोष को खोजना चाहिये ॥ ३ ॥

यस्य॒ त्रय॑स्त्रिंशद्दे॒वा अङ्गे॒ गात्रा॑ विभेजि॒रे ।
तान्वै त्रय॑स्त्रिंशद्दे॒वाने॑के ब्रह्म॒विदो॑ विदुः ॥२७॥

पदपाठः—यस्य ६। त्रयस्त्रिंशत् १। देवाः १। अङ्गे ७। गात्रा २। विभेजिरे क्रि०। तान् २। वै अ०। त्रयस्त्रिंशद्देवान् २। एके १। ब्रह्मविदः १। विदुः क्रि०॥

अन्वितपदार्थः-(यस्य) परमात्मनः (अङ्गे) व्याप्तिस्थाने (त्रयस्त्रिंशत् देवाः) (गात्रा) गात्राणि (विभेजिरे) यथाविभागं प्राप्ताः सन्ति तान् त्रयस्त्रिंशद्देवान्) (वै) निश्चयेन (एके) केचित् (ब्रह्मविदः) वेदवेत्तारः (विदुः) जानन्ति, न सर्वे ॥

अर्थात्परमात्मनि व्यापके, स्वस्वभिन्नस्वरूपेण त्रयस्त्रिंशद्देवा वर्त्तन्ते तान्देवान् केचिद्वेदज्ञा एव जानन्ति नेतरे साधारणाः ॥४॥

भा० (यस्य) जिस के (अङ्गे) अङ्ग में (त्रयस्त्रिंशत् देवाः) ३३ देवता (गात्रा) स्वरूपों को (विभेजिरे) भिन्न२ प्राप्त हैं (तान्) उन (त्रयस्त्रिंशद्देवान्) ३३ देवों को (एके) कोई (ब्रह्मविदः) वेदज्ञ (विदुः) जानते हैं ॥

अर्थात् परमात्मा की व्यापकता में ३३ देव अपने स्वरूपों को प्राप्त हैं। उन ३३ देवों को सर्व साधारण नहीं जानते किन्तु कोई वेदज्ञ ही जानते हैं इस लिये सब को वेद पढ़कर उन ३३ देवों का भेद जानना चाहिये ॥४॥

इन दो अथर्व के मन्त्रों का भी स्वामी जी कृत भाष्य न होने से, लिखा गया। अन्य सब बातें उन के वेदभाष्य से जान सक्ते हैं ॥

३—परान्त काल की वर्षसंख्या जो स्वामी जी ने लिखी है वह अन्वर्थ से है। अर्थात् पर+अन्त=परान्त। सब से बड़ा परला अन्त, जिस से अधिक आदि अन्त की बोल चाल ही नहीं वह महाप्रलय के बराबर का काल परान्त काल है जो १ कल्प को ब्राह्मदिन मानकर १०० वर्षों के बराबर काल है॥

४—वेदभाष्य भूमिका और वेदभाष्य की भाषा वैदिक यन्त्रालय के पण्डितों ने बनाई है। इसका विज्ञापन भी अब ऋग्वेदभाष्य पर छपता है।

कितनी और किन २ मन्त्रों के संस्कृत भाष्य की भाषा किस पण्डित ने बनाई इस बात का पता वैदिक यन्त्रालय से पूंछ सक्ते हैं कि किस काल में कौन पण्डित इस काम पर नौकर था। परन्तु इतना तौ स्पष्ट ही है कि पं० भीमसेनशर्म्मा पण्डित ज्वालादत्तशर्म्मा पण्डित यज्ञदत्तशर्म्मा इन ३ के अतिरिक्त अन्य कोई इस पद पर नौकर नहीं रहा अतः इन्हीं तीनों की लिखी होनी सम्भव है ॥

५–अग्निष्टोमादि की पद्धति तौ उपस्थित हैं उन में उनके विधान और प्रयोजन भी लिखित है। जिनका यहां वर्णन करना कठिन और बड़ा काम है। परन्तु आर्यों को इतना अवश्य ध्यान रहे कि उन में लिखे समस्त विधान आर्य्यसामाजिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं हैं। सब से बुरा पशुवध का लेख इन पुस्तकों में उपस्थित है जिस ने बौद्धमत को उत्पन्न किया और वेद छुड़ाये। इस लिये इन पद्धतियों के शोधन की आवश्यकता है। अभी एक अग्निष्टोम पद्धति के शोधन का विचार होरहा है। हम ने मथुरा से एक गुजराती महाशय द्वारा एक लिखित पुस्तक मंगाई थी परन्तु उस से पद्धति निर्माण और शुद्धि सम्भव न थी अब पुनः पण्डित भीमसेनशर्म्मा जी ने इस की खोज के लिये काशी को एक आर्य्यमहाशय भेजे थे और कतिपय पुस्तकों की नकल तथा कुछेक का पता लाये हैं। जिन की एक सूची हमारे पास भी सम्मत्यर्थ प्रशंसित पण्डित भीमसेनशर्म्माजी ने भेजी है। अन्य आर्य्यमहाशयों को भी जहां कहीं इस सम्बन्ध का कोई पुस्तक मिले वे कृपया मुझे वा पं० भीमसेनशर्म्मा को लिखें। बन पड़े तौ उस की नकल कराकर भेजने की सहायता दें। यह बड़ा पुण्यकार्य है। तात्पर्य यह है कि यह विषय बड़ा गहन और छान बीन के योग्य है इसके पुस्तक प्रायः गोप्य रखने का प्रचार अविद्यावश हो गया है। तथापि हम लोग इस के लिये सामर्थ्य भर प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है कि कुछ काल में इस के परिणाम की सूचना आर्य्य महाशयों को दी जासकेगी ॥

श्रीयुत बा० गङ्गाप्रसाद एम० ए० द्वारा आये हुए कुंवर शिवनाथसिंह साहब रईस ताजपुर (बिजनौर) के वेदमन्त्र विषयक प्रश्नों का उत्तर—

ये प्रश्न हमारे पास एक छोटे से परचे पर बा० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० ने नकल करके इस प्रकार भेजे हैं—

ओ३म्

मांसभक्षण पर ऋचायें

ऋग्वेद १ । ६१ । १२; २ । ७ । ५; ५ । २९ । ७–८; ६ । १७ । ११; ६ । १६ । ४७; ६ । २८ । ४; १० । २७ । २; १० । २८ । ३; १० । ८९ । १४ ॥ साङ्ख्यायन ३ । १४ । ३ गोभिलीय सूत्र ३ । ९ । १४ ऐतरेयब्राह्मण १ । १५ शतपथब्राह्मण ४ । ५; ३ । १ । २ । १; ६ । ४ । १७ । १८

(नकल) ह० कुंवर शिवनाथसिंह २३ । १० । ९७

यद्यपि ये प्रश्न कुंवर साहब ने उत्तर छपाने को नहीं भेजे किन्तु चौ० चुन्नीसिंह साहब रईस नहटौर को लिखकर दिये थे उन्होंने उस अंग्रेजी लेख की नकल बा० गङ्गाप्रसाद एम० ए० के पास अंग्रेजी में उत्तर लिखने को दी थी, बाबू साहब ने इस अभिप्राय से हमारे पास भेजदिये हैं कि प्रायः इस प्रकार के प्रश्न आर्यों के प्रतिपक्ष में आया करते हैं इस लिये इन का उत्तर वेदप्रकाश में छपने से आर्यों को लाभ होगा । इस लिये हम इन का उत्तर छापना आरम्भ करते हैं—

उत्तर—इन में से प्रथम मन्त्र यह है—

अस्मा इदु प्र भ॑रा॒ तूतु॑जानो वृ॒त्राय॒ वज्र॒मीशा॑नः किये॒धाः ।
गोर्न पर्व॒ वि र॑दा तिर॒श्चेष्य॒न्नर्णां॑स्य॒पां च॒रध्यै॑ १ । ६१ । १२ ॥

पदपाठः—अस्मै ४ । इत् अ० । ऊम् इति अ० । प्र० अ० । भर क्रि० । तूतुजानः १ । वृत्राय ४ । वज्रम् २ । ईशानः १ । कियेधाः १ । गोः ६ । न अ० । पर्व २ । वि अ० । रद क्रि० । तिरश्चा ३ । इष्यन् १ । अर्णांसि २ । अपाम् ६ । चरध्यै अ० ॥

अन्वितपदार्थः—(तूतुजानः) तूतुजान इति क्षिप्रनाम निघं० २ । १ शीघ्रतांकुर्वन् यद्वा वृत्रं मेघं हिंसन् (ईशानः) शक्तिमान् (कियेधाः) कियतोऽनवधृतपरिमाणस्य बलस्य धाता यद्वा क्रममाणं मेघबलं दधात्यवस्थापयति सः कियेधाः सूर्यः (अस्मै) (वृत्राय) मेघाय । वृत्र इति मेघनाम निघं० १ । १० (वज्रम्) स्वकिरणजन्यं विशसनम् (प्र, भर) धारय वा धारयति (अर्णांसि) वृष्टिजलानि (इष्यन्) तस्मान्मेघात्प्रवाहयन् (अपाम्)

हुवा भरा है पर उनके तोड़ने से ही दीख सक्ता है, और काष्ठों में अग्नि है पर रगड़ने ही से प्रकट हो सक्ता है। इसी प्रकार इस हमारे आत्मा में वह परमात्मा है पर सच्चे प्रेम भक्ति ध्यानादि से ही प्राप्त होसक्ता है, अन्यथा नहीं ।१५।

उक्तमुपसंहरति–

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् । आत्मविद्या-
तपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् । तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् ॥ १६ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः ॥

पदपाठः–सर्वव्यापिनम् २। आत्मानम् २। क्षीरे ७। सर्पिः २। इव अ०। अर्पितम् २। आत्मविद्यातपोमूलम् १। तत् १। ब्रह्म १। उपनिषत्परम् १। तत् १। ब्रह्म १। उपनिषत्परम् १ ॥ १६ ॥

(क्षीरे) दुग्धे (अर्पितम्) प्रच्छन्नम् (सर्पिरिव) घृतमिव (सर्वव्यापिनम्, आत्मानम्) अनुपश्यतीतिपूर्वेण सम्बन्धः। किंभूतम्–(आत्मविद्यातपोमूलम्) आत्मविद्या अध्यात्मविद्यैव तपस्तस्य मूलमाधारभूतम् (तद्, उपनिषत्परम्, ब्रह्म) उपनिषदां परं तत्त्वम्, ब्रह्म प्रसिद्धम् ॥ पुनः पाठोऽध्यायसमाप्तिसूचनार्थः ॥

अस्मिन्नध्याये एकेन कारणप्रश्नः, तदनन्तरं द्वितीयेन कालादीनां कारणत्व-माशङ्क्य, तृतीयेन तेषां पारतन्त्र्यं परमात्माधीनत्वञ्च, चतुर्थेन ब्रह्मचक्रवर्णनं, पञ्चमेन नदीरूपकवर्णनं, षष्ठेन जीवात्मनस्तत्र भ्रमणं सति परमात्मज्ञाने ततो मुक्तिश्च, सप्तमाद् द्वादशावधि प्रकृतिजीवात्मपरमात्मनां भेदः परमात्मनः प्राधा-न्यंच, त्रयोदशात् षोडशावधि वह्नितिलदुग्धदधिस्त्रोतसां दृष्टान्तेन परमात्म-नोऽन्तरात्मनि निहितत्वेप्युपायमन्तरेणाऽप्राप्यत्वञ्चोक्तम् ॥

॥*॥ इति तुलसीरामस्वामिकृते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥*॥

पूर्वोक्त का उपसंहार करते हैं कि (क्षीरे) दुग्ध में (सर्पिः) घृत के (इव) समान (सर्वव्यापिनम्) सर्वव्यापी (आत्मानम्) परमात्मा को (अनुपश्य-ति–पूर्व श्लोक से) देखता है। जो (आत्मविद्यातपोमूलम्) अध्यात्मविद्या रूपी तप का मूल है (तत्) वह (उपनिषत्परम्) उपनिषद् का सार (ब्रह्म) ब्रह्म है ॥

यहां "आत्मानम्" कह कर भी फिर "सर्वव्यापिनम्" विशेषण लगाया है जिससे स्पष्ट है कि आत्मा दो हैं एक सर्वव्यापी दूसरा अल्पव्यापी। नहीं

तो "आत्मानम्" ही कहते "सर्वव्यापिनम्" कहने की आवश्यकता न रहती। "तद्ब्रह्मोपनिषत्परम्" यह दो बार अध्यायसमाप्ति की सूचनार्थ पढ़ा है ॥१६॥

इस अध्याय के १ श्लोक में कारण का प्रश्न। २ में कालादि के कारणत्व में शङ्का करके। ३ में उन की परतन्त्रता और परमात्मा के आधीन होना। ४ में संसारचक्र और। ५ में संसारनदी का वर्णन। ६ में जीवात्मा का उन में भ्रमण और परमात्मा के ज्ञान से मुक्ति। ७-१२ में प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा का भेद और परमात्मा की प्रधानता। १३-१६ में अग्नि तिल दुग्ध दधि झरने के दृष्टान्तों से परमात्मा का सर्वव्यापक होकर भी विना उपाय के न प्राप्त हो सकना वर्णन किया गया है ॥

यह तुलसीरामस्वामिकृत श्वेताश्वरोपनिषद्भाष्य में १ अध्याय हुवा ॥

——*——
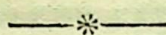
अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

प्रथमाध्यायोपान्तिमे "सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति" इत्युक्तं तस्मात्तस्य तपसोयोगाख्यस्य वर्णनमारभमाणो वेदमन्त्रैः पञ्चभिः क्वचित् केनचित्पाठान्तरेण क्वचिच्च याथातथ्यं वेदपाठेनैव मनसो निग्रहादिकमाह-

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥

पदपाठः-युञ्जानः १। प्रथमम् २। मनः २। तत्त्वाय अ०। सविता १। धियः २। अग्नेः ६। ज्योतिः २। निचाय्य अ०। पृथिव्याः ६। अधि अ०। आ अ०। अभरत् क्रि० ॥ १ ॥

अन्वितपदार्थः-(सविता) इन्द्रियप्रेरको योगेच्छुः (प्रथमम्) आदौ (मनः) (युञ्जानः) युक्तं कुर्वाणः सन् (धियः) बुद्धीः (तत्त्वाय) प्रसार्य। तनुविस्तारे धातुस्तस्मात्-समानकर्तृकयोः पूर्वकाले [पाणिनीये ३।४।२१] इति क्त्वा प्रत्ययः, व्यत्ययेनेडागमाभावः, अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति [पा० ६।४।३७] इति नलोपः, क्त्वोयक् [पा० ७।१।४७] इति यगागमः। (अग्नेः) प्रकाशस्वरूपस्य परमात्मनः (ज्योतिः) स्वरूपम् (निचाय्य) वेदादिषु श्रुतया रीत्या निश्चित्य (पृथिव्याः, अधि) पृथिव्यां हृदयदेशभूमौ (आ अभरत्) आहरेत्। हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यमिति महाभाष्ये प्रदीपे।

इति ह्वधातोर्हस्य भः, लेट्प्रयोगः, इतश्चलोपः परस्मैपदेषु [पा० । ३ । ४ । ९७] इति लिप्‌ इकारस्य लोपः । यद्वा आभरत् बिभृयात् धारयेत् ॥

अयमर्थः—सर्वेन्द्रियप्रेरकोयोगमिच्छन् पुरुषः, प्रथमं मनोयुक्तमचञ्चलं कुर्व्यात्, तथासति बुद्धयः प्रसृता भवन्ति ज्ञानं वर्द्धत इत्यर्थः । तदा परमात्मनः स्वरूपं प्रवृद्धज्ञानेन यथाशक्ति निश्चित्य स्वहृदये धारयेत् । मनसएव सर्वानर्थमूलत्वात्तावन्मनसोनिग्रहएवात्रोपदिष्टः । मनसि च निगृहीते तदधीनानीन्द्रियाणि स्वव्यापारान्निवर्त्तन्ते, निवृत्तेषु चेन्द्रियव्यापारेषु तद्द्वारा पूर्वं क्षरज्ज्ञानमवरुद्धं तेन च वृद्धं भवति । यथा निम्नगासु कुल्यासु प्रवहज्जलं नत्युच्चक्षेत्रेषु निच्यमानं सम्भवति परन्तु प्रवाहनिरोधेनोच्चतां नीतं तदेव जलमुच्चक्षेत्रेष्वपि प्रापयितुं शक्यं भवति तद्वदेव निम्नतरविषयेषु इन्द्रियच्छिद्रैः क्षरज्ज्ञानं न परमात्मानमत्युच्चतमं प्राप्तुं शक्नोति । परन्तु इन्द्रियच्छिद्रप्रवाहनिरोधेनोच्चतां नीतं तदेव ज्ञानं शक्नोति परमात्मप्राप्तय इति । यजुर्वेदे ११ अध्याये प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चमाः इमे मन्त्राः परन्तु तत्राद्ये "धियः" इत्यस्यस्थाने धियमितिपाठः ॥ १ ॥

भा०—(सविता) जीवात्मा (प्रथमम्) प्रथम (मनः) मन को (युञ्जानः) ठीक करता हुवा (धियः) बुद्धियों को (तत्त्वाय) फैला कर के (अग्नेः) प्रकाशक ईश्वर की (ज्योतिः) ज्योति को (निचाय्य) निश्चय कर के (पृथिव्याः, अधि) हृदयभूमि में (आ, अभरत्) धारण करे ॥

ये ५ मन्त्र यजुर्वेद के ११ वें अध्याय में प्रथम द्वितीय तृ० च० पञ्चम मन्त्र हैं परन्तु वहां १ में "धियम्" पाठ है और यहां "धियः" । इतना ही अन्तर है । मानो ऋषि लोग वेदमन्त्रों के प्रमाण से समझा रहे हैं, कहीं २ का पाठ तौ ठीक वेदसंहितापाठ से मिला है और कहीं २ कुछ अन्तर है । पूर्वाध्याय के १५ वें श्लोक में कहा था कि " जो उस को सच्ची तपश्चर्या से देखता है " सो अब उस सच्ची तपश्चर्या योग के वर्णन का आरम्भ करते हुवे मन के निग्रह से आरम्भ करते हैं कि जीवात्मा जो इन्द्रियों का प्रेरक होने से 'सविता' कहा जाता है उस को चाहिये कि प्रथम मन को वश करे । क्योंकि मन ही इन्द्रियों को विषयों में दौड़ा कर सब अनर्थ कराता है । जब मन रुकेगा तब बुद्धियां अर्थात् ज्ञान फैलेगा बढ़ेगा । जब ज्ञान फैलेगा तौ योगी अपने हृदयाकाश में परमात्मा का ध्यान कर सकेगा । जैसे नीचा नहर का जल ऊंचे खेतों में नहीं जासक्ता परन्तु नहर के प्रवाह को रोकें तौ वह जल ऊंचा होने-

पर ऊंचे खेतों में पहुंच सक्ता है। इसी प्रकार मनुष्य के (अल्प) नीचे ज्ञान में परमात्मा जो अत्यन्त (सूक्ष्म होने से) उच्च हैं उन का ध्यान नहीं होसक्ता परन्तु जब ज्ञानरूपी जल के प्रवाह को जो इन्द्रियरूपी छिद्रों द्वारा विषय-रूपी नीचाई में बहा जाता है उसे रोका जाय तो ज्ञान उच्च होकर परमात्मा का ध्यान कर सके। अतएव मन रोक कर, ज्ञान बढ़ा कर, हृदय में ईश्वर का ध्यान करे ॥ "तत्त्वाय" पद की सिद्धि व्याकरण से संस्कृतभाष्य में लिखी है वहां देख लेवें ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।
सुवर्गेयाय शक्त्या ॥ २ ॥

पदपाठः—युक्तेन ३। मनसा ३। वयम् १। देवस्य ६। सवितुः ६। सवे ७। सुवर्गेयाय ४। शक्त्या ३ ॥ २ ॥

अन्वितपदार्थः—ते श्वेताश्वतरादयआहुः—(वयम्) (सवितुः, देवस्य, सवे) सर्वोत्पादकस्य परमात्मनो, देवस्य, सृष्टौ (सुवर्गेयाय) स्वर्ग्यायेति वक्तव्ये आर्षम् । मोक्षानन्दप्राप्तये (शक्त्या) यथाशक्ति (युक्तेन) वृत्तिभ्योनिरुद्धेन (मनसा) प्रयतामहे इतिशेषः ॥

अत्र मन्त्रेपि वेदसंहितायां "स्वर्ग्याय" इति पाठः उपनिषदि च " सुवर्गेयाये " ति पाठान्तरम् । व्याख्यातोऽयं मन्त्रः शतपथब्राह्मणे—युक्तेनमनसा वयमिति मनएवैतदेतदस्मै कर्मणे युङ्क्ते नह्ययुक्तेन मनसा किञ्चित्सम्प्रति शक्नोति कर्त्तुम् । देवस्य सवितुः सव इति—देवेन सवित्रा प्रसूता इत्येतत् । स्वर्ग्याय शक्त्येति—यथैतेन कर्मणा स्वर्गं लोकमियादेवमेतदाह । शक्त्येति—शक्त्या हि स्वर्गं लोकमेतीति । श० ६ । ३ । १। योगशास्त्रेपि प्रथमसूत्रे " योगश्चित्तवृत्तिनिरोध " इत्येव सूत्रितम् ॥ २ ॥

भा०—श्वेताश्वतरादि ऋषि कहते हैं कि (वयम्) हम (सवितुः) सर्वस्रष्टा (देवस्य) देव की (सवे) सृष्टि में (सुवर्गेयाय) मोक्ष के लिये (शक्त्या) यथाशक्ति (युक्तेन) वशीभूत (मनसा) मन से [प्रयत्न करते हैं]

इस मन्त्र के "सुवर्गेयाय" पद के स्थान में वेदसंहिता में "स्वर्ग्याय" पाठ है। इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में कर्मकाण्डविषयक इस प्रकार है— (युक्तेन मन०) मन ही इस कर्म में लगाता है, विना मन की एकाग्रता के सम्प्रति कोई कुछ नहीं करसक्ता (देवस्य सवि०) "सर्वोत्पादक देव के उत्पन्न

किये हम " इत्यादि संस्कृतभाष्य में देखिये। तात्पर्य्य यह है कि मन की एकाग्रता बिना न तो कर्मकाण्ड ही अच्छे प्रकार बनता है और न ज्ञान वा उपासना। योगदर्शन का भी प्रथम सूत्र यही कहता है कि "चित्त की वृत्तियों का रोकना योग है" ॥ २ ॥

ननु प्रबलं मन इन्द्रियाणि च कथं निरोद्धुं शक्यानि ? परमात्मनः साहाय्येनेत्याह—

युक्त्वाय मनसा देवान्सुवर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

पदपाठः—युक्त्वाय अ० । मनसा ३ । देवान् २ । सुवर्यतः २ । धिया ३ । दिवम् २ । ज्योतिः २ । बृहत् २ । करिष्यतः २ । सविता १ । प्रसुवाति क्रि० । तान् २ ॥ ३ ॥

अन्वितपदार्थः—(धिया) बुद्धिबलेन (मनसा) मनसा सह वर्त्तमानानि (सुवर्यतः) स्वः स्वर्गो विषयसुखं तं यन्तीति स्वर्यतःसुखमनुधावन्ति(देवान्) द्योतनात्मकानि इन्द्रियाणि (युक्त्वाय) वशीकृत्य (दिवम्) आनन्दमयं (ज्योतिः) प्रकाशाख्यम् (बृहत्) प्रवृद्धम् (करिष्यतः) ये योगिनः करिष्यन्ति (तान्) (सविता) सर्वोत्पादकः कृपालुः परमात्मा (प्रसुवाति) प्रेरयति तत्साहाय्यं करोति ॥

अयंभावः—ये योगमिच्छवः परमात्मभक्ताः बुद्धिबलेन मनइन्द्रियाणि च वशीकृत्य यथाशक्ति स्वकीयं ज्ञानबलं वर्द्धयितुमिच्छन्ति तान् सविता सर्वपिता परमात्माऽनुग्रहेण प्रसुवाति स्वसाहाय्येन तत्र प्रेरयति यतस्ते कृतकृत्या भवेयुरिति। वेदसंहितायां " सविता " इति पाठः अत्र च तत्स्थाने " मनसे"-ति । वेदसंहितायां " स्वर्यतः " अत्र च " सुवर्यतः " इति पाठान्तरम् । युक्त्वायेत्यस्य व्याकरणेन सिद्धिस्तत्त्वायेतिव्याख्यातपदसमैव ज्ञातव्या। क्वचित्पाठे—सुवः, यतः इति च पृथक्पदं तत्स्वरार्थं तस्मिन्पक्षे सुवःस्वः सुखं तदुद्दिश्य यतः गच्छतः इतिव्याख्येयम् । प्रसुवाति इति लेट् प्रयोगः । षू प्रेरणे तुदादिः । लेटोऽडाटौ (पा० ३ । ४ । ९४) ॥ ३ ॥

प्र०—यदि इन्द्रियां और मन प्रबल हैं तो अल्प सामर्थ्य वाला जीवात्मा इन्हें कैसे रोके ? उत्तर—परमात्मा की सहायता से । यह कहते हैं—(धिया)

बुद्धि से (मनसा) मन सहित (सुवर्यतः) सुख पर भागती हुई (देवान्) इन्द्रियों को (युक्त्वाय) रोक कर (दिवम्) आनन्दमय (ज्योतिः) ज्योति को (बृहत्) जो बड़ा (करिष्यतः) करेंगे (तान्) उन्हें (सविता) सर्वपिता परमात्मा (प्रसुवाति) प्रेरणा करता है ॥

अर्थात् जो समझ पूर्वक मन और इन्द्रियों को वश करके आनन्दमय ज्योति को बढ़ाना चाहते हैं, कृपालु परमात्मा उन्हें सहायता देकर कृतकृत्य करते हैं। "युक्त्वाय" पद की व्याकरण से सिद्धि वैसे ही जानो जैसे पूर्व "तत्त्वाय" पद की की गई। "प्रसुवाति" यह लेट् लकार का प्रयोग है, सूत्र संस्कृत में लिखा है। वेद में "मनसा" के स्थान में "सविता" और "सुवर्यतः" के स्थानमें "स्वर्यतः" पाठ है ॥ ३ ॥

योगिभिर्न केवलं मन एव विषयेभ्योनिरोद्धव्यं किन्तु जगत्पितुः स्तुतिरपि कर्त्तव्येत्याह-

युञ्जते मनउतयुञ्जते धियोविप्राविप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
विहोत्रादधे वयुनाविदेकइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥

पदपाठः-युञ्जते क्रि० । मनः २ । उत अ० । युञ्जते क्रि० । धियः २ । विप्राः १ । विप्रस्य ६ । बृहतः ६ । विपश्चितः ६ । वि अ० । होत्राः १ । दधे क्रि० । वयुनाविद् १ । एकः १ । इत् अ० । मही १ । देवस्य ६ । सवितुः ६ । परिष्टुतिः १ ॥ ४ ॥

अन्वितपदार्थः-(होत्राः) योगयज्ञानुष्ठातारः (विप्राः) विद्वांसो ब्राह्मणाः (मनः) (युञ्जते) समाहितं कुर्वन्ति (उत) अपि (धियः) ज्ञानेन्द्रियाणि बुद्धिवृत्तीर्वा (युञ्जते) समादधति । यः (एकः, इत्) एकएवाऽसहायः (वयुनावित्) विज्ञानवित्, अत्रान्येषामपीतिदीर्घः । (वि, दधे) विविधं जगद्रचयति । तस्य (विप्रस्य) मेधाविनः (बृहतः) महतोब्रह्मणः (विपश्चितः) अनन्तविद्यस्य (सवितुः) सर्वोत्पादकस्य (देवस्य) प्रकाशस्वरूपस्य (मही) महती (परिष्टुतिः) सर्वतः स्तुतिः, कार्य्येतिशेषः ॥

अयंभावः-विद्वांसोहि योगयज्ञमनुष्ठातुं शक्नुवन्ति नेतरेऽज्ञाः। तैश्च विद्वद्भिर्मनइन्द्रियाणि च समाधाय परमात्मनोदेवस्य सर्वथा स्तुत्युपासने कर्त्तव्ये, यतः प्रसन्नः सन्जगदीश्वरस्तान् मोक्षपदं नयेत् इति। इयमृक्-ऋग्वेदे अ०४अ०४ व० २४ मं० १ अपि पठितास्ति न चास्यां तत्रापि कश्चित्पाठभेदः ॥ ४ ॥

भा० योगियों को न केवल मन और इन्द्रियों को विषयों से ही रोक कर बैठ रहना चाहिये किन्तु परमात्मा की बहुत प्रकार से स्तुति भी करनी चाहिये । यह कहते हैं–

(होत्राः) योगयज्ञ के होता लोग (विप्राः) विद्वान् ब्राह्मण (मनः) मन को (युञ्जते) एकाग्र करते हैं (उत) और (धियः) ज्ञानेन्द्रियों वा बुद्धियों को (युञ्जते) समाहित करते हैं। जो (एकः, इत्) एकला, ही (वयुनावित्) विज्ञानवेत्ता (वि, दधे) सृजता है । उस (विप्रस्य) मेधावी (बृहतः) बड़े (विपश्चितः) अनन्त विद्या वाले (सवितुः) सर्वपिता (देवस्य) देव की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सर्वप्रकार से स्तुति [करनी चाहिये] ॥

तात्पर्य्य यह है कि जो लोग योगयज्ञ के होता हों वे अपने मन बुद्धि को समाहित कर के परमात्मा की अत्यन्त नम्रता और भक्तिभाव से स्तुति करें; सर्व संसार का बनाने वाला वही है । यही ऋचा–ऋग्वेद अ० ४ अ० ४ व० २४ मं० १ में भी है और पाठ में भी कुछ भेद नहीं ॥

स्तुत्युपासनयोर्लग्नान्स्वभक्तान् प्रति परमकृपालुरीश्वरोभक्तिं स्तुतिं स्वीकृत्य ब्रवीतीत्याह–

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५॥

पदपाठः–युजे क्रि० । वाम् २। ब्रह्म १। पूर्व्यम् १। नमोभिः ३। विश्लोकः १। एतु क्रि०। पथ्या १। इव अ०। सूरेः ६। शृण्वन्तु क्रि० । विश्वे १ । अमृतस्य ६। पुत्राः १। आ अ०। ये १। धामानि २। दिव्यानि २ । तस्थुः क्रि० ॥ ५ ॥

(ये, विश्वे, अमृतस्य, पुत्राः) ये, सर्वे, अमृतस्य ब्रह्मणोमम, पुत्राः ते भवन्तः (शृण्वन्तु) श्रुत्वा जानन्तु किन्तदाह–(वाम्) युवां योगविद्याशिष्यशिक्षकौ (पूर्व्यम्) पूर्वभवं सनातनम् (ब्रह्म) अहम् (युजे) युञ्जे युक्तोभवामि भवन्तौ प्राप्नोमि (नमोभिः) नमस्कारैः स्तुतिभिः (वि,श्लोकः, एतु) विविधा, कीर्त्तिः, प्राप्नोतु । कस्य का इव-(सूरेः) विदुषः (पथ्या) मार्गः (इव) । (दिव्यानि धामानि) मोक्षपदम् (आ, तस्थुः) अधितिष्ठन्तु। लोट्स्थाने लिट् व्यत्ययेन ॥

स्तुतिं स्वीकुर्वन्नसौ परमदयालुः सर्वपिता स्वभक्तभक्त्या प्रीतः सन्निदमाह–हे मम सर्वे पुत्राः ! भवन्तः शिष्यशिक्षकभावेन योगमास्थाय मय्यात्मानं यो-

जितवन्तस्तस्मादहं भवतः प्राप्नोमि, आगच्छन्तु मोदमाना मोक्षपदमधितिष्ठन्तु। भवत्कृतस्तुतिभिः श्लोकः कीर्त्तिर्विपुला च भवतः प्राप्नोतु ॥ ५ ॥

भा० स्तुति उपासना को स्वीकार करते हुए परमकृपालु परमात्मा अपने भक्तों से इस प्रकार कहते हैं कि–

(ये) जो (विश्वे) सब (अमृतस्य) अमर के (पुत्राः) पुत्र हो (शृण्वन्तु) सुनो कि (पूर्व्यम्) पुरातन (ब्रह्म) मैं ब्रह्म (वाम्) तुम दोनों को (युजे) प्राप्त होता हूं। (नमोभिः) नमस्कारों से (वि, श्लोकः) विविध, कीर्त्ति (एतु) प्राप्त होवे। (इव) जैसे कि (सूरेः) बुद्धिमान् का (पथ्या) मार्ग [उसे प्राप्त होता है] (दिव्यानि, धामानि) दिव्य, धामों का (आ, तस्थुः) अधिकार पावो॥ अर्थात् परमात्मा जो परमकृपालु हैं अपने भक्तों पर, जब उनके भक्त अपने परमपिता की शरण के अभिलाषी हो अपने आप को उसी में लगाते हैं, युक्त करते हैं, जोड़ते हैं, तो उन पर प्रसन्न होते हैं कि हे सब पुत्रो! तुम ने जो योगविद्या का शिष्य शिक्षक बन २ कर अपने आप को मुझ में लगाया है, मैं उस से प्रसन्न हूं, तुम्हारी दोनों की भक्ति स्वीकार करता हूं, तुम्हारी अटल कीर्त्ति हो, तुम दिव्य धामों (मोक्ष) का अधिकार लो ॥५॥

अनेकजन्मानुष्ठितशुभस्य तेन विगताशेषमलस्य शुद्धमानसस्य विविक्तस्य शमदमादिसाधनकलापयुक्तस्योत्तमाधिकारिणोमुमुक्षोर्मोक्षसाधनीभूतं योगं संक्षिप्याह–

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राभिरुध्यते ।
सोमोयत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥६॥

पदपाठः–अग्निः १। यत्र अ०। अभिमथ्यते क्रि०। वायुः १। यत्र अ०। अभिरुध्यते क्रि०। सोमः १। यत्र अ०। अतिरिचयते क्रि०। तत्र अ०। संजायते क्रि०। मनः १ ॥ ६ ॥

अन्वितपदार्थः–(यत्र) यस्मिन् मूलाधारप्रदेशेऽग्निमण्डले (अग्निः) शरीरस्थं विद्युत्तत्त्वम् (अभिमथ्यते) मूलबीजेन क्षोभ्यते, (वायुः) प्राणादिसंज्ञः (यत्र) सुषुम्नायाम् (अभिरुध्यते) निरुद्धः क्रियते, (यत्र) यस्मिन्द्वादशान्तप्रदेशे (सोमः) शरीरस्थं चन्द्रमण्डलम् (अतिरिच्यते) अतिशयेन रिच्यतेऽर्थाद्यत्र सुषुम्नायाममामूलाधारादमृतं स्रवद्व्याप्यते (तत्र) तस्मिन् मूलाधारे (मनः) (संजायते) स्थिरं भवति

ओ३म्

॥ वेदप्रकाश ॥

वर्ष १ } .वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { मास १२

(पृष्ठ १४२ से आगे शङ्कासमाधान)

तेषां जलानाम् (चरध्यै) चरणाय भूप्रदेशंप्रतिगमनाय तस्यमेघस्य (पर्व) पर्वाणि अवयवसन्धीन् (तिरश्चा) तिर्यगवस्थितेन वज्रेण (वि, रद) विलिख छिन्धीतियावत् । अत्रदृष्टान्तमाह (गोर्न) न शब्दइवार्थे । गौरितिपृथिवीनाम निघं० १।१। गौरिति साधारणनाम निघं० १।४ गौरितिवाङ्नाम निघं० १।११ गौरिति स्तोतृनाम निघं० ३।१६ गौरिति पदनाम निघं० ४।१ तथा ५।५ अर्थात्—यथा गोःपृथिव्याःपर्वाणि पर्वतप्रदेशान्कश्चित् वज्रेण (डाइनामाइट बारूद इत्याद्याख्येन) विदारयतितद्वत् । यद्वा यथा गोर्वाचःपर्वाणि ताल्वादीनि पृथक्कृत्यवर्णान्वक्ता उच्चारयतितद्वत् । यद्वा गोःसाधारणस्यवृक्षादेः कस्यचित्सन्धिमतो वस्तुनःपर्वाणिकश्चिद्विदारयतितक्ष्णोतितद्वत् । यद्वा गोः = स्तोतुःपदार्थगुणवर्णनकर्त्तु र्वर्णितानिपदवाक्यानिपृथक् २ श्रुत्वा कश्चित् विजानाति स्वस्मिन्समावेशयति तद्वत्सूर्योऽपिमेघाऽवयवान्पृथक्कृत्य स्वस्य प्रकाशावधि समावेशयति । एवमेवगत्यार्थानां सङ्गतिरपि बोद्धव्या । एवं निघण्टूक्तार्थानुसारेणात्रमांस-

स्यवर्णनमप्युपलभ्यते किंपुनर्भक्षणम् । वेदार्थस्य चाऽर्षग्रन्थानां निघण्ट्वादीनामानुकूल्येनैवसत्यताशिष्टशिरोधार्या नान्या ॥

परन्तुमन्त्रेऽस्मिन्सायणकृतार्थस्वीकारेऽपिन मांसस्यभक्ष्यंयत्वमुपपन्नंभवति, तद्यथा "वृत्रस्यमेघरूपस्यपर्वपर्वाणिअवयवसन्धीन्तिरश्चातिर्यगवस्थितेन वज्रेण विरदविलिखच्छिन्धीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः—गोर्न = यथामांसस्यविकर्तारोलौकिकाः पुरुषाः पशोरवयवानितस्ततोविभजन्ति तद्वत् "

यथाचर्मकारादयोलौकिकाः मृतपशुदेहाऽवयवान्विदारयन्ति तद्वत् सूर्य्योऽपिमेघाऽवयवान्विदारयति । अनेनकथमिदंसिद्धंमांसं भक्ष्यमिति न कथमपि । अस्यमन्त्रस्य इन्द्रः = सूर्य्योदेवता । गौरिवीतिर्ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

भा०–(तूतुजानः) नष्ट करता हुआ (ईशानः) शक्तिमान् (क्रियेधाः) अपरिमित बल का धर्त्ता [सूर्य्य] (अस्मै वृत्राय) इस मेघ के लिये (वज्रम्) शस्त्र को (प्र, भर) धारण करे वा करता है । (अर्णांसि) जलोंको (इष्यन्) बहाता हुआ (अपाम्) जलों के (चरध्यै) बहाने के लिये (पर्व) जोड़ों को (तिरश्चा) तिरछे वज्र से (वि,रद) विदीर्ण करता है (न) जैसे (गोः) गो के पर्वों को ॥

तात्पर्य यह है कि सूर्य्य मेघों के अवयवों जोड़ों को छिन्न भिन्न करता है, वह बड़ा शक्तिमान् है, अपरिमित बल का धर्त्ता है, वह पृथिवी पर जलप्रवाह के लिये अपने किरण रूप तिरछे चलने वाले वज्र से मेघ को ऐसे काटता पृथक् २ करता है जैसे "गो" के जोड़ों को कोई काटे वा पृथक् २ करे ।

अब विचारणीय यह है कि "गो" का अर्थ क्या है । संस्कृतभाष्य में हम ने निरुक्त के अनुसार "गो" शब्द के अर्थ–पृथिवी, साधारण, वाणी, स्तुतिकर्त्ता, पद, ये ५ लिखे हैं, यदि पृथिवी अर्थ माने तौ यह तात्पर्य हुवा कि जैसे पृथिवी के किसी भाग को कोई खोदता वा "डाइनामाइट" से उड़ाता है। यदि साधारण अर्थ लें तौ यह ध्वनि निकलती है कि जैसे काष्ठादि किसी

अवयवी के अवयवों को कोई तोड़े फोड़े चीरे फाड़े। यदि वाणी अर्थ माना जावे तौ यह आशय हुवा कि जैसे वक्ता वाणी के अवयव पद वाक्यादि वा उन के स्थान तालव्यादि को भिन्न २ करके उच्चारता है। श्रोता अर्थ में भी यही आशय है। इसी प्रकार पद शब्द के ज्ञान गमन प्राप्ति अर्थों में सङ्गति जानो।

इस प्रकार निघण्टु में लिखे "गो" शब्द के अर्थों से मांस की गन्ध भी नहीं आती। और निघण्टु आदि आर्ष सम्प्रदायानुकूल ही वेद के अर्थ की सत्यता प्रामाणिक मानी जाती है। परन्तु थोड़ी देर के लिये सायणभाष्य को भी ठीक मान लें तौ भी मांस का भक्ष्य होना सिद्ध नहीं होता। सायण का पाठ ज्यों का त्यों संस्कृत भाष्य में लिखा है। उस का अक्षरार्थ यह है-"हे इन्द्र! वृत्र मेघरूपी के जोड़ों को तिरछे वज्र से काटो। इस में दृष्टान्त-जैसे मांस के काटने वाले लौकिक पुरुष, पशु के जोड़ों को इधर उधर पृथक् २ करते हैं तद्वत्।"

अब विचारना चाहिये कि "सूर्य मेघ को ऐसे छिन्न भिन्न करता है जैसे चमार आदि लोग मृत पशु के अवयवों को"। भला इस कथन से मांस का भक्ष्य होना क्या सिद्ध होता है। हां, सायण के लेखानुसार केवल पशु का नाम मात्र आता है, फिर क्या नाम आने से भक्ष्य होना सिद्ध होगया! कदापि नहीं। इस मन्त्र का इन्द्र=सूर्य्य देवता। नोधा ऋषि। त्रिष्टुप्छन्द है।१।

दूसरा मन्त्र निम्नलिखित हैः-

त्वं न इत्यस्याः सोमाहुतिर्भार्गवऋषिः। अग्निर्देवता। विराट्पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

त्वं नो॑ अ॒सि भार॒ताग्ने॑ व॒शाभि॑रु॒क्षभिः॑।
अ॒ष्टाप॑दीभि॒राहु॑तः ॥२।७।५॥

पदपाठः-त्वम् १। नः ६। असि क्रि०। भारत १। अग्ने १। वशाभिः ३। उक्षभिः ३। अष्टापदीभिः ३। आहुतः १ ॥२॥

एतन्मन्त्रदेवताभूतेनाऽग्निशब्देनाऽत्र भौतिकोऽग्निर्विद्वान् वा वर्ण्यते तत्रविद्वत्पक्षस्तुश्रीस्वामिदयानन्दसरस्वतीकृते भाष्ये सम्यगुक्त एव। अत्रतु भौतिकपक्षोनिरूप्यते (त्वम्) अयम् (अग्ने) अग्निः (भारत) भरता इत्यृत्विङ्नाम निघं० ३।१८।

भरतैर्ऋत्विग्भिररण्योरुत्पादितस्तदपत्यमिववर्त्तमानः । (अष्टापदीभिः) चत्वारःपादाश्चत्वारश्च दुग्धबाहुल्यभारात् स्तनाः पादाङ्गेत्यष्टौ पादा यासां ताभिः (वशाभिः) वश कान्तौ । कमनीयाभिर्गोभिः (उक्षभिः) वृषभैः अग्निहोत्रसाधनभूतैः (नः) अस्माकम् (आहुतः) (असि) अस्ति । पुरुषव्यत्ययः ।

अयमाशयः—वृषभोत्पादितैरन्नैर्व्रीहियवादिभिर्गोभिरुत्पादितैर्घृतादिहव्यैरग्निराहूयते । नात्र कस्यापि पार्श्वे प्रमाणं यत्साक्षाद्गोभिर्वृषभैरेववाऽग्निर्हूयतेइति । गोवाच्यैः उक्षवाच्यैश्च पशुभिः साक्षात् होमस्य निषिद्धत्वाच्च नात्र सा भ्रान्तिरपि शक्या कर्त्तुम् । परमवैदिकेन मनुना मांसस्य यक्षरक्षआदिभक्ष्यत्वस्य निरूपितत्वात् । विशेषतश्च गवामहन्यत्वात् (अघ्न्याः) यजुषि १ ।१ ॥ हन्तुमनर्हागावः इति स्पष्टं गोघातस्य निषिद्धत्वात् । अत्र सायणाचार्येण "अष्टापदीभिः" इत्येतस्य पदस्य व्याख्यानं कुर्वता "गर्भिणीभिः" इत्येवं व्याख्यातम् । गर्भिण्यावधश्च न कस्यापि सम्मतः । अतोविज्ञायते सायणाचार्योपि गोजन्यघृतादिसाधनान्यभिप्रेत्यैव व्याख्यातवानिति । यथा मुसलोलूखले यज्ञसाधनभूते, तथैव गवादयः । यथा च मुसलोलूखले न हूयेते किन्तु तत्साधितपिष्टादयो हूयन्ते, तथैव गोसाधितघृतादयो बोध्याः ॥२॥

भा०-इस मन्त्र में इस के देवता अग्निशब्द से भौतिकाग्नि तथा विद्वान् अर्थ का ग्रहण है। जिस में से विद्वान् अर्थ का वर्णन तो स्वामी दयानन्द स० जी महाराज ने अच्छे प्रकार किया ही है केवल भौतिक पक्ष को लेकर के भी हम विचार करते हैं तो मांसभक्षण का वर्णन इस से नहीं निकलता । (त्वम्) यह (अग्ने) अग्नि जो (भारत) ऋत्विज् लोगों का उत्पन्न किया हुआ है । भरत नाम निघण्टु में ऋत्विजों का है । सो (अष्टापदीभिः) ८ पाद वाली अर्थात् ४ पाद और चार स्तन भी जिन के दुग्धकी बहुतायत से

पाद से हैं ऐसी (वशाभिः) कमनीय गौओं से और (उक्षभिः) वृषभों से (नः) हमारा (आहुतः) सब ओर से हुत (असि) है ॥

अर्थात् गौओं से उत्पन्न हुआ घृतादि तथा वृषभों से उपजाये यव तिलादि द्वारा अग्नि में होम किया जाता है। जो लोग अपने मन से यहां यह कल्पना करते हैं कि कि गौ वा बैल ही अग्नि में होमे जाते हैं। (उन की कल्पना ४ कारणों से निर्मूल और बेठीक है। १-साक्षात् ही गौ वा बैल के होम के लिये कोई प्रमाण नहीं। २-परम वैदिक मनु ने अग्निदेवता की खुराक मांस नहीं माना किन्तु यक्ष रक्ष आदि की माना है। ३-सायण ने "अष्टापदी" का अर्थ "गर्भिणी" किया है इस लिये भी प्रतीत होताहै कि सायण भी उनसे उपजे दुग्ध धान्यादि द्वारा ही होम मानता है। क्योंकि जिन सायणादि लोगों ने नवीन समय में पशुवध को अज्ञानवश पाप नहीं माना, उन्होंने भी गर्भिणीवध को पाप माना है। ४-यजुः १।१ (अघ्न्याः) पद से गो वध का विशेष निषेध है ॥

स्पष्ट यह है कि गौ बैल यज्ञ के साधन हैं। जैसे मुसलोलूखल साधन हैं तो उनसे कूटे पदार्थ ही होमे जाते हैं न कि मुसलोलूखल ॥

इस कारण गौ बैल से साध्य घृतादि द्वारा ही होम का तात्पर्य है ॥२॥

तीसरा मन्त्र यह है:-

७-८ गौरिवीतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥

ऋ० ५।२९।७॥

पदपाठः-सखा १। सख्ये ४। अपचत् क्रि०। तूयम् २। अग्निः १। अस्य६ क्रत्वा ३। महिषा २। त्री २। शतानि २। त्री २। साकम् अ०। इन्द्रः १। मनुषः ६। सरांसि २। सुतम् २। पिबत् क्रि०। वृत्रहत्याय ४। सोमम् २ ॥३॥

अन्वितपदार्थः-(अस्य) इन्द्रस्य सूर्यस्य (सखा) मित्रभूतः (अग्निः) प्रसिद्धः (सख्ये) मित्राय सूर्याय (त्री) त्रीणि (शतानि) अतुलानि। शतमिति बहुनाम निघं० ३।१। (मनुषः) मनुष्यस्योपकारकाणि (महिषा) महिषाणि महान्ति। महिष इति

महन्नामनिघं० ३।३। (सरांसि) वायुपृथिव्यन्तरिक्षस्थानि जलपूर्णानि सरोवरनिभानि (तूयम्) तूर्णम् । तूयमितिक्षिप्रनाम निघं०।२।१५। (कृत्वा) कर्मणा (अपचत्) पचति ।लकारव्यत्ययः ।तानि च (त्री) त्रीणि (साकम्) युगपदेव (इन्द्रः) सूर्यः (वृत्रहत्याय) मेघहननाय (सुतम्) निष्पादितम् (सोमम्) ओषधिरसम् (पिबत्) पिबति शोषयति ॥

अयमाशयः—सूर्य्यः पृथिवीस्थं वायुस्थमन्तरिक्षस्थश्चेति स्थानत्रयस्थं सोमाद्योषधिरसं पिबति, पीत्वा च वृत्रं हन्ति मेघं वर्षयति। तथा तस्य सूर्य्यस्य सखा सहायकोविद्युदादिरूपोऽग्निस्तं शीघ्रं पचति तेनाग्निना पाचितानि च तानि त्रीणि सरांसि जलसमूहरूपाणि स सूर्यः युगपदेव शोषयति ॥

अत्र सायणाचार्येण निघण्टौ महन्नामेत्यज्ञात्वाऽज्ञात्वावाऽज्ञानेन महिषस्य पशुविशेषस्य ग्रहणं कृतं,कोसाविन्द्रः योहिमहिषाणां शतत्रयं पिबति । अत्रेदमपिविचार्य-सतिपशुमांसग्रहणे "पिबत्" इति पानार्थस्य पाधातोः प्रयोगोऽपि असंगत एवाऽभविष्यत् । अतएव सरांसि इत्यस्य विशेषणं महिषा इतीति निश्चीयते ॥३॥

भा०—(अस्य) इस सूर्य्य का (सखा) सहायक (अग्निः) अग्नि, (सख्ये) सूर्य्य मित्र के लिये (त्री) तीन (महिषा) बड़े (शतानि) अतुल (मनुषः) मनुष्य के उपकारक (सरांसि) जलाशयों को (तूयम्) शीघ्र (कृत्वा) अपने कर्म से (अपचत्) पकाता है [गर्म करता है] और उन (त्री) तीनों के (सुतम्) खींचे (सोमम्) अर्क [रस] को (वृत्रहत्याय) मेघ वर्षाने के लिये (इन्द्रः) सूर्य (साकम्) एक साथ ही (पिबत्) पीता शोषता है ॥

तात्पर्य यह है कि सूर्य्य का सहायक मित्र अग्नि, सूर्य के लिये तीन (महिषा) बड़े तालावों को, जो पृथिवी वायु और अन्तरिक्ष में जल भरा

है उसे शीघ्र गर्म करदेता है और सूर्य उस रस को मेघ वर्षाने के लिये एक बार ही पीजाता है ॥

सायणाचार्यने " महिष " शब्द से भैंसे पशुविशेष का ग्रहण करके यह अर्थ किया है कि अग्नि ने इन्द्र के लिये ३०० भैंसे पकाये और उन तालाबों को इन्द्र ने एक ही बार पीलिया । एक तो इस अर्थ में निघण्टुलिखित महिष शब्द के " महत् " अर्थ का त्याग होने से ठीक नहीं क्योंकि आर्ष परिपाटी से अर्थ करना अच्छा होता है । दूसरा दोष असंगति का यह है कि मांस के तीन तालाबों का पीना कैसा । मांस खाया जाता है, न कि पिया जाता । इस कारण पृथिवी वायु अन्तरिक्ष में भरे ३ तालाबों का विशेषण महिष शब्द है जिस से यह अर्थ होता है कि "महिषा सरांसि= बड़े जलाशयों को " । और यही अर्थ निघण्टु आदि ऋषिकृत ग्रन्थों तथा युक्ति से संगत है । निघण्टु के पते संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

चौथा मन्त्र भी इस से अगला ही है और इसी प्रकरण का है–

त्री यच्छ॒ता म॑हि॒षाणा॒मघो॒ मास्त्री सरां॑सि म॒घवा॑ सो॒म्यापाः ।
का॒रं न विश्वे॑ अह्वन्त दे॒वा भर॒मिन्द्रा॑य॒ यदहिं॑ ज॒घान॑ ॥५।२९।८॥

पदपाठः–त्री २ । यत् अ० । शता २ । महिषाणाम् ६ । अघः १ । माः क्रि० । त्री २ । सरांसि २ । मघवा १ । सोम्या २ । अपाः क्रि० । कारम् २ । न अ० । विश्वे १ । अह्वन्त क्रि० । देवाः १ । भरम् २ । इन्द्राय ४ । यत् अ० । अहिम् २ । जघान क्रि० ॥ ४ ॥

अन्वितपदार्थः–(यत्) यदा (महिषाणाम्) महताम् जलानाम् (त्री) त्रीणि (शता) शतानि अतुलानि (सरांसि) (अघः) अविनाशनीयोऽग्निः (माः) माति (यत्) यदा च (त्री) तानि त्रीणि (सोम्या) सोम्यानि सोमाद्योषधिरसजातानि (मघवा) इन्द्रः सूर्य्यः (अपाः) पिबति (अहिम्) मेघम् । अहिरितिमेघनाम निघं० १।१०। (जघान) हन्ति। छन्दसि लुङ्लङ्लिटः३।४।६। इति सामान्यकाले लिट् । [तदा] (विश्वे) सर्वे (देवाः) पृथिव्यादयः (कारं, न) कारं कर्मकारमिव (इन्द्राय)

इन्द्रं सूर्य्यम्। विभक्तिव्यत्ययःसायणभाष्येऽपि। (भरम्) पोषकम् (अह्वन्त) आह्वयन्ते ॥

यदा अग्निः तानि पर्वमन्त्रोक्तानि त्रीणि सरांसि सूर्य्याय माति यदा च सूर्य्यस्तानि पीत्वा मेघं वर्षयति तदा अन्ये पृथ्व्यादयोदेवाः सूर्य्यात्स्वभागमाकाङ्क्षन्ते आददते च। सूर्य्यगृहीतेनैव रसेन पृथिव्यादिसर्वलोकानामुपकारइत्याशयः ॥

अत्रापि माशब्देन मांसग्रहणे न किमपि प्रमाणमस्ति सायणाचार्य्यपार्श्वे ॥४॥

भा०–(यत्) जब कि (अघः) अग्नि, (महिषाणाम्) बड़े जलों के (त्री) तीन (शता) अतुल (सरांसि) जलाशयों को (माः) भर देता नाप देता और जब सूर्य्य (त्री) उन तीनों (सोम्या) सोमाद्योषधिरसयुक्तों को (अपाः) पीलेता और (यत्) जब कि (अहिम्) मेघ को (जघान) मार बहाता है तब (विश्वे) सब (देवाः) पृथिव्यादि लोक (इन्द्राय) उस सूर्य को (कारं, न) कर्मकार के समान (भरम्) पोषणकर्त्ता को (अह्वन्त) आह्वान करते हैं।

अर्थात् जब अग्नि ऊष्मा गरमी, पृथिवी वायु और अन्तरिक्ष के तीन बड़े भारी जलाशयों को सूर्य्य के लिये माप देता और सूर्य उन्हें पीकर मेघ वर्षाता है तब ही पृथिव्यादि लोकों का पोषणादि व्यवहार चलता है। इसलिये पृथिव्यादिलोकस्थों की अभिलाषा लगी रहती है कि कब गरमी पड़े और कब सूर्य्य रस खींचे और कब वर्षा हो और कब हमारे लिये सुख मिले। इसलिये मानो पृथिव्यादि लोकस्थ जीव, इस काम के लिये सूर्य का आह्वान करते हैं॥

इस मन्त्र में भी "माः" पद से मांस का अर्थ लेने के लिये सायणाचार्य्य वा उन के अनुयायियों के पास प्रमाण नहीं है। और हमारा ऊपर लिखा अर्थ पूर्वमन्त्रस्थ प्रकरण से मिलता हुवा तथा संस्कृत भाष्य में लिखे निघण्टुस्थ अर्थ से विशेष पुष्ट होने से सब को मानने योग्य है॥ ४॥

विशेष—

श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वती जी ने जो इन दोनों मन्त्रों के अर्थ करते हुए राजधर्म का उपदेश किया है वह सर्वथा उपमालङ्कार से ठीक है।

भा०–(यत्र) जहां (अग्निः) अग्नि (अभिमथ्यते) मथा वा सुलगाया जाता है-(यत्र) जहां (वायुः) वायु (अधिरुध्यते) रोका जाता है, (यत्र) जहां (सोमः) अमृत (अतिरिच्यते) अतिशय से होता है। (तत्र) वहां (मनः) मन (संजायते) स्थिरताको लाभ करता है ॥

योगी लोग जानते हैं कि देह में मूलाधार एक स्थान है वहां प्राण रोका जाता है, वहीं मानस अग्नि उस प्राण वायु की सहायता से धौंक कर सुलगाया जाता है, वहीं मूलाधार से सुषुम्ना नाडी तक अमृत टपकने के सा आनन्द प्रतीत होता है, वहीं मनः ठहर जाता है ॥ ६ ॥

तत्र मनोनिरोधं कृत्वा किं कुर्य्यादित्याह–

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्त्तमक्षिपत् ॥ ७ ॥

पदपाठः–सवित्रा ३ । प्रसवेन ३ । जुषेत क्रि० । ब्रह्म २ । पूर्व्यम् २ । तत्र अ० । योनिम् २ । कृणवसे क्रि० । न अ० । हि अ० । ते ६ पूर्त्तम् १ अक्षिपत् क्रि० ॥७॥

अन्वितपदार्थः–तदानीं योगी (सवित्रा) द्वादशान्तस्थितया सूर्य्यकलया (प्रसवेन) सोममण्डलात्सुषुम्नायां प्रसूतेनाऽमृतेनाऽधिकारी (पूर्व्यम्) सनातनम् (ब्रह्म) (जुषेत) सेवेत (तत्र) पूर्वोक्तमूलाधारदेशे (योनिम्) ब्रह्मानन्दानुभवोत्पत्तिस्थानम् (कृणवसे) कुरुष्व (ते) तवोपासकस्य (पूर्त्तम्) शुभानुष्ठानम् (न, हि) नैव (अक्षिपत्) संसरणहेतुकं भवेत् ॥

भा०–वहां मन को रोककर फिर क्या करे यह कहते हैं योगी पुरुष तब (सवित्रा) सूर्य से (प्रसवेन) प्रसूत अमृत से (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्मको (जुषेत) सेवन करे। (तत्र) वहां (योनिम्) उत्पत्तिस्थान को (कृणवसे) कर तू (ते) तेरा (पूर्त्तम्) कर्मानुष्ठान (न, हि) नहीं (अक्षिपत्) संसारहेतु होवे ॥

अर्थात् मूलाधार और सुषुम्ना के जोड़ पर शारीरक सूर्य्य चन्द्र को इकट्ठा करके ब्रह्म को सेवन करे। जो ब्रह्म सनातन है। और ऐसा करने से तेरा कर्मानुष्ठान भी जन्मादिकारक न होगा ॥ ७ ॥

योगिना कथं शरीरं स्थापनीयं कोवाऽऽसनप्रकार इत्याह–

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८॥

पदपाठः–त्रिरुन्नतम् २। स्थाप्य अ०। समम् २। शरीरम् २। हृदि ७। इन्द्रियाणि २। मनसा ३। संनिवेश्य अ०। ब्रह्मोडुपेन ३। प्रतरेत क्रि०। विद्वान् १। स्रोतांसि २। सर्वाणि २। भयावहानि २॥ ८॥

अन्वितपदार्थः–(विद्वान्) ज्ञानवान् योगी (शरीरम्) देहम् (त्रिरुन्नतम्) त्रीण्युरोग्रीवाशिरांसि उन्नतानि यत्र तत् सुजर्णोऽविवक्षितः। (समम्) ऋजु (स्थाप्य) (इन्द्रियाणि) प्रसिद्धानि (मनसा) इन्द्रियाश्वप्रग्रहेण (हृदि) हृत्कमले मांसखण्डे पञ्चच्छिद्रे (संनिवेश्य) सम्यङ्निवेशितानि कृत्वा (ब्रह्मोडुपेन) ब्रह्मणा तद्वाचकेन प्रणवेन तदर्थभावनेनैवोडुपेन तरणसाधनीभूतेन (सर्वाणि) निखिलानि (भयावहानि) दुःखबहुलत्वेन भयङ्कराणि (स्रोतांसि) संसारसागरमनुवहन्ति प्रवाहजातानि (प्रतरेत)॥

"युञ्जान" इत्यारभ्याक्षिपदित्यन्तैर्मनसो निग्रहः परमपुरुषार्थसाधनमित्युक्तम्। परन्तु विनोपायं स हि दुष्कर इति मत्वोपायमत्र वर्ण्यते। यथा नद्यादिजलाशयं तितीर्षुणा समाहितेन भूत्वा, सम्यक् सन्नह्य, कौपीनतदुपरिगतवस्त्रवेष्टनादिनात्मनस्तत्रत्यापस्यमानग्राहादिग्रहकृतविघ्ननिवारणक्षमत्वं सम्पाद्य नौकादिना पारं गम्यते। तथैव भयावहसंसारनदीप्रवाहमुल्लङ्घ्य परं ब्रह्माधिजिगमिषुणा योगिनापि प्रबन्धः कार्य्यः। यथा–जलाशयतितीर्षुः शैथिल्यं शैथिल्यहेतुकं वस्त्रवेषादिकं च त्यजति तथैव योगिनापि समं त्रिरुन्नतं सरलं निरालस्यं तत्तदिन्द्रियविषयाभिमुखप्रवाहकृतविक्षेपशैथिल्यविवर्जितं शरीरं स्थापनीयम्। तदानीं च विषयाद्याशानामनदी ब्रह्मोडुपेन प्रणवप्लवेन तरीतव्या। यथाचास्यानद्यावर्णनं केनचिदुक्तम्–

> आशा नाम नदी मनोरथजला, तृष्णा तरङ्गाकुला।
> रागग्राहवती वितर्कविहगा, धैर्यद्रुमध्वंसिनी॥
> मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना, प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी।
> तस्याः पारगता विशुद्धमनसो, नन्दन्ति योगीश्वराः॥ १॥

भा०–योगी को शरीर किस प्रकार रखना चाहिये वा आसनादि का प्रकार क्या है, यह कहते हैं॥

(विद्वान्) ज्ञानी (शरीरम्) देह को (त्रिरुन्नतम्) तीन ऊंचाईवाला (समम्) सूधा (स्थाप्य) रखकर, (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (मनसा) मन से (हृदि) हृदय में (संनिवेश्य) संनिविष्ट करके, (ब्रह्मोडुपेन) ब्रह्म रूपी डोंगे से (भयावहानि) भयङ्कर (सर्वाणि) सब (स्रोतांसि) प्रवाहों को (प्रतरेत) पार होवे ॥

" युञ्जानः " से लेकर " अक्षिपत् " पर्यन्त " मन का निग्रह परम पुरुषार्थ साधन है " यह कहा परन्तु विना उपाय के वह कैसे होसका है इसलिये उपाय बताते हैं कि–योगी को आसन ऐसा लगाना चाहिये जिस से देह के तीन भाग शिर ग्रीवा और छाती उभरी रहें, सीधा शरीर रहे, मौहरा न हो। जैसे नदी आदि के पार होने की इच्छावाला पुरुष सन्नद्ध होता है और कौपीन तथा लंगोट आदि कसता है जिस से प्रवाह में पहुंचने पर ग्राहादि मिलें और विघ्न करें तो उन २ विघ्नों का निवारण कर सके। नदी पार जाने वाला जैसे धोती आदि शिथिलता के हेतुओं को संगवाकर बांध लेता है तब डोंगे पर सवार होकर नदी के पार जाता है। वैसे ही भयानक संसारसागर में गिरानेवाली आशा तृष्णा वासनादि नदी और स्रोतों से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होने की इच्छावाला योगी भी शरीर को समाहित रक्खे, इन्द्रियों को विषयप्रवाह में बहने वाली ओर से मनरूपी प्रग्रह (लगाम) से रोककर हृदय में निवेशित करे, ब्रह्म अर्थात् ओङ्कार और उस के अर्थ की भावनारूप डोंगे के सहारे संसारस्रोत के पार होवे। किसी कविने इस नदी का वर्णन इस प्रकार किया है कि–" आशा नाम नदी० " इत्यादि श्लोक संस्कृत भाष्य में देखिये जिस का अर्थ यह है कि–" आशा नाम एक भारी नदी है, जिस में मनोरथ रूप जल बहता है, तृष्णारूप तरङ्ग उठती हैं, राग रूप ग्राह हैं, कुतर्क रूप पक्षी उड़ते हैं, धैर्य्य रूप वृक्ष को जड़ से उखाड़ती है, मोह रूप भंवर पड़ते हैं, बहुत गहरी है, जिस के चिन्ता रूप ऊंचे किनारे हैं, उस के पार जाकर योगीश्वर आनन्द पाते हैं " ॥८॥

आसनानन्तरं प्राणायाममाह–

प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥९॥

पदपाठः–प्राणान् २। प्रपीड्य अ०। इह अ०। संयुक्तचेष्टः १। क्षीणे ७। प्राणे ७। नासिकया ३। उच्छ्वसीत क्रि०। दुष्टाश्वयुक्तमिव अ०। वाहम् २। एनम् २। विद्वान् १। मनः २। धारयेत क्रि०। अप्रमत्तः १॥ ९॥

अन्वितपदार्थः–(विद्वान्) गुरुतोऽधीतयोगविद्यः (इह) अस्मिन्योगाभ्यासे (प्राणान्) वायुविशेषान् (प्रपीड्य) निरुध्य (संयुक्तचेष्टः) समीचीना युक्ता जीवनमात्रोपयोगिनी योगार्था चेष्टा यस्य सः (प्राणे) वायुविशेषे शरीरधारके जीवनमूले (क्षीणे) निर्बले जाते सति (नासिकया) नासापुटेन (उच्छ्वसीत) बहिर्निरस्येत्। इडया प्राणं गृहीत्वा यथाशक्ति निरुध्य सति निर्बले पिङ्गलया बहिर्निरस्येत् पिङ्गलया गृहीत्वेडया निरस्येत्। एवमेव पुनः पुनरभ्यस्येत्। (दुष्टाश्वयुक्तम्) प्रमाथीन्द्रियाश्वयुक्तम् (वाहम्) वाहनम् (इव) (एनम्) पूर्वोक्तम् प्राणम् (अप्रमत्तः) प्रमादरहितः (धारयेत) (मनः) तत्प्रग्रहभूतं मनश्च सारथिभूतया धिया धारयेत्। प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्येति योगशास्त्रे (१। ३४) ऽपि तदेवोक्तम्॥

भा०–आसन के पश्चात् प्राणायाम कहते हैं–(अप्रमत्तः) प्रमादरहित (विद्वान्) योगविद्या में निपुण (इह) इस योगाभ्यास में (प्राणान्) प्राणादि वायुओं को (प्रपीड्य) खैंच और रोक कर (संयुक्तचेष्टः) अच्छी युक्त की है चेष्टा जिसने ऐसा योगी (प्राणे) प्राण के (क्षीणे) निर्बल प्रतीत होने पर (नासिकया) नाक से (उच्छ्वसीत) शनैः बाहर निकाल दे। (दुष्टाश्वयुक्तम्) बिगड़ैल घोड़े जुते हुवे (वाहम्) रथ के (इव) समान (एनम्) इस प्राण को और (मनः) मन को (धारयेत) धारण करे॥

तात्पर्य यह है कि योगी को युक्तचेष्टा वाला अर्थात् जीवनमात्र के उपयोगी अल्प व्यवहार चेष्टा वाला और अप्रमत्त–प्रमादरहित तथा विद्वान् होना चाहिये। और अभ्यास के समय प्राण को खैंचना चाहिये परन्तु जब प्राण खिंचा रहने में असमर्थ क्षीण जान पड़े तब नासापुट से बाहर निकाल दे। इस प्रकार बार२ इडा से खैंच पिङ्गला से बाहर फैंके, पिङ्गला से खैंचकर इडा से बाहर फैंका करे। इस प्रकार मन और प्राण को बुद्धिरूप सारथि के द्वारा स्थिर करावे॥९॥

किंभूते देशेऽभ्यस्येदित्याह–

समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥१०॥

पदपाठः—समे ७। शुचौ ७। शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते ७। शब्दजलाश्रयादिभिः ३। मनोऽनुकूले ७। न अ०। तु अ०। चक्षुपीडने ७। गुहानिवाताश्रयणे ७। प्रयोजयेत् क्रि० ॥१०॥

अन्वितपदार्थः—योगी (समे) गर्त्तादिरहिते (शुचौ) पवित्रे दुर्गन्धादिरहिते (शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते) शर्करया वह्निना वालुकया च रहिते। शर्करा वह्निवालुकाहि वायुनेरिताः विघ्नदा यथा न स्युस्तथा। (शब्दजलाश्रयादिभिः) एतैरपि विवर्जिते। शब्दोऽत्र नरवादिः जलाश्रयो ऽतिशीतलप्रदेशः आदिशब्देन सर्पवृश्चिकाद्याश्रयश्च तैरहिते (मनोऽनुकूले) मनसः प्रसन्नतासम्पादके दर्शनीये (न तु चक्षुपीडने) यद्यपि दर्शनीये तथापि न चक्षुषोः पीडाकरे। विसर्गलोप आर्षः। (गुहानिवाताश्रयणे) गुहा एकान्तं, निवातश्चाश्रयणं यत्र तथाभूते देशे (प्रयोजयेत्) आत्मानं परमात्मनि युक्तं कुर्यात् ॥ १० ॥

भा०—योग कैसे स्थान में करे यह कहते हैं—पूर्वोक्त योगी (समे) चौरस (शुचौ) पवित्र (शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते) बजरी अग्नि बालू से रहित (शब्दजलाश्रयादिभिः) शब्द और सिलावी आदि से रहित (मनोऽनुकूले) मन को भावते (न तु चक्षुपीडने) आंखों को दुःख न देने वाले (गुहानिवाताश्रयणे) एकान्त और वायु के झोकों से रहित देश में (प्रयोजयेत्) योग करे ॥

अर्थात् ऐसा स्थान हो जहां ऊंचा नीचा न हो, दुर्गन्ध न हो, पत्थर की बजरी चुभती न हो, अग्नि का ताप न हो, बालु उड़कर देह में न लगता हो, क्रूर वा ऊंचा शब्द न सुनाई पड़े, जल की सील न हो, और (आदि शब्द से) सर्प भेड़िये आदि का स्थान भी न हो, देखने में आखों को बुरी लगने वाली कोई वस्तु सामने न हो, एकान्त हो, वायु प्रबल न चलता हो, ऐसे मनके अनुकूल देश में योगाभ्यास करना चाहिये ॥ १० ॥

इदानीं योगिन इतरजनवैलक्षण्यमाह चतुर्भिः—

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

पदपाठः—नीहारधूमार्कानिलानलानाम् ६। खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ६। एतानि १। रूपाणि १। पुरःसराणि १। ब्रह्मणि ७। अभिव्यक्तिकराणि १। योगे ७ ॥ ११ ॥

अन्वितपदार्थः-(योगे) योगविधौ (एतानि) गण्यमानानि (रूपाणि) (ब्रह्मणि) परमात्मनि (अभिव्यक्तिकराणि) पूर्वरूपाणि भवन्ति तान्याह (नीहारधूमार्कानिलानलानाम्) नीहारस्य कुहरस्य, धूमस्य, अर्कस्य सूर्य्यस्य, अनिलस्य वायोः, अनलस्याऽग्नेश्चेतितेषाम् (खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्) खद्योतस्य, विद्युतः, स्फटिकस्य, शशिनश्चन्द्रमसश्चेति तेषाम्। शशीनामितिदीर्घनिर्देशआर्षः। एतानि रूपाणि योगं कुर्वाणस्य ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि ब्रह्मसाक्षात्कारतः पूर्वं भवन्ति॥ ब्रह्मणोऽनन्तज्योतिःसाक्षात्कारतः पूर्वं " तमेव भान्तमनुभातिसर्वं "मित्युक्तत्वात् तत्प्रकाशानुप्रकाशितार्कादिज्योतींषि प्रकटीभवन्ति॥ ११॥

भा०—अब ४ श्लोकों से यह कहते हैं कि साधन करते हुवे योगी में साधारण मनुष्यों की अपेक्षा से विलक्षणता वा विशेष क्या २ होता जाता है—

(योगे) योग करते समय (नीहारधूमार्कानिलाऽनलानाम्) कुहर, धूम, सूर्य्य, वायु, अग्नि, (खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्) पटबीजना वा जुगनू, बिजुली, स्फटिक पाषाणविशेष और चन्द्रमा इनके (एतानि) ये (रूपाणि) रूप (पुरस्सराणि) आगे से (ब्रह्मणि, अभिव्यक्तिकराणि) ब्रह्म का साक्षात्कार करानेवाले होते हैं। तात्पर्य यह है कि " तमेवभान्तमनुभाति सर्वम् " इस प्रमाण के अनुसार सूर्य्यादि की ज्योतियों में भी परमात्मा के अनुग्रह से प्रकाश है अर्थात् परमात्मा के प्रकाश से ये प्रकाशित हो रहे हैं, सो ब्रह्मज्योति के प्रकट होने से पूर्व ये ज्योतियां योगी को प्रकट होती हैं॥११॥

पृथ्व्यप्तेजोनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥१२॥

पदपाठः—पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे ७। समुत्थिते ७। पञ्चात्मके ७। योगगुणे ७। प्रवृत्ते ७। न अ०। तस्य ६। रोगः १। न अ०। जरा १। न अ०। मृत्युः १। प्राप्तस्य ६। योगाग्निमयम् २। शरीरम् २॥१२॥

अन्वितपदार्थः-(पञ्चात्मके) पञ्चमहाभूतमये। तदेवविवृणोति (पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे) पृथ्वी चापश्च तेजश्चाऽनिलश्च खं च तेषां समाहारस्तस्मिन् (समुत्थिते) विजिते (योगगुणे) योगस्याऽष्टाङ्गयुक्तस्य गुणो विषयानासक्त्यादिस्तत्र (प्रवृत्ते) प्रवृत्तिंकुर्वति सति (तस्य) पञ्चभूतविजयिनो योगिनः सिद्धस्य (न, रोगः) शिरोक्षि-

रोगातिसारज्वरादिर्न (न,जरा) शरीरवैरूप्यसम्पादिनी पलितादिलक्षणावृद्धावस्थाऽपि न (न, दुःखम्) इष्टवियोगादनिष्टप्राप्तेश्च प्रतिकूलवेदनीयं बाधनालक्षणं दुःखं च न भवति । न मृत्युरिति पाठेऽकालमृत्युर्नेति व्याख्येयम् । किम्भूतस्य तस्य (योगाग्निमयं, शरीरं, प्राप्तस्य) यथा सुवर्णमग्नौ क्षिप्तमग्निरिव भाति तथैव योगतेजसि सम्प्राप्ते विनाशि पाञ्चभौतिकमपि शरीरं योगाग्निमयं भवति, तत्, प्राप्तस्य योगिनः ॥

अत्र " योगगुणे " इतिपदव्याख्यानं कुर्वता शङ्करानन्देनाद्वैतिना " योगस्याष्टाङ्गयुक्तस्य सोऽहमस्मीतिज्ञानफलस्य " इत्युक्तं तत्स्पष्टममूलम् । विज्ञानभगवता च " योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य " इत्यस्य व्याख्यायाम् " तदहमस्मीत्यभिमन्तुरुक्तफलं सिध्यति " इत्यपि निर्मूलमेवोक्तम् ॥ १२॥

भा०(पञ्चात्मके) पञ्चतत्त्व से बने अर्थात् (पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे) पृथ्वी जल तेज वायु आकाश के समाहार देह के (समुत्थिते) विजयप्राप्त करने वा वशीकृत होने पर और (योगगुणे) योग का फल (प्रवृत्ते) प्रवृत्त होने पर (योगाग्निमयं शरीरं, प्राप्तस्य) योग के तेजोमय, शरीर को, प्राप्त हुवे (तस्य) उस योगी को (न, रोगः) न, रोग हो (न, जरा) न, बुढापा हो (न, दुःखम्) न, दुःख होता है॥ अर्थात् जब योगी पञ्चभूत का विजय कर लेता है तो उस अष्टाङ्गयोगयुक्त पुरुष को ज्वर अतीसार पीडा आदि रोग नहीं होते, शरीर को विरूप करने वाला बालों को पकाकर गिराने वाला बुढापा नहीं आता, इष्टाऽनिष्ट से पृथक् हो जाता है इसलिये वाञ्छित के अलाभ और अवाञ्छित के लाभ से होने वाला प्रतिकूल बुरा लगने वाला कोई दुःख भी नहीं सताता, किसी २ पुस्तक में " दुःखम् " के स्थान में " मृत्युः " पाठ है इस की व्याख्या यह समझनी चाहिये कि अकालमृत्यु भी योगीको नहीं सताता। योगाग्निमयशरीर बन जाता है। जैसे सुवर्ण को अग्नि में डाल दो तो सुवर्ण रहता तो है नष्ट तो नहीं होता परन्तु अग्नि की ज्योति उस सुवर्ण में व्याप जाती है और उसे कोई डरके मारे नहीं छूता इसी प्रकार योगी ने जो अपने आत्मा को परमात्मा के ध्यान में लगाकर ज्योति और अपूर्व तेज प्राप्त कर लिया अब डरके मारे रोगादि उस से दूर रहते हैं। " योगाग्निमयं शरीरम् " के अर्थ में विज्ञानभगवत् ने जो यह अर्थ किया है कि " मै नहीं हूं ऐसा मानने वाले को उक्त फल सिद्ध हो जाता है " सो मूल में इस के लिये कोई पद न होनेसे निर्मूल है। और शङ्करानन्द ने अपनी टीका में अद्वैतपक्षपात से " योगगुणे " के अर्थ में " मै नहीं हूं " इत्यादि भी निर्मूल ही लिखा है ॥१२॥

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च । गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥

पदपाठः-लघुत्वम् २ । आरोग्यम् २ । अलोलुपत्वम् २ । वर्णप्रसादम् २ । स्वरसौष्ठवम् २ । च अ० । गन्धः १ । शुभः १ । मूत्रपुरीषम् २ । अल्पम् २ । योगप्रवृत्तिम् २ । प्रथमाम् २ । वदन्ति क्रि० ॥१३॥

अन्वितपदार्थः-(लघुत्वम्) देहस्याऽगौरवम् (आरोग्यम्) रोगराहित्यम् (अलोलुपत्वम्) विषयलाम्पत्याऽभावम् (वर्णप्रसादम्) मुखाद्याकृतिसौकुमार्यम् (स्वरसौष्ठवम्) स्वरस्य सुष्ठुतांस्निग्धताम् (शुभः गन्धः) शुभंगन्धमितिविभक्तिव्यत्ययः । (अल्पं मूत्रपुरीषम्) मूत्रपुरीषयोरल्पत्वम् (च) च शब्देन वैरत्यागादिकं च (प्रथमाम्) आदीभवाम् (योगप्रवृत्तिम्) तत्फलम् (वदन्ति) तदाचार्या इति शेषः ॥ १३ ॥

भा०-(लघुत्वम्) देह का हलकापन (आरोग्यम्) रोगरहित होना (अलोलुपत्वम्) निर्लोभपना (वर्णप्रसादम्) आकृति की प्रसन्नता (स्वरसौष्ठवम्) स्वर का मधुर होना (शुभः, गन्धः) अच्छा गन्ध (अल्पम्) थोड़ा (मूत्रपुरीषम्) मूत्र और विष्ठा (च) और वैरत्यागादि चिन्ह को (प्रथमाम्) प्रथम (योगप्रवृत्तिम्) योग की प्रवृत्ति (वदन्ति) [योग के आचार्य] कहते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि योगी के यह चिन्ह हैं कि देह हलका, नीरोग, निर्लोभ, सुन्दर, मधुरगम्भीर ध्वनि, सुगन्धि, और मूत्र विष्ठा जिस को थोड़े हों तौ जानो कि यह पुरुष योग और ध्यान में परिपक्व होता जाता है ॥१३॥

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम् । तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः १४

पदपाठः-यथा अ० । एव अ० । बिम्बम् १ । मृदया ३ । उपलिप्तम् १ । तेजोमयम् १ । भ्राजते क्रि० । तद् १ । सुधान्तम् १ । तत् १ । वा अ० । आत्मतत्त्वम् २ । प्रसमीक्ष्य, अ० । देही १ । एकः १ । भवते क्रि० । वीतशोकः १ ॥१४॥

अन्वितपदार्थः-(यथैव) (बिम्बम्) सौवर्णादि (मृदया) मृदा (उपलिप्तम्) मालिन्यं प्रापितं यत् (तत्) तदेव पुनः (सुधान्तम्) सुष्ठु

स्वामियन्त्रालय मेरठ के पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

स्वामीजी कृत पुस्तकें

आर्य्यप्रकाश नया छपा २) वा २॥)
यजुर्वेदभाष्य सजिल्द २१)
...सका बिना जिल्द २॥) सजिल्द २॥।-)
...महायज्ञविधि ≡)॥ सजिल्द ।-)॥
...णादिकोष ॥=)
...रुक्त १)
...स्कारविधि १।) सजिल्द १॥)
निघण्टु ।=)
...पथ १ काण्ड ॥)
...च्चारणशिक्षा -)
...र्याभिविनय ।) सजिल्द ।=)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम)।
...तनमन्त्र)॥

अन्य पुस्तकें

...र्मप्रकाश १।)
...स्कृत भाषा प्रथम)॥। द्वितीय -)।
...तीय =)॥ चतुर्थ ॥) चारों साथ
...=) कच्चीजिल्द॥≡) पक्कीजि० ॥।=)
...स्कृत भाषा प्रथम श्रेणि -)
...प्रचार)॥
...लविवाहनाटक -)
...यमण्डल)।
...क्षाकर ≡)
...तृभक्ति)॥
...लारम्भ -)॥
लघुकौमुदी भाषा टीका सहित १॥।)
कपड़े की जिल्द सहित २)
...शोपनिषद् बड़े मूल, कपड़े की जि०१।)
...सीला चरित्र नावल हिन्दी प्रथम ।॥)
...द्यानाटक ।)॥
आर्य्यसमाज के नियम सौ के ≡)।
...ख्यान का विज्ञापन सौ के =)

पुराणलीला -)
ईश्वरसिद्धि =)
जगदुत्पत्ति स्थिति प्रलय =)॥
मूर्त्तिनिर्णय -)
दमयन्तीस्वयंवरनाटक ≡)
सभाप्रबन्ध ।)
स्वामी जी का चित्र रङ्गीन -)॥
अष्टाध्यायी मूल ≡)
अङ्कगणितार्य्यमा ≡)॥
ऐतिहासिकनिरीक्षण[पं० लेखराम] =)
क्या स्वामी दयानन्द मक्कार था?)॥।
अबलाविनय ≡)॥
वैदिकदेवपूजा (१ व्याख्यान) -)॥
चाणक्यनीतिसार भाषा टीका -)।
प्रश्नोत्तररत्नमाला भाषा टीका और
आर्य्यविवाहमङ्गलाष्टक -)
आर्य्यचर्पटपञ्जरी)।
भजनेन्दु -)
ऋ० भाष्यभूमिकेन्दूपरागेप्रथमोंशः -)॥
द्वितीयोंशः -)॥।
शास्त्रार्थकिराणा -)
देवनागरी वर्णमाला की पुस्तक)।
मनुमांसाशननिषेध -)
अज्ञाननिवारण। इस में दादरी खड्ग-
सिंह के प्रथम व्याख्यान का उत्तर है -)॥
दयानन्दतिमिरभास्कर का उत्तर
तीन समुल्लास ।=)
*कस्तूरी (पुस्तक १) -)॥
सन् ९७ के १२ अङ्क वेदप्रकाश के ॥।)
ईश्वर और उसकी प्राप्ति(२व्याख्यान) -)
नालिकाविष्कार (तोपबन्दूक आदि
विषय में प्रमाण))॥।
कन्यासुधार -)

सञ्जीवनबूटीवीर्य्यवर्णनआह्लादछन्द)॥ ईश्वरविचार
वेश्यालीला)॥ सङ्गीतसुधाकर
स्वामीदयानन्दस०जी कृत पुस्तकें छोड़ अन्यों पर कमीशन ४)में ५) के दिये ज

——*——

पाठकनीतिमाला और बालविवाहनाटक

पाठकनीतिमाला में चाणक्यनीति के १०८ श्लोकों का भाषा के १०८ में सरल अनुवाद है। जो भाषा रसिकों को कण्ठस्थ करने योग्य है। में अति मनोरम लोकरीति पर बालविवाह और उस के सम्बन्ध में गीतों के दोष दिखाये हैं। मूल्य -)

"ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः"

ऐसा और इतना संक्षेप से अब तक कोई नहीं छपा। शब्द प्रमाण "मन्त्र ब्राह्मण दोनों वेद हैं वा क्या"? इत्यादि का निर्णय ७१ प्रमा किया है। इन में अथर्ववेद तैत्तिरीय शतपथब्रा० साङ्ख्य कात्यायन बौ परिशिष्ट मीमांसा मनुस्मृति ऐतरेयब्रा० अष्टाध्यायी महाभाष्य कौशि अमरकोश लघुशब्देन्दुशेखर निरुक्त सायणभाष्य ऋग्वेद यजुर्वेद वेदा न्यायदर्शन तैत्तिरीयआरण्यक पिङ्गलसूत्र चरणव्यूह न्यायविस्तर इन २५ से ७१ प्रमाण सङ्ग्रह करके बनाया है -)॥।

तथा प्रथमोंऽशः

इस में अदिति की कथा दर्शनीय है। मूल्य -)॥ ये दोनों पुस्तक ब्रह्मकुशल के उत्तर में हैं जो उन्होंने स्वामी दयानन्दसरस्वती जी कृत भाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति और वेदसंज्ञा विषय पर मिथ्यादोषारोपण था उस का सप्रमाण उत्तर इन पुस्तकों में पण्डित तुलसीराम स्वामी पं० देवदत्तशास्त्री ने दिया है॥

भास्करप्रकाश॥

दयानन्द तिमिर भास्कर के खण्डन में ३ समुल्लास का भाग तैया मूल्य ।=) समस्त का मूल्य २) होगा। परन्तु जो ग्राहक अभी इस एक का १।) मूल्य ≡) बी० पी० सहित १।≡) पर वेलुपेबिल मंगावेंगे उन से २) लिये जायंगे किन्तु अगले तैयार करके तब २ बैरंग डाक में रक्षार्थ भेज जायंगे और जो लोग १।) अब न देना चाहें उन को केवल यह भाग बी० पी० ≡) सब ।।=) में पहुंचेगा। आप की क्या आज्ञा है। शेष ३ भाग में शीघ्र छपेगा॥

तुलसीराम स्वामी-मेरठ